श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

जैनहितैषी ।

अंक १-२।

जनवरी, फरवरी १९१७।

विषय सूची ।

पहला अंक ।

१ ऐसी मति हो जाय (कविता) १
२ सप्तभङ्गीनय—ले०, लाला कन्नोमल एम. ए. १
३ विचित्रव्याह (खण्डकाव्य)—ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ८
४ हिन्दी जैनसाहित्यका इतिहास १०
५ भाग्यचक्र (गल्प)—ले०, पं० व्रजनन्दन प्रसाद और पं० रघुनन्दन प्रसाद मिश्र ... ... [illegible]
६ काम करनेवालोंके लिए—ले०, बाबू दयाचन्द गोयलीय बी. ए. ४५
७ नवयुवकोंको उपदेश—व्या०, प्रो० बालकृष्ण एम. ए. ४६
८ हमारी भक्ति (कविता)—ले०, पं० सुखराम चौबे ४८

दूसरा अंक ।

१ भद्रबाहु-संहिता । ४९
२ मेरठकी जैनपाठशाला और प्रो. सेठीका वक्तव्य । ७१
३ स्नान । ७४
४ अनुरोध (कविता) ले० पं. रामचरित उपाध्याय । ... ७६
५ जैन भारतकी गति । ७८
६ पतितोंकी पुकार । ७९
७ पुस्तक परिचय । ८०
८ विविध प्रसंग । ८५

आ.श्री. कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा

संपादक—नाथूराम प्रेमी ।

मुंबईवैभव प्रेस.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रार्थनायें।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।
२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।
३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।
४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

नियमावली।

१. वार्षिक मूल्य उपहारसहित ३) तीन रुपया पेशगी है। वी. पी. तीन रुपया एक आनेका भेजा जाता है।
२. उपहारके बिना भी तीन रुपया मूल्य है।
३. ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचसे अर्थात् ७ वें अंकसे। बीचसे ग्राहक होनेवालोंको उपहार नहीं दिया जाता। आधे वर्षका मूल्य १।)
४. प्रत्येक अंकका मूल्य पाँच आने है।
५. सब तरहका पत्रव्यवहार इस पतेसे करना चाहिए।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय.
हीराबाग पो० गिरगांव—बंबई।

श्रीभगवान् वर्धमान (महावीर) स्वामीजी महाराज का
जीवन चरित्र।

लेखक—उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराजके शिष्य स्वर्गवासी जैन मुनि पं. ज्ञानचन्द्रजी महाराज।

प्रत्येक जैनीको लागत दाम पर दिया जावेगा। इस जीवन चरित्रमें जन्मसे अन्ततक सूत्रोंके प्रमाणों सहित सर्व विषयोंका विस्तार सहित वर्णन किया गया है। यह पुस्तक बम्बईके सुप्रसिद्ध निर्णयसागर छापखानेमें बहुत उत्तम विलायती कागजपर सुन्दर मोटे अक्षरोंमें छप रही है। कागजकी तेजीके कारण प्रति बहुत थोड़ी छपी हैं जो भाई प्रथम ग्राहक होंगे उन्हींको दिया जावेगा। नीचे लिखे पतेपर नाम दर्ज कराना चाहिये। पता—

लाला मेहरचन्द लक्ष्मणदास जैन
सैद मिट्ठा बाजार लाहौर।

भारतविख्यात! हजारों प्रशंसापत्र प्राप्त!
अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया डा० म० ॥) आना।

❀ वैद्य ❀

सर्वोपयोगी मासिक पत्र।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्यरक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु. मात्र है।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर
आयुर्वेदोद्धारक–औषधालय, मुरादाबाद।

एक बार जरूर आजमाइए।

शिराजन बाम।

शरीरके हर तरहके दर्द, जैसे सिरदर्द, जोड़ोंका दर्द, संधिवायु, हाथ पैर आदिमें मोच आजाना, आदिके लिए यह बहुत ही आश्चर्यजनक और रामबाण उपाय है। कोई भी दर्द हो, उस पर यह अपना असर करता है। कीमत एक डब्बीका छह आना।

दाद, फुन्सी, फोड़ा, खुजली आदिकी आश्चर्यजनक दवाका मूल्य एक डिब्बीका चार आना।

सब जगह एजेंटोंकी जरूरत है। हर कोई चीज मँगाना चाहो तो लिखो—

मेसर्स जोली सीन्ड्रेला एण्ड कं०
जनरल केमिस्ट एण्ड कमिशन एजेंट
प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई नं० २
एजेण्ट—**मेसर्स टी. आर. चन्द्रावाला एण्ड कं०** बम्बई नं० २।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

तेरहवाँ भाग । अंक १

जैनहितैषी ।

जनवरी, १९१७ माघ, २४४३

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवार्णा ।
बने है हितैषी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

ऐसी मति हो जाय ।

(सोहनी ।)

दयामय, ऐसी मति हो जाय ।
त्रिजगतकी कल्याण-कामना,
दिन दिन बढ़ती जाय ॥ १ ॥
औरोंके सुखको सुख समझूँ,
सुखका करूँ उपाय ।
अपने दुख सब सहूँ किन्तु,
परदुख नहिं देखा जाय ॥ २ ॥
अधम अज्ञ अस्पृश्य अधर्मी,
दुखी और असहाय ।
सबके अवगाहनहित मम उर,
सुरसरि सम बन जाय ॥ ३ ॥
भूला भटका उलटी मतिका,
जो है जनसमुदाय ।
उसे सुझाऊँ सच्चा सत्पथ,
निज सर्वस्व लगाय ॥ ४ ॥
सत्य धर्म हो, सत्य कर्म हो,
सत्य ध्येय बन जाय ।
सत्यान्वेषणमें ही 'प्रेमी',
जीवन यह लग जाय ॥ ५ ॥

सप्तभंगी नय ।

ले.-लाला कन्नोमल एम. ए., सेशनजज, धौलपुर

यह जैनशास्त्रोंका बड़ा प्रसिद्ध और गौरवशाली नय है । जैनशास्त्रज्ञ इसीके द्वारा समस्त संसारकी चेतन और अचेतन वस्तुओंका निर्णय करते हैं । जैनधर्मके नवतत्त्वोंका अर्थात् जीव-अजीव-पाप-पुण्य-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा और मोक्षका अधिगम (ज्ञान), प्रमाण और नय द्वारा होता है । जिससे तत्त्वोंका सम्पूर्ण रूपसे ज्ञान हो, वह प्रमाणात्मक अधिगम है और जिसके द्वारा इनके केवल एक देशका ज्ञान हो, वह नयात्मक अधिगम है। ये दोनों भेद सप्तभङ्गीनयमें विधि और निषेधकी प्रधानतासे होते हैं । इस लिए यह ' नयप्रमाणसप्तभङ्गी ' और ' नयसप्तभङ्गी ' दोनों कहलाता है ।

सप्तभङ्गी नयका अर्थ ऐसा नय है जिसमें सात भङ्ग (वाक्य) हों, अर्थात् "सप्तानां भङ्गानां वाक्यानां समाहारः समूहः सप्तभङ्गी" । एक वस्तुमें अनेक धर्म रहते हैं । वे एक दूसरेके विरुद्ध नहीं होते हैं । इन अविरुद्ध नाना धर्मोंका निश्चयज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तभङ्गीनयके सात वाक्यों द्वारा ही होता है। अतएव सप्तभङ्गी वह नय है जो सात वाक्यों द्वारा किसी वस्तुके परस्पर अविरुद्ध अनेक धर्मोंका निश्चय ज्ञान उत्पन्न करे। यदि कोई कहे कि इस नयके सप्त वाक्य ही क्यों हैं, अधिक वा न्यून क्यों नहीं, तो उत्तर यह है कि जिज्ञासुको किसी वस्तुके निश्चय करनेमें सात संशयोंसे अधिक नहीं हो सकते हैं। इस लिए यह नय उन सब संशयोंका निवारक है। जैनशास्त्रोंके प्रसिद्ध अनेकान्तवादका आधार इसी नय पर है। इसके समझे बिना अनेकान्तवादके महत्त्वका पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता है।

इस नयके सात भङ्ग (वाक्य) ये हैं:—

१—**स्यादस्ति घटः**—शायद घट है।

२—**स्यान्नास्ति घटः**—शायद घट नहीं है।

३—**स्यादस्ति नास्ति च घटः**—शायद घट है और नहीं भी है।

४—**स्यादवक्तव्यो घटः**—शायद घट अवक्तव्य है, अर्थात् ऐसा है जिसके विषयमें कुछ कह ही नहीं सकते हैं।

५—**स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घटः**—शायद घट है और अवक्तव्य भी है।

६—**स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घटः**—शायद घट नहीं है और अवक्तव्य भी है।

७—**स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घटः**—शायद घट है, नहीं भी है और अवक्तव्य भी है।

इनमेंसे प्रत्येक भङ्गका सविस्तार विवरण करनेके पहले यह अत्यावश्यक है कि इनके समझनेमें जिन जिन बातोंकी आवश्यकता है उनका भी थोड़ा हाल दे दिया जाय। वे बातें ये हैं:—

१—इन भङ्गोंमें 'स्यात्' शब्द जो आया है उसका अर्थ।

२—इन भङ्गोंमें 'अस्ति' शब्द जो आया है और जिससे वस्तुमें धर्मोंकी स्थिति बताई है उसका गूढ़ाशय, अर्थात् यह कि वस्तुमें धर्मोंकी स्थिति किस प्रकार होती है।

३—इन भङ्गोंमें जो घट वस्तु दी है उसके रूप क्या हैं। उसका निजरूप क्या है और पररूप क्या है। द्रव्यरूप क्या है और पर्य्यायरूप क्या है। इनका खुलासा यह है:—

१—'स्यात्' शब्द अनेकान्तरूप अर्थबोधक है। इसके प्रयोग करनेसे यह अभिप्राय है कि वाक्यमें निश्चयरूपी एक अर्थ ही नहीं समझा जाय, बल्कि उसमें जो दूसरे अंश मिले हुए हैं उनकी तरफ भी दृष्टि पड़े।

२—'अस्ति' शब्दसे वस्तुमें धर्मोंकी स्थिति सूचित होती है। यह स्थिति अभेदरूप आठ प्रकारसे होसकती है, *अर्थात् १ काल, २ आत्मरूप, ३ अर्थ, ४ सम्बन्ध, ५ उपकार, ६ गुणिदेश, ७ संसर्ग* और शब्द।

इनसे कैसे स्थिति होती है इसका थोड़ासा विवरण नीचे लिखते हैं:—

१ काल।

घटमें जिस कालमें 'अस्तित्वधर्म' है उसी कालमें उसमें 'पट-नास्तित्व' अथवा 'अवक्तव्यत्वादि' भी धर्म हैं। इसलिए घटमें इन सब अस्तियोंकी एक समय ही स्थिति है, अर्थात् कालद्वारा अभेद स्थिति है। दूसरे शब्दोंमें कालिक सम्बन्धसे सब धर्म अभिन्न हैं, क्योंकि समानकालमें ही सब धर्म विद्यमान हैं।

२ आत्मरूप।

जैसे घट अस्तित्वका स्वरूप है वैसे ही वह और धर्मोंका भी स्वरूप है, अर्थात् अस्तित्व ही एक गुण नहीं उसमें और गुण भी हैं। धर्म जिस स्वरूपसे वस्तुमें रहते हैं वही उनका निजका रूप अथवा आत्मरूप है। इस प्रकार एक घटरूप अधिकरणमें आत्मस्वरूपसे सब धर्म रहते हैं, इसलिए आत्मस्वरूपके कारण सब धर्मोंकी अभेदवृत्ति (स्थिति) हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३ अर्थ।

जो घटरूप द्रव्य पदार्थके अस्तित्वधर्मका आधार है वही घट द्रव्य अन्य धर्मोका भी आधार है। इस प्रकार एक आधारमें अर्थात् एक ही पदार्थमें सब धर्मोकी स्थिति अर्थसे अभेदवृत्ति है।

४ सम्बन्ध।

जो 'शायद' सम्बन्ध अभेदरूप अस्तित्वका घटके साथ है वही 'शायद' सम्बन्ध रूप आदि अन्य सब धर्मोका भी घटके साथ है। यह सम्बन्धकी अभेदवृत्ति है।

५ उपकार।

जो अपने स्वरूपमय वस्तुको करना उपकार, अस्तित्वका घटके साथ है वही अपना वैशिष्ट्य सम्पादन उपकार अन्य धर्मोका भी है। यह उपकारसे अभेदवृत्ति है।

६ गुणिदेश।

घटके जिस देशमें अपने रूप (अपेक्षा) से अस्तित्व धर्म है, उसी देशमें अन्यकी अपेक्षासे नास्तित्व आदि सम्पूर्ण धर्म भी हैं, इसलिए देशभेद भी नहीं है।

७ संसर्ग।

जिसप्रकार एक वस्तुत्व स्वरूपसे अस्तित्वका घटमें संसर्ग है, वैसे ही एक वस्तुत्व रूपसे अन्य सब धर्मोका भी संसर्ग है, इसलिए संसर्गसे अभेदवृत्ति हुई।

८ शब्द।

जो 'अस्ति' शब्द अस्तित्वधर्मस्वरूप घट आदि वस्तुका भी वाचक है उसी वाच्यत्वरूप शब्दसे सब धर्मोकी घट आदि पदार्थोमें अभेदवृत्ति है। इस प्रकार सब धर्मोकी अभेदरूपसे घटमें स्थिति रहती है। इस रीतिसे द्रव्यार्थिक नयकी प्रधानतासे वस्तुमें सब धर्मोकी अभेदरूपसे स्थिति रहती है और पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतासे यह स्थिति अभेदोपचारके रूपसे रहती है। इन दोनोंके द्वारा अनेकान्तवादकी सूचना होती है।

३–जैसे वस्तुमें धर्मोकी स्थिति आठ प्रकारसे रहती है, वैसे ही किसी वस्तुका निजरूप चार प्रकारसे होता है। वे चार प्रकार ये हैं–नाम-स्थापना–द्रव्य और भाव। जैसे, मृत्तिकासे कितनी ही वस्तुयें बनी हैं परन्तु घट नाम एकका ही है। घट जिस स्थानमें रक्खा है वह उसका क्षेत्र है, जैसे घट एक पत्थर पर रक्खा है, तो पत्थर उसका क्षेत्र है। दूसरा पत्थर अथवा तख्ता जहाँ वह नहीं रक्खा है वह उसका 'परक्षेत्र' है। यह स्थापना है। घटमें मृत्तिका द्रव्य है, सुवर्ण द्रव्य नहीं है। यह द्रव्य है। घट जिसकालमें है वह उसका भाव है। यह वर्तमानकाल ही हो सकता है, भूत अथवा भविष्यत् काल नहीं।

सारांश यह है कि वस्तुका निजरूप जाननेके लिए उसे इन चार बातोंसे देखना चाहिए, अर्थात् उस वस्तुका नाम, उसकी स्थापना (क्षेत्र), उसका द्रव्य और उसका भाव अर्थात् काल।

उदाहरण—घटका नाम घट है, कूँडी–नाँदी आदिका नहीं। ये उसके परिणाम हैं। घटकी स्थापना वही क्षेत्र है जहाँ वह धरा है, दूसरा क्षेत्र नहीं। घटका द्रव्य मृत्तिका है, सुवर्ण नहीं। घटका काल वर्तमान है, भूत भविष्यत् नहीं। घटकी मृत्तिकादि उसका द्रव्यरूप अर्थात् निजरूप है और मृत्तिकासे जो सैकड़ों चीजें बनती हैं जैसे कूँडी–मटकना–नाँदी आदि ये उसके पर्यायरूप हैं। प्रत्येक वाक्यका स्पष्ट विवरण इस प्रकार है:—

१–शायद घट है। इसका यह अर्थ है कि घट अपने निजरूपसे है, अर्थात् नाम, स्थापना (क्षेत्र) द्रव्य और भाव (काल) से है। टेढ़ी गर्दन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूपसे घटका नाम है। इसकी द्रव्य मृत्तिका है। इसका क्षेत्र वह स्थान है जहाँ वह धरा है और इसका काल वह समय है जिसमें वह वर्तमान है। इन चीजोंके देखते घट है। 'शायद' इस लिए कहा कि कोई यह न समझे कि घटमें केवल ये ही चीजें हैं जो प्रधानतासे बताई हैं और कुछ नहीं है। यह अनेकान्तार्थवाचक है। इस वाक्यमें सत्ता प्रधान है।

२–शायद घट नहीं है। इसका यह अर्थ है कि घट परनाम, पररूप, परद्रव्य, परक्षेत्र (स्थापना) और परकाल (भाव) में नहीं है। अपना रूप तो टेढ़ी गर्दन थी, लेकिन इस रूपसे अलग जो रूप हैं जैसे चपटा लंबा आदि, वह इसमें नहीं है। जैसे पट वृक्षादिका रूप। अपनी द्रव्यता मृत्तिका है, लेकिन परद्रव्य सुवर्ण लोहा पत्थर सूत, ये नहीं हैं। अपना क्षेत्र तो वह स्थान था जहाँ वह रक्खा था यानी पटा या पत्थर, दूसरा स्थान पृथिवी छत आदि। अपना काल तो वर्तमान था दूसरा काल भूत या भविष्यत् काल है। इसमें असत्ता प्रधान है। परन्तु कोई यह न समझे कि इसमें घटका निषेध है। नहीं कहनेसे घटका अस्तित्व बिलकुल चला नहीं गया, बल्कि गौण हो गया और परस्वरूपकी प्रधानता हो गई। यह वाक्य पहले वाक्यका निषेधरूपसे विरुद्ध नहीं है, बल्कि असत्ता इसमें प्रधान है और सत्ता गौण।

३–शायद घट है और नहीं भी है। पहले घटके निजरूपकी सत्ता प्रधान होनेसे उसका होना बताया है और फिर घटके परस्वरूपकी असत्ता प्रधान होनेसे उसका नहीं होना बताया है। जब घटके निजरूपकी तरफ देखो तो वह है और उसके पररूपकी तरफ देखो तो नहीं है।

४–शायद घट अवक्तव्य है। अर्थात् ऐसा है जिसके विषयमें कुछ कह नहीं सकते हैं। एक ही समयमें घटके निजरूपकी सत्ता और उसके पर रूपकी असत्ता प्रधान करनेसे वह अवक्तव्य हो जाता है। ऐसी वस्तु जो एक ही समयमें अपने निजरूप और पररूपकी प्रधानता रखती है वह सिवा अवक्तव्यके और क्या हो सकती है?

५–शायद घट है और अवक्तव्य भी है। द्रव्यरूपसे तो घट है, लेकिन उसका द्रव्य और पर्य्यायरूप एक कालमें ही प्रधानभूत नहीं है। सत्तासहित अवक्तव्यताकी प्रधानता है। घटके द्रव्य अर्थात् मृत्तिका रूपको देखें तो घट है, परन्तु द्रव्य (मृत्तिका) और उसके परिवर्तनशील रूप दोनोंको एक समयमें ही देखें तो वह अवक्तव्य है।

६–शायद घट नहीं है और अवक्तव्य भी है। घट अपने पर्य्यायरूपकी अपेक्षासे नहीं है, क्योंकि वे रूप क्षणक्षणमें बदलते रहते हैं, लेकिन प्रधानभूत द्रव्य पर्य्याय उभयकी अपेक्षासे वह अवक्तव्यत्वका आधार है। इसमें असत्तारहित अवक्तव्यत्वकी प्रधानता है।

७–शायद घट है, नहीं भी है और अवक्तव्य भी है। द्रव्य पर्य्याय अलग अलगकी अपेक्षासे सत्ता असत्ता सहित मिलित तथा साथ ही योजित द्रव्य पर्य्यायकी अपेक्षासें अवक्तव्यत्वका आश्रय घट है। मृत्तिकाकी दृष्टिसे 'है,' उसके क्षणक्षणमें रूप बदलते हैं इस पर्य्यायदृष्टिसे 'नहीं' है। इन दोनोंको एक साथ देखो तो 'अवक्तव्य' है।

इस सबका अभिप्राय यह है कि जब किसी वस्तुका निर्णय करना है तो उसे केवल एक दृष्टिसे ही देखकर व्यवस्था नहीं देनी चाहिए। प्रत्येक वस्तुमें अनेक धर्म होते हैं। इन सभी धर्मोंको देखना चाहिए। जैनशास्त्रका मत है कि प्रत्येक वस्तु सात दृष्टियोंसे देखी जा सकती है। इनमेंसे हरएक दृष्टि सत्य है; परन्तु पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब ये सातों दृष्टियाँ मिलाई जायँ। इस प्रकार किसी वस्तुके विषयमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यवस्था देना जैनशास्त्रका अद्भुत गंभीर गवेषणापूर्ण और विलक्षण सिद्धान्त है ।

जिस तरह प्रत्येक वस्तुमें 'अस्ति' लगा कर वाक्य बनाते हैं, उसी तरह नित्य अनित्य एक अनेक शब्द भी लगाते हैं। सप्तभंगीका निरूपण नित्यत्व अनित्यत्व एकत्व और अनेकत्व आदि धर्मोंसे भी करना चाहिए। जैसे शायद घट नित्य है (द्रव्यरूपसे), शायद अनित्य है (पर्य्यायरूपसे), इसी तरह एकत्व और अनेकत्व रूपसे शायद घट एक है शायद घट अनेक है। द्रव्यरूपसे तो एक है क्योंकि मृत्तिकारूप द्रव्य एक है और सामान्य है और पर्य्याय रूपसे अनेक है, क्योंकि रस गंध आदि अनेक पर्य्यायरूप है।

एकान्त और अनेकान्त।

एकान्त दो प्रकारका है अर्थात् सम्यक् और मिथ्या। इसी तरह अनेकान्त भी दो प्रकारका है। एक पदार्थमें अनेक धर्म होते हैं। इनमेंसे किसी एक धर्मको प्रधान कर कहा जाय और दूसरे धर्मोंका निषेध नहीं किया जाय तो सम्यक् एकान्त है। यदि किसी एक धर्मका निश्चय कर उस पदार्थके और सब धर्मोंका निषेध किया जाय तो वह मिथ्या एकान्त है।

प्रत्यक्ष अनुमान और आगम प्रमाणोंसे अविरुद्ध एक वस्तुमें अनेक धर्मोंका निरूपण करना सम्यक् अनेकान्त है। प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे विरुद्ध एक वस्तुमें अनेक धर्मोंकी कल्पना करना मिथ्या अनेकान्त है। सम्यक् एकान्त तो नय है और मिथ्या एकान्त नयाभास है। ऐसे ही सम्यक् अनेकान्त तो प्रमाण है और मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास है। जैनशास्त्र सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्तको मानता है और मिथ्या एकान्त और मिथ्या अनेकान्तको नहीं। सप्तभङ्गिनयमें सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्त दोनों मिले हैं। इसका पहला वाक्य एकान्तकी अपेक्षासे है। दूसरा अनेकान्तकी अपेक्षासे, तीसरा दोनोंकी अपेक्षासे—चौथा एकान्त और अनेकान्तकी एक कालमें योजनाकी अपेक्षासे, पाँचवाँ एकान्त और उभयवादकी एक कालमें योजनाकी अपेक्षासे । छट्ठा अनेकान्त और उभयवादकी एक कालकी योजनाकी अपेक्षासे और सातवाँ एकान्त और अनेकान्त और उभयवादकी एक कालमें योजनाकी अपेक्षासे ह ।

यह नय केवल अनेकान्त अनेकान्त ही नहीं है, बल्कि एकान्त भी इसमें मिला है। यदि एकान्तका अभाव हो तो एकान्तके समूहभूत अनेकान्तका भी अभाव हो जाय। जैसे शाखाओंका अभाव हो जाय तो शाखासमूहभूत वृक्षका भी अभाव हो जायगा। इस नयमें मूलभूत भङ्ग पहलेके दो वाक्य 'अस्ति' और 'नास्ति' हैं। आगेके ३ से ७ तक वाक्य इनहीकी योजनासे होते हैं।

जैनमतके सिवा और मतवाले किसी न किसी तत्त्वको प्रधान मानकर केवल एकान्तवादी ही हैं। अतः उनका पक्ष कमजोर हो जाता है। जैनमत सम्यक् एकान्तको लिये हुए सम्यक् अनेकान्तवादी है। इसलिए इसका पक्ष बड़ा बलिष्ठ और सर्वव्यापक है । केवल एकान्तवाद माननेसे जो दोष आते हैं उन्हें कुछ दूसरे शास्त्रोंके सिद्धान्तसे दिखाते हैं।

१ सांख्य शास्त्र तत्त्वको द्रव्य ही मानता है, उसकी पर्य्याय नहीं, इसलिए उसकी दृष्टिसे इस नयका एक ही भंग सत्य है। परन्तु पर्य्याय भी अनुभवसिद्ध है, इसलिए यह मत ठीक नहीं।

२ पर्याय ही तत्त्व है। हर एक पदार्थ क्षण क्षणमें बदलता रहता है, इसलिए क्षणिक पर्य्याय ही तत्त्व है, कोई मुख्य द्रव्य तत्त्व नहीं है। यह बौद्ध मानते हैं। इनकी दृष्टिसे दूसरा ही भंग ठीक है। परन्तु घटादि पर्य्यायोंमें मृत्तिकारूप द्रव्य और कटक कुण्डल आदिमें सुवर्ण द्रव्य भी अनुभवसिद्ध है। इसलिए इनका मत भी ठीक नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३ जो यह कहते हैं कि वस्तु सर्वथा अवक्तव्य रूप ही है। उनमें निजवचनका विरोध है। क्योंकि अवक्तव्य इस शब्दसे वे वस्तुको कहते हैं तो सर्वथा अवक्तव्यता कहाँ रही? जैसे कोई कहे कि मैं सदा मौन व्रत धारण करता हूँ यदिसदा मौन है तो 'मैं मौन हूँ' यह वाक्य कैसे कहा?

इस लिए केवल तीसरा भंग भी ठीक नहीं है। इसी तरह और और मत भी समझो। अब अनेकान्त वादमें जो शंकायें दूसरे मतावलम्बी विद्वानोंने उठाई हैं, उनका निवारण लिखते हैं।

किसीने कहा है कि अनेकान्तवाद छलमात्र है, पर यह बात नहीं है। अनेकान्तवाद छल मात्र इसलिए नहीं है कि छलयोजनामें एक ही शब्दके दो अर्थ होते हैं। जैसे "नवकम्बलोऽयं देवदत्तः" यहाँ नवके दो अर्थ हैं-१ नया और २ नौ, अर्थात् देवदत्तके पास नया कम्बल है और देवदत्तके पास नौ कम्बल हैं। यह बात अनेकान्तवादमें नहीं है। एक पदार्थको एक दृष्टिसे देखनेसे उसका होना बताना और दूसरी दृष्टिसे देखनेसे उसका नहीं होना बताना, एक शब्दके दो अर्थ नहीं हुए। इस लिए यह छल नहीं हुआ।

अनेकान्तवाद संशयका हेतु भी नहीं है। संशय होनेमें सामान्य अंशका प्रत्यक्ष, विशेष अंशका अप्रत्यक्ष, और विशेषकी स्मृति होना आवश्यक है। जैसे कुछ प्रकाश और कुछ अन्धकार होनेके समय मनुष्यके समान स्थित खंभको देखकर, लेकिन उसके और विशेष अंशोंको नहीं देखकर (जैसे उसमें पक्षियोंके घोंसले अथवा मनुष्यके हाथ पैर वस्त्र शिखा आदि) और मनुष्यके और अंशोंको याद कर उसमें मनुष्यका भ्रम करना। परन्तु यह बात अनेकान्तवादमें नहीं है। क्योंकि स्वरूपपररूपविशेषोंकी उपलब्धि प्रत्येक पदार्थमें है। इस लिए विशेषकी उपलब्धिसे अनेकान्तवाद संशयका हेतु नहीं है। अनेकान्तवादमें आठ विरोध दोष भी नहीं हैं। वे आठ दोष ये हैं-१ विरोध, २ वैयधिकरण्य, ३ अनवस्था, ४ संकर, ५ व्यतिकर, ६ संशय, ७ अप्रतिपत्ति और ८ अभाव।

शंका १-अस्ति नास्ति एक पदार्थमें विरोध दोष है।

उत्तर-विरोधका साधक अभाव है। जैसे एक वस्तुमें घटत्व और पटत्व, दोनों विरोधी हैं, परन्तु द्रव्यको छोड़ दिया जाय और केवल उस वस्तुके रूप ही देखे जायँ तो इन रूपोंमें विरोध नहीं है। द्रव्यकी दृष्टिसे वस्तुकी सत्ता है, परन्तु रूपोंमें विरोध है। इस तरह एक वस्तुमें भाव अभाव दोनों हो सकते हैं। निजरूपसे भाव और पररूपसे अभाव।

शंका २-अस्ति नास्तिका एक पदार्थमें होना एक अधिकरणमें होना है। इस लिए यह दोष है। दो अधिकरण होने चाहिए थे।

उत्तर-एक वृक्ष अधिकरणमें चल और अचल दोनों धर्म हैं। एक वस्तुमें रक्त श्याम पीला कई रंग हो सकते हैं। इसी प्रकार अनेकान्तवाद है।

३ शंका-जो अप्रमाणिक पदार्थोंकी परंपरासे कल्पना है उस कल्पनाके विश्रामके अभावको ही अनवस्था कहते हैं। अस्ति एक रूपसे है नास्ति पररूपसे है। दोनों एकरूपसे होने चाहिए, नहीं तो यह दोष आता है।

उत्तर-अनेकधर्मस्वरूप वस्तु पहले ही सिद्ध हो चुकी है। फिर कहनेकी आवश्यकता नहीं। यहाँ अप्रमाणिक पदार्थोंकी परंपराकी कल्पनाका सर्वथा अभाव है।

४ शंका-एक कालमें ही एक वस्तुमें सब धर्मोंकी व्याप्ति संकर दोष है, और वह इसमें है।

उत्तर-अनुभवसिद्ध पदार्थ सिद्ध होनेपर किसी भी दोषका अवकाश नहीं है। जब पदार्थकी सिद्धि अनुभवसे विरुद्ध होती है वह तभी इस दोषका विषय होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५ शंका–परस्पर विषयगमनको व्यतिकर कहते हैं। जैसे जिस रूपसे सत्त्व है उस रूपसे असत्त्व भी रहेगा न कि सत्त्व, और जिस रूपसे असत्त्व है उसी रूपसे सत्त्व रहेगा न कि असत्त्व, इसलिए व्यतिकर दोष है।

उत्तर–स्वरूपसे सत्त्व और पररूपसे असत्त्व अनुभवसिद्ध होनेसे संकर तथा व्यतिकर दोष नहीं है।

शंका ६–एक ही वस्तु सत्त्व असत्त्व उभय रूप होनेसे यह निश्चय करना अशक्य है कि यह क्या है। इस लिए संशय है।

उत्तर–संशयका निवारण पहले हीं कर आये हैं।

शंका ७–संशय होनेसे बोधका अभाव है, इसलिए अप्रतिपत्ति दोष है।

उत्तर–जब संशय नहीं है तो वस्तुके बोधका अभाव कैसा? इस लिए अप्रतिपत्ति दोष नहीं है।

शंका ८–अप्रतिपत्ति होनेसे सत्त्व असत्त्व स्वरूप वस्तुका ही अभाव भान होता है, इस लिए अभाव दोष है।

उत्तर–जब अप्रतिपत्ति दोष ही नहीं है तो अभाव कैसा। क्योंकि अप्रतिपत्ति होनेसे ही सत्त्व असत्त्व स्वरूप वस्तुका अभाव भान होता है।

अब यह दिखाते हैं कि दूसरे शास्त्रोंके भी मत वास्तवमें अनेकान्तवाद ही हैं, एकान्तवाद नहीं, जैसा कि वे मानते हैं।

साङ्ख्य

सत्व-रजस्-तमोगुणोंकी साम्यावस्थाको प्रधान (प्रकृति) कहते हैं। लाघव–शोष-ताप वाराण भिन्न भिन्न स्वभाववाले अनेक स्वरूप पदार्थोंका एक प्रधान स्वरूप स्वीकार करनेहीसे एक अनेक स्वरूप पदार्थ स्वीकृत हो चुका। एक पदार्थ है (प्रकृति), लेकिन स्वरूप उसके अनेक हैं। तीनों गुणोंका समूह ही प्रधान है, तथापि एक वस्तु अनेकात्मक स्वीकार करना अखण्डित है।

नैयायिक

द्रव्यादि पदार्थोंको सामान्य विशेषरूप स्वीकार करते हैं। अनेकमें एक व्यापक नियम होनेसे सामान्य और जो अन्य पदार्थोंसे एकको पृथक् करे वह विशेष है। जैसे गुण द्रव्य नहीं है, कर्म द्रव्य नहीं है। एकहीको सामान्य विशेष माना है। ऐसे ही गुणत्व कर्मत्व भी सामान्य विशेष रूप हैं।

बौद्ध

मेचक मणिके ज्ञानको एक और अनेक मानते हैं। पाँच रंगरूप रत्नको मेचक कहते हैं। इसका ज्ञान एक प्रतिभासरूप नहीं है। एक ज्ञान भी नहीं है और अनेक भी नहीं बल्कि एक पदार्थके नानाधर्म हैं जिनसे अनेकान्त और एकान्त दोनों मिलवाँ (मिश्र) ज्ञान होता है।

चार्वाकादि।

पृथिवी जल तेज वायु चार तत्त्वोंसे चैतन्य-बना मानते हैं। जैसे कोद्रव आदिसे मादक शक्ति। उनका सिद्धान्त है कि पृथिवी आदि अनेक स्वरूप एक ही चैतन्य है। इसलिए यह भी एकान्त अनेकान्तवाद हुआ।

मीमांसक

प्रमाता प्रमिति प्रमेयाकार एक ही ज्ञान होता है। घटको मैं जानता हूँ–इसमें अनेकपदार्थ-विषयतासहित एक ही ज्ञान स्वीकार किया है। यह भी अनेकान्तवाद ही हुआ।

इस छोटेसे लेखमें इस गम्भीर नयका विवरण करनेकी चेष्टा की है; परन्तु यह विषय तो स्पष्टतासे एक बृहदाकार पुस्तकमें ही वर्णन हो सकता है। इसलिए यदि यह लेख स्पष्ट नहीं है तो पाठक क्षमा करें। विषय बहुत गम्भीर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विचित्र ब्याह ।

(खण्ड काव्य ।)

(ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ।)

प्रथम सर्ग ।

अति सुशील बे-नाम नगरमें रामदेव रहते थे,
निर्धन होनेके कारण वे विविध दुःख सहते थे ।
धर्मभीरु थे, कर्मवीर थे किसी भाँति श्रम करके,
हाथ दबाकर काम चलाते थे वे अपने घरके ॥ १ ॥

उनकी स्त्रीका नाम सुशीला था, वह पतिव्रता थी,
रामदेवकी छाया सी वह निशदिन अनुव्रता थी ।
मनो माधवीलता किसी सुन्दरतरुसे लपटी हो,
धिक् उस नारीको जिसका मन पतिसे भी कपटी हो२

स्त्रीके लिए स्वपतिसे बढ़कर प्रेमी और नहीं है,
धनसे हीन कभी बिजली क्या देखी गई कहीं है ।
विना चन्द्रके कभी चद्रिका कहीं नहीं रहती है,
पति-वञ्चक स्त्री उभयलोकमें दुख ही दुख सहती है ।३।

जिस दम्पतिमें प्रेम परस्पर रहता है, वह जगमें—
सदा सुखी है, विघ्न न पड़ते उसके जीवन-मगमें ।
सत्यवान सावित्रीकी ज्यों जगमें प्रथित कथा है,
उसी भाँति दम्पतिका रहना सच्ची सुखदप्रथा है ॥ ४ ॥

यद्यपि पति-सेवामें तत्पर रहती सदा सुशीला,
सुत-हीनाको किन्तु शून्य लगती थी जगकी लीला ।
सचमुच ही सुत-हीन व्यक्तिको निज जीवन खलता है,
क्यों उदास वह रहे नही तरु, जो न कभी फलता है २

बिना शशीके निशा कृशा ज्यों सुखद नही होती है,
विना सलिलके क्या सरिता भी दुखद नही होती है ।
पुत्र-दीपके बिना अँधेरा रहता है त्यों घरमें,
क्या शोभित हो सकता है यदि सरसिज खिले न सरमें।

तनय-प्रणयके लिए न किसका मन लोभित होता है ?
आब्धि इन्दुको देख उमँगकर क्यों क्षोभित होता है ।
शिशुकी बोली मधुर तोतली किसे न वश करती है ?
ठुमक ठुमक करके उसकी गति मतिकी गति हरती है७

काल-क्रमसे धन्य सुशीलाने भी सुत सुख-पाया,
रामदेवने उसे गोदमें लेकर खूब खेलाया ।

तनय-अंगके रजसे जिसका अंग मलिन होजावे,
तो उसके सब दुःख दूर हों भाग्यवान् कहलावे ॥ ८ ॥

जैसे रामदेव थे वैसा, उनको भोला भाला—
बालक मिला, मिटी अब उनकी प्रबल हृदयकी ज्वाला ।
नाम पड़ा उसका हरिसेवक विज्ञोंकी अनुमतिसे,
होनहारपन लक्षित है उसका, उसकी ही गतिसे ॥ ९॥

पर सुख सदा नहीं रहता है अद्भुत जग-रचना है,
पाकर जन्म दुःख-दानवसे बड़ा कठिन बचना है ।
कठिन रोगसे अब पीड़ित हो रामदेव रोते हैं,
दीन क्षीण हो एक खाट पर बिना नींद सोते हैं॥१०॥

डाक्टर वैद्य हकीम नित्य ही उनके घर आते हैं,
नाड़ी देख, दवा देकरके, रुपये ले जाते हैं ।
दुखियोंको भी देख, सुखी नर होजाते हैं कैसे,
जलता देख अन्यके घरको मूढ़ तापते जैसे ॥ ११ ॥

जलदागमसे सुख पाते हैं मनमें जलचर जैसे,
शस्य-वृद्धिसे भी आह्लादित होते स्थलचर जैसे ।
जगको देख निरामय जैसे सुख पाते हैं योगी,
वैद्य सुखी होते हैं तैसे खूब बढ़ें जब रोगी ॥ १२ ॥

रामदेवकी बड़ी चिकित्सा होती है, पर कैसे—
रोग बढ़ा जाता है, आहुति पाकर पावक जैसे ।
प्राण बेचेंगे नहीं, माल भी नहीं रहा अब घरमें,
रामदेव अब लगे डूबने घोर शोक-सागरमें ॥ १३ ॥

रामदेव तब बड़े धैर्य्यसे बोले सुनो सुशीला,
कैसे कौन समझ सकता है अद्भुत जगकी लीला ॥
जो जैसा करता है उसको वैसा फल मिलता है,
क्यों गुलाबका फूल मनोहर, काँटोंमें खिलता है ? १४

कर्मविवश हो दुख सुख दोनों मिलते काल-क्रमसे,
दोष दूसरेको पर नाहक जग देता है भ्रमसे ।
कौन बचा सकता है उसको जो मरनेवाला है,
गिरते हुए सूर्यको कोई स्थिर करनेवाला है ॥ १५ ॥

है परिणाम वियोग योगका, व्यर्थ शोक करना है,
सबकी गति है एक, बता दो किसे नहीं मरना है ।
सोचो तो क्या तुम्हें मरणका दुःख न सहना होगा,
जिस विधि रक्खे ईश उसी विधि जगमें रहना होगा१६

पञ्चतत्त्व हैं नित्य सुशीले ! जीव नहीं मरता है,
तो भी सुनकर नाम मृत्युका व्यर्थ मनुज डरता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक देहको छोड़ दूसरी देह जीव पाता है।
इसी भाँति वह भटक भटक कर रोता है गाता है॥ १७॥

धन्य पुरुष वे कभी नहीं जो मरनेसे डरते हैं,
बच करके जो बुरे कर्मसे जग-सेवा करते हैं।
उनको ही सच्चे संन्यासी सदा चाहिए कहना,
कभी स्वप्नमें जिन्हें न आता जगमें डरकर रहना॥ १८॥

हरिसेवक जो सुखद रहा वह आज दुखद होता है,
किसी वस्तुके लिए साम्हने जब मेरे होता है।
यदि बीमार न होता मैं तो उसको देता लाकर,
हँस करके वह उसे खेलता बातें विविध बनाकर॥ १९॥

वित्त सुतादिक साथ न जाते उनके जो मरते हैं,
और उन्हींके लिए मनुज क्या क्या न पाप करते हैं।
स्वार्थ-विवश हो सभी यहाँ पर मिलते हैं अपनेमें,
पर परत्रमें काम न आवेगा कोई सपनेमें॥ २०॥

किसी वस्तु पर कभी न ज्ञानी दिखलाते हैं ममता,
सदा सभीके साथ शान्त हो रखते हैं वे समता।
अहंकार-युत ममता ही है जग-बन्धनका कारण,
जीवनमुक्त जीव है वह जो उसका करे निवारण॥ २१॥

पर तो भी तुम हरिसेवकको शिक्षा खूब दिलाना,
स्वयं भूखको सहलेना पर उसको खूब खिलाना।
जिस माताने और पिताने बालक नहीं पढ़ाया,
मनो उन्होंने निज सुतको बलि अपने हाथ चढ़ाया॥ २२॥

शिक्षितसे रक्षित होते हैं देश-धर्म घरवाले,
शिक्षित मनुज नहीं पड़ते हैं कभी दुःखके पाले।
इसी लिए तुम उसे दिलाना जैसे तैसे शिक्षा,
उसका लालन पालन करना स्वयं माँगकर भिक्षा॥ २३॥

आँखें भर तब तुरत सुशीला बोली महा विकल हो,
नाथ! आपके विना कभी क्यों मेरा जन्म सफल हो।
धैर्य धारिए, क्या बिगड़ा है, वैद्य बुला लेती हूँ,
उनसे लेकर रामबाणके सम ओषधि देती हूँ॥ २४॥

होंगे आप निरोग शीघ्र ही, चिन्ता तनिक न करिए,
दृढता-नौका पर चढ़कर प्रभु! रोग-नदीको तरिए।
जिसके मनमें स्थान नहीं पावेगी कभी निराशा,
वही मनुज देखेगा जगका अद्भुत अखिल तमाशा॥ २५॥

रामदेव तब सिसक सिसक कर बोले धीमे स्वरसे,
एक बार जल और पिलादो मुझको अपने करसे।
हरिसेवक है कहाँ दिखा दो देर न करो सुशीले,
शरच्चन्द्रसे उसके मुखसे सुन लूँ वचन रसीले॥ २६॥

वैद्य, दवाका नाम न लो, अब मैं परत्र जाऊँगा।
जननी जन्म-भूमिपर सोकर अनुपम सुख पाऊँगा,
स्मरण सुशीले करो उसे अब जो जगका कर्ता है,
भर्ता है सबका, सुखदाता, जो दुखका हर्ता है॥ २७॥

जितने मैंने कर्म किये हैं भलेबुरे इस जगमें,
देख रहा हूँ अड़े खड़े हैं वे सब मेरे मगमें।
वे ही मेरे साथ चलेंगे और न कुछ जावेगा,
चिर सञ्चित यह ठाट हमारा काम न कुछ आवेगा॥ २८॥

शान्त चित्त हो रामदेव फिर और नहीं कुछ बोले,
नेत्र बन्द कर लिए सदाके लिए, नहीं फिर खोले।
प्राण पखेरू गये कहाँ पर देखा नहीं किसीने,
मृत्यु-वज्रसे नहीं बचाया निजको कहीं किसीने॥ २९॥

देख सुशीला पतिकी गतिको मनमें अति घबराई,
काष्ठ-मूर्तिसी हुई, वदनसे कुछ भी बात न आई।
फिर हा नाथ! नाथ! कह कर वह गिरी भूमि पर नारी,
पति-वियोग-विद्युत्की उसको लगी चोट अति भारी॥ ३०॥

(क्रमशः।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी-जैनसाहित्यका इतिहास।

अथवा

जैनलेखकों और कवियोंद्वारा हिन्दी साहित्यकी सेवा।

[गताङ्कसे आगे।]

८ पाँड़े जिनदास—इनके बनाये हुए जम्बूचरित्र और ज्ञानसूर्योदय ये दो पद्य-ग्रन्थ हैं। कुछ फुटकरपद भी हैं। जम्बूचरित्रको इन्होंने संवत् १६४२ में बनाया है।

९ पाँड़े हेमराज। इनका समय सत्रहवीं शताब्दीका चतुर्थपाद और अठारहवींका प्रथम पाद है। पण्डित रूपचन्दजीके ये शिष्य थे। पंचास्तिकायके अन्तमें लिखा है—"यह श्रीरूपचन्दगुरुके प्रसादथी पाँड़े श्रीहेमराजने अपनी बुद्धि माफिक लिखत कीना।" इनके बनाये हुए तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं–प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका और भाषा भक्तामर। प्रवचनसार टीकाको इन्होंने संवत् १७०९ में समाप्त किया था:—

सत्रह सय नव उत्तरै,
माघ मास सितपाख।
पंचमि आदितवारकौं,
पूरन कीनी भाख॥

पंचास्तिकाय टीका पीछे बनाई गई है। ये दोनों ग्रन्थ गद्यमें है और इनमें शुद्ध अध्यात्मका वर्णन है। जैनसमाजमें ये ग्रन्थ बड़े ही महत्त्वके समझे जाते हैं। इनकी भाषा सरल और स्पष्ट है। उदाहरण—

"जो जीव मुनि हुवा चाहै है सो प्रथम ही कुटंब लोककौं पूछि आपकौं छुटावै है बंधु लोग-निसौं इसि प्रकार कहै है–अहो इसि जनके शरीरके तुम भाइबंध हौ इसि जनका आत्मा तुम्हारा नाहीं यौ तुम निश्चय करि जानौ।"

"ऐसैं नाहीं कि कोइ काल द्रव्य परिणाम विना होहि जातैं परिणाम विना द्रव्य गदहेके सींग समान है जैसैं गोरसके परिणाम दूध दही घृत तक्र इत्यादिक अनेक हैं इनि अपने परिणामनि विना गोरस जुदा न पाइए जहाँजु परिणाम नाहीं तहाँ गोरसकी सत्ता नाहीं तैसैं ही परिणाम विना द्रव्यकी सत्ता नाहीं।"

चौथा ग्रन्थ 'भाषा भक्तामर' है। यह मानतुंगसूरिके सुप्रसिद्ध स्तोत्र 'भक्तामर' का हिन्दी पद्यानुवाद है। अनुवाद सुन्दर है और इसका खूब ही प्रचार है। इससे मालूम होता है कि हेमराजजी कवि भी अच्छे थे। एक उदाहरण:–

प्रलय पवन करि उठी
आगि जो तास पटंतर।
वमै फुलिंग शिखा उतंग
परजलै निरंतर॥
जगत समस्त निगल
भस्मकर हैगी मानो।
तड़तड़ाट दव अनल,
जोर चहुंदिशा उठानो॥
सो इक छिनमैं उपशमै,
नाम-नीर तुम लेत।
होइ सरोवर परिनमै,
विकसित कमल समेत॥ ४१॥

इस अनुवादमें एक दोष यह है कि इसके लिए जो चौपाई छन्द चुना गया है, वह मूल शार्दूलविक्रीडित छन्दोंका भाव प्रकट करनेमें कहीं कहीं असमर्थ हो गया है और इस कारण कहीं कहीं क्लिष्टता आ गई है। छप्पय और नाराच छन्दोंमें यह बात नहीं है। इन छन्दोंमें जो अनुवाद है वह सरल है।

गोम्मटसार और नयचक्रकी वचनिका (सं० १७२४) भी इनकी बनाई हुई है। 'चौरासी बोल' नामकी एक छन्दोबद्ध रचना भी इनकी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्रहवीं-शताब्दीके नीचे लिखे कवियोंका उल्लेख मिश्रबन्धुविनोदमें मिलता है:—

१ उदयराज जती। इनके बनाये हुए राजनीतिसम्बन्धी फुटकर दोहे मिलते हैं। रचनाकाल १६६० के लगभग। ये बीकानेरनरेश रायसिंहके आश्रित थे जिन्होंने १६३० से १६८८ तक राज्य किया है।

२ विद्याकमल। भगवती—गीता बनाया। इसमें सरस्वतीका स्तवन है। रचनाकाल संवत् १६६९ के पूर्व।

३ मुनिलावण्य। 'रावणमन्दोदरी संवाद' सं० १६६९ के पहले बनाया।

४ गुणसूरि। १६७६ में 'ढोलासागर' बनाया।

५ लूणसागर। सं० १६८९ में 'अंजनासुन्दरी संवाद' नामक ग्रंथ बनाया।

अठारहवीं शताब्दी।

१ भैया भगवतीदास। ये आगरेके रहनेवाले थे। ओसवाल जाति और कटारिया इनका गोत्र था। इनके पिताका नाम लालजी और पितामहका दशरथसाहु था। इनकी जन्म और मृत्युकी तिथि तो मालूम नहीं है; परन्तु इनकी रचनाओंमें वि० संवत् १७३१ से लेकर १७५५ तकका उल्लेख मिलता है। वि० संवत् १७११ में जब पं० हीरानन्दने पंचास्तिकायका अनुवाद किया है, तब भगवतीदास नामके एक विद्वान् थे। उनका उसमें जिक्र है। शायद वे आप ही हों। 'भैया' शायद इनका उपनाम था। अपनी कवितामें इन्होंने जगह जगह यही 'छाप' रक्खी है। 'ब्रह्मविलास' नामके ग्रन्थमें जो कि छप चुका है इनकी तमाम रचनाओंका संग्रह है। छोटी मोटी सब रचनाओंकी संख्या ६७ है। कोई कोई रचनायें एक एक स्वतंत्र ग्रन्थके समान हैं। ये भी बनारसीदासजीके समान आध्यात्मिक कवि थे। प्रतिभाशाली थे। काव्यकी तमाम रीतियोंसे तथा शब्दालंकार अर्थालङ्कार आदिसे परिचित थे। बहुतसे अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका और चित्रबद्ध काव्य भी इन्होंने बनाये हैं। अनुप्रास और यमककी झंकार भी इनकी रचनामें यथेष्ट है।

सुनि रे सयाने नर कहा करै 'घर घर,'
तेरो जो सरीर घर घरी ज्यौं तरतु है।
छिन छिन छीजै आंय[१] जल जैसैं घरी जाय,
ताहूकौ इलाज कछू उर हू धरतु है॥

आदि जे सहे हैं ते तौ यादि कछु नाहिं तोहि,
आगैं कहौ कहा गति काहे उछरतु है।
घरी एक देखौ ख्याल घरीकी कहां है चाल,
घरी घरी घरियाल शोर यौं करतु है॥

लाई हौं लालन बाल अमोलक,
देखहु तो तुम कैसी बनी है।
ऐसी कहूँ तिहुँ लोकमैं सुन्दर,
और न नारि अनेक घनी है॥
याहीतैं तोहि कहूँ नित चेतन,
याहुकी प्रीति जो तोसौं सनी है।
तेरी औ राधेकी रीझ अनंत,
सो मोपै कहूं यह जात गनी है॥

शयन करत हैं रयनमैं,
कोटीधुज अरु रंक।
सुपनेमैं दोउ एकसे,
वरतैं सदा निशंक॥
द्वै द्वै लोचन सब धरैं,
मणि नहिं मोल कराहिं।
सम्यकदृष्टी जौहरी,
विरले इह जग माहिं॥
सारे विभ्रम मोहके,
सारे जगतमँझार।
सारे तिनके तुम परे,
सारे गुणहिं विसार॥

---

१ आयु।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद ।

कहा परदेशीको पतियारो; (टेक)
मनमानै तब चलै पंथकौं,
साँझ गिनै न सकारो।
सबै कुटंब छांड़ि इतही पुनि,
त्यागि चलै तन प्यारो॥ १॥
दूर दिसावर चलत आपही,
कोउ न राखनहारो।
कोऊ प्रीति करौ किन कोटिक,
अंत होयगौ न्यारो ॥ २ ॥
धनसौं राचि धरमसौं भूलत,
झूलत मोह मँझारो।
इहिविध काल अनंत गमायौ,
पायौ नहिं भवपारो॥ ३॥
सांचे सुखसौं विमुख होत है,
भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे ' भैया, '
आप ही आप सँभारो ॥ ४॥

आपकी सारी रचना धार्मिक भावोंसे भरी हुई है। शृंगाररससे आपको प्रेम नहीं था। इसी कारण आपने कविवर केशवदासकी ' रसिकप्रिया ' को पढ़कर उन्हें उलहना दिया है:—

बड़ी नीत लघु नीत करत है,
बाय सरत बदबोय भरी।
फोड़ा आदि फुनगनी मंडित,
सकल देह मनो रोग-दरी॥
शोणित-हाड़-मांसमय मूरत,
तापर रीझत घरी घरी।
ऐसी नारि निरख करि केशव,
'रसिकप्रिया' तुम कहा करी॥

इस ग्रन्थकी बहुतसी रचनायें साम्प्रदायिक हैं जिनका आनन्द जैनेतर सज्जनोंको नहीं आसकता; परन्तु बहुतसी रचनायें ऐसी भी हैं जिनके स्वादका अनुभव सभीको हो सकता है। कोई कोई रचना बहुत ही हृदयग्राहिणी है। भगवतीदासजी इस शताब्दिके नामी कवियोंमें गिने जाने योग्य हैं।

२ भूधरदास। आप भी आगरेके रहनेवाले थे। जातिके आप खण्डेलवाल थे। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें आप विद्यमान थे। आपके विषयमें इससे अधिक कुछ ज्ञात नहीं हुआ। आपके बनाये हुए तीन ग्रन्थ हैं—१ जैनशतक, २ पार्श्वपुराण और ३ पदसंग्रह। ये तीनों ही छप चुके हैं। जैनशतकमें १०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय हैं। प्रत्येक पद्य अपने अपने विषयको कहनेवाला है। इसे एक प्रकारका ' सुभाषित-संग्रह' कहना चाहिए। इसका प्रचार भी बहुत है। हजारों आदमी ऐसे हैं जिन्हें यह कण्ठाग्र हो रहा है। कुछ उदाहरण:—

बालपैन न सँभार सक्यौ कछु,
जानत नाहिं हिताहितहीको।
यौवन वैस बसी वनिता उर,
कै नित राग रह्यौ लछमीको॥
यौं पन दोइ विगोइ दये नर,
डा[illegible] क्यौं नरकै निज जीको।
आये है 'सेत' अजौं सठ चेत,
गई सु गई अब राख रहीको॥

काननमैं बसै ऐसौ आन न गरीब जीव,
प्राननसौं प्यारौ प्रान पूँजी जिस यहै है।
कायर सुभाव धरै काहूसौं न द्रोह करै,
सबहीसौं डरै दाँत लियैं 'तिन' रहै है॥
काहूसौं न रोष पुनि काहूपै न पोष चहै,
काहूके परोष परदोष नाहिं कहै है।
नेकु स्वाद सारिवेकौं ऐसे मृग मारिवेकौं,
हा हा रे कठोर! तेरौ कैसैं कर वहै है॥५५॥

यह विक्रम संवत् १७८१में बनकर समाप्त हुआ है। दूसरा ग्रन्थ पार्श्वपुराण संवत् १७८९ समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थकी जैनसमाजमें बड़ी प्रतिष्ठा है। हिन्दीके जैनसाहित्यमें यही एक चरितग्रन्थ है जिसकी रचना उच्चश्रेणीकी है और जो वास्तवमें पढ़ने योग्य है। यों तो सैकड़ों ही चरितग्रन्थ पद्यमें बनाये गये हैं, परन्तु उन्हें प्रायः तुकबन्दिके सिवाय और कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं कह सकते। यह ग्रन्थ स्वतंत्र है, किसी खास ग्रन्थका अनुवाद नहीं है। मूलकथानक पुराने ग्रन्थोंसे ले लिया गया है; पर प्रबन्ध-रचना कविने स्वयं की है। इसमें तत्त्वोंका और स्वर्ग, नरक, लोक गुणस्थान, आदिका जो विस्तृत वर्णन है, वह काव्यदृष्टिसे अच्छा नहीं मालूम होता है, मामूलीसे बहुत अधिक हो गया है, पर फिर भी रचनामें सौन्दर्य तथा प्रसाद गुण है। थोड़ेसे पद्य देखिए:—

उपजे एकहि गर्भसौं,
सज्जन दुर्जन येह।
लोह कवच रक्षा करै,
खांड़ो खंडै देह॥
पिता नीर परसै नहीं,
दूर रहै रवि यार।
ताअम्बुजमैं मूढ़ अलि,
उरझि मरै अविचार॥
पोखत तो दुख दोख करै सब,
सोखत सुख उपजावै।
दुर्जन-देह-स्वभाव बराबर,
मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचनजोग स्वरूप न याकौ,
विरचनजोग सही है।
यह तन पाय महा तप कीजै,
यामैं सार यही है॥
यथा हंसके वंसकौं,
चाल न सिखवै कोइ।
त्यौं कुलीन नरनारिकै,
सहज नमन गुण होइ॥
जिन-जननी रोमांच तन,
जगी मुदित मन जान।
किधौं सकंटक कमलिनी,
विकसी निसि-अवसान॥
पहरे सुभ आभरन तन,
सुन्दर वसन सुरंग।
कलपवेल जंगम किधौं,
चली सखीजन संग॥
रागादिक जलसौं भर्यौ,
तन तलाब बहु भाय।
पारस-रवि दरसत सुखै,
अघ सारस उड़ जाय॥
सुलभ काज गरुवो गनै,
अलप बुद्धिकी रीत।
ज्यौं कीड़ी कन ले चलै,
किधौं चली गढ़ जीत॥

तीसरा ग्रन्थ 'पदसंग्रह' है। इसमें सब मिलाकर ८० पद और वीनती आदि हैं। नमूनेके तौरपर एक पद सुन लीजिए:—

राग कालिंगड़ा।

चरखा चलता नाहीं,
चरखा हुआ पुराना॥ टेक॥
पग खूँटे द्वय हालन लागे,
उर मदरा खखराना।
छीदी हुई पांखड़ी पसली,
फिरै नहीं मनमाना॥ १॥
रसना तकलीने बल खाया,
सो अब कैसैं खूटै।
सबद सूत सुधा नहिं निकसै,
घड़ी घड़ी पल टूटै॥ २॥
आयु मालका नहीं भरोसा,
अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै,
वैद्य बाढ़ई हारे॥ ३॥
नया चरखला रंगा चंगा,
सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले,
अब देखैं नहिं भावै॥ ४॥
मौटा महीं कातकर भाई,
कर अपना सुरझेरा।
अंत आगमें ईंधन होगा,
'भूधर' समझ सबेरा॥ ५॥

३ द्यानतराय। ये आगरेके रहनेवाले थे। इनकी जाति अग्रवाल और गोत्र गोयल था। पिताका नाम श्यामदास और दादाका वीरदास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

था। इनका जन्म संवत् १७३३ में हुआ था। उस समय आगरेमें मानसिंह जौहरीकी 'सैली' थी। उसके उद्योगसे वहाँ जैनधर्मकी अच्छी चर्चा रहती थी। मानसिंह और विहारीदासको द्यानतरायने अपना गुरु माना है। क्योंकि इन्हींके सहवाससे और उपदेशसे इन्हें संवत् १७४६ में जैनधर्मपर विश्वास हुआ था। पीछे ये दिल्लीमें जाकर रहने लगे थे। दिल्लीमें जब ये पहुँचे तब वहाँ सुखानन्दजीकी सैली थी। इनका बनाया हुआ एक धर्मविलास नामका ग्रन्थ है, जो कुछ आगरेमें और कुछ दिल्लीमें रहकर बनाया गया है। १७८० में इसकी समाप्ति हुई है। इसे द्यानतविलास भी कहते हैं। कुछ अंशको छोड़कर यह छप चुका है। इसमें द्यानतरायजीकी तमाम रचनाओंका संग्रह है। संग्रह बहुत बड़ा है। अकेले पदोंकी संख्या ही ३३३ है। इन पदोंके सिवाय और पूजाओंके सिवाय ४५ विषय और हैं जो धर्मविलासके नामसे छपे हैं। इसके देखनेसे मालूम होता है कि द्यानतरायजी अच्छे कवि थे। कठिन विषयोंको सरलतासे समझाना इन्हें खूब आता था। ग्रन्थके अन्तमें आपने कितने अच्छे ढंगसे कहा है कि इस ग्रन्थमें हमारा कर्तृत्व कुछ नहीं है:—

अच्छरसेती तुक भई,
तुकसौं हूए छंद।
छंदनिसौं आगम भयौ,
आगम अरथ सुछंद॥

आगम अरथ सुछंद,
हमौंनैं यह नाहिं कीना।
गंगाका जल लेइ,
अरघं गंगाकौं दीना॥

सबद अनादि अनंत,
ग्यान कारन विनमच्छर।
मैं सब सेती भिन्न,
ग्यानमय चेतन अच्छर॥

ग्रन्थमें कविने एक विस्तृत प्रशस्ति दी है जिसमें उस समयकी अनेक जानने योग्य बातोंका उल्लेख किया है। आगरेका वर्णन कवि इस भाँति करता है:—

इधैं कोट उधैं बाग जमना बहै है बीच,
पच्छिमसौं पूरव लौं असीम प्रवाहसौं।
अरमनी कसमीरी गुजराती मारबारी
नरौं सेती जामैं बहु देस बसैं चाहसौं॥
रूपचंद बानारसी चंदजी भगौतीदास,
जहाँ भले भले कवि द्यानत उछाहसौं।
ऐसे आगरेकी हम कौन भाँति सोभा कहैं,
बड़ौ धर्मथानक है देखिए निगाहसौं॥३०॥

संसारके दुःखोंको देखकर कविके हृदयमें यह भावना उठती है—

सरसों समान सुख नहीं कहूं गृह माहिं,
दुःख तौ अपार मन कहाँ लौं बताइए।
तात मात सुत नारि स्वारथके सगे भ्रात,
देह तौ चलै न साथ और कौन गाइए॥
नर भौ सफल कीजै और स्वाद छांड़ि दीजै,
क्रोध मान माया लोभ चित्तमैं न लाइए।
ज्ञानके प्रकासनकौं सिद्धथानवासनकौं,
जीमैं ऐसी आवै है कि जोगी होइ जाइए॥७८॥

४ जगजीवन और ५ हीरानन्द। आगरेमें जिस समय बादशाह जहाँगीरका राज्य था, संगही अभयराज अग्रवाल बड़े भारी और सुप्रसिद्ध धनी थे। उनकी अनेक स्त्रियोंमें 'माहनदे' लक्ष्मीस्वरूपा थीं। जगजीवनका जन्म उन्हींकी कुक्षिसे हुआ था। जगजीवन भी अपने पिताहीके समान प्रसिद्ध पुरुष हुए। "समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ, ज्ञानिनकी मण्डलीमैं जिसकौ विकास है।" वे जाफरखाँ नामक किसी उमरावके मंत्री हो गये थे जैसा कि पंचास्तिकायमें लिखा है:—

ताकौ पूत भयौ जगनामी,
जगजीवन जिनमारगगामी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाफरखाँके काज समारै,
भया दिवान उजागर सारै ॥ ५ ॥

जगजीवनजीको साहित्यका अच्छा प्रेम था। आपकी प्रेरणासे हिन्दीमें कई जैनग्रन्थोंकी रचना हुई है। आप स्वयं भी कवि और विद्वान् थे। बनारसीदासजीकी तमाम कविताका संग्रह बनारसीविलासके नामसे आपहीने विक्रम संवत् १७०१ में किया है। बनारसीके नाटक समयसारकी आपने एक अच्छी टीका भी लिखी है, जो हमारे देखनेमें नहीं आई, पर उसके आधारसे जो गुजराती टीका लिखी गई है और भीमसी माणकके प्रकरणरत्नाकरमें प्रकाशित हुई है उसे हमने देखा है।

जगजीवनके समयमें भगवतीदास, घनमल, मुरारि, हीरानन्द आदि आदि अनेक विद्वान् थे। हीरानन्दजी शाहजहानाबादमें रहते थे। जगजीवनजीने उनसे पंचास्तिकाय समयसारका पद्यानुवाद करनेकी प्रेरणा की और तब उन्होंने संवत् १७११ में इस ग्रन्थको रचकर तैयार कर दिया। उन्होंने इसे केवल दो महीनेमें बनाया था। यह ग्रन्थ छप चुका है; गत वर्ष जैनमित्रके उपाहारमें दिया गया था। इसमें शुद्ध निश्चयनयसे जैनदर्शनमें मानी हुई (कालद्रव्यको छोड़कर शेष) पाँच द्रव्योंका स्वरूपनिरूपण है। तात्त्विक ग्रन्थ है। कविता बनारसी, भगवतीदास आदिके समान तो नहीं है, पर बुरी भी नहीं है। उदाहरणः—

सुखदुख दीसै भोगता,
सुखदुखरूप न जीव।
सुखदुख जाननहार है,
ग्यान सुधारसपीव ॥ ३२१ ॥

संसारी संसारमैं,
करनी करै असार।
सार रूप जानै नहीं,
मिथ्यापनकौं टार ॥ ३२४ ॥

पं० हीरानन्दजीने इसके सिवाय और कोई ग्रन्थ बनाया या नहीं, यह मालूम नहीं होसका।

६ आनन्दघन। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ये एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। उपाध्याय यशोविजयजीसे, सुनते हैं इनका एक बार साक्षात् हुआ था। यशोविजयजीने आनन्दघनजीकी स्तुतिरूप एक अष्टक बनाया है, अतः इन्हें यशोविजयजीके समसामयिक ही समझना चाहिए। ये पहुँचे हुए महात्मा और आध्यात्मिक कवि थे। आपकी केवल दो रचना उपलब्ध हैं एक स्तवनावली जो गुजराती भाषामें है और जिसमें २४ स्तोत्र हैं और दूसरी 'आनन्दघन बहत्तरी' जिसमें ७२ पद* हैं और हिन्दीमें है। आनन्दघनजीके निवासस्थान आदिका कुछ भी पता नहीं है; परन्तु उनके विषयमें गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक मनसुखलाल रवजीभाई मेहताने एक ४०–४२ पृष्ठका निबन्ध लिखा है और उक्त दोनों ग्रन्थोंकी भाषा पर विचार करके 'भाषाविवेकशास्त्र' की दृष्टिसे अनुमान किया है कि अमुक अमुक प्रान्तोंमें उन्होंने भ्रमण किया होगा और वे रहनेवाले अमुक प्रान्तके होंगे। आनन्दघन बहत्तरीकी प्रसिद्धि गुजरातमें बहुत है। उसके कई संस्करण छप चुके हैं। गुजरातियों द्वारा प्रकाशित होनेसे यद्यपि उसमें गुजरातीपन आ गया है, तथापि भाषा उसकी शुद्ध हिन्दी है। उसकी रचना कबीर सुन्दरदास आदिके ढंगकी है और

* रायचन्द्र काव्यमालामें जो 'आनन्दघन बहत्तरी' छपी है उसमें १०७ पद्य हैं। जान पड़ता है, इसमें बहुतसे पद औरोंके मिला दिये गये है। थोड़ा ही परिश्रम करनेसे हमें मालूम हुआ कि इसका ४२ वाँ पद 'अब हम अमर भये न मरेंगे' और अन्तका पद 'तुम ज्ञान-विभौ फूली वसन्त' ये दोनों ज्ञाननतरायजीके हैं। इसी तरह जाँच करनेसे और औरोंका भी पता चल सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी है। आनन्दघनजीकी मतमतान्तरोंके प्रति समदृष्टि थी। इनकी रचना भरमें खण्डन मण्डनके भाव नहीं है। उदाहरण,—

जग आशा जंजीरकी,
गति उलटी कछु और।
जकरचौ धावत जगतमैं,
रहै छुटौ इक ठौर॥
आतम अनुभव फूलकी,
कोउ नवेली रीत।
नाक न पकरै वासना,
कान गहै न प्रतीत॥

राग सारंग।

मेरे घट ज्ञान भान भयौ भोर॥ टेक॥
चेतन चकवा चेतन चकवी,
भागौ विरहकौ सोर॥ १॥
फैली चहुं दिशि चतुर भाव रुचि,
मिट्यौ भरम-तम-जोर।
आपकी चोरी आप ही जानत,
औरै कहत न चोर॥ २॥
अमल कमल विकसित भये भूतल,
मंद विषय शशिकोर।
'आनँदघन' इक वल्लभ लागत,
और न लाख किरोर॥ ३॥

७ यशोविजय। आप श्वेताम्बर सम्प्रदायके बहुत ही प्रसिद्ध विद्वान् हुए है। इनका जन्म सं० १६८० के लगभग हुआ था और देहान्त सं० १७४५ में गुजरातके डभोई नगरमें। ये नयविजयजीके शिष्य थे। संस्कृत, प्राकृत गुजराती और हिन्दी इन चारों भाषाओंके आप कवि थे। आपका एक जीवनचरित अँगरेजीमें प्रकाशित हुआ है। उससे मालूम होता है कि संस्कृतमें आपने छोटे बड़े सब मिलाकर लगभग ५०० ग्रन्थ बनाये हैं और उनमेंसे अधिकांश उपलब्ध हैं। न्याय, अध्यात्म आदि अनेक विषयोंपर आपका अधिकार था। यद्यपि आप गुजराती थे, पर विद्याभ्यासके निमित्त कितने ही वर्ष काशीमें रहे थे, इस कारण हिन्दीमें भी व्युत्पन्न हो गये थे। 'सज्झाय, पद अने स्तवनसंग्रह' नामके मुद्रित संग्रहमें आपके हिन्दी पदोंका संग्रह 'जसविलास' नामसे छपा है। इसमें आपके ७५ पदोंका संग्रह है। इसी संग्रहमें आपके आठ पद 'आनन्दघन अष्टपदी' के नामसे जुदा छपे हैं जो आपने महात्मा आनन्दघनजीके स्तवनस्वरूप बनाये थे। इन सब पदोंके देखनेसे मालूम होता है कि यशोविजयजी हिन्दीके भी अच्छे कवि थे। आपकी इस रचनामें गुजरातीकी झलक बहुत ही कम—प्रायः नहींके बराबर—है। परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि उक्त संग्रह छपानेवालोंने हिन्दीकी बहुत ही दुर्दशा कर डाली है। अच्छा हो यदि कोई श्वेताम्बर सज्जन इस संग्रहको शुद्धतापूर्वक स्वतंत्ररूपसे छपा दें। आपकी हिन्दी कवितामें अध्यात्मिक भावोंकी विशेषता है।

हम मगन भये प्रभु ध्यानमैं।
विसर गई दुविधा तनमनकी,
अचिरा-सुत-गुनगानमैं॥ हम०॥ १॥
हरि हर ब्रह्म पुरंदरकी रिधि,
आवत नहिं कोउ मानमैं।
चिदानंदकी मौज मची है,
समतारसके पानमैं॥ हम०॥ २॥
इतने दिन तू नाहिं पिछान्यौ,
जन्म गँवायौ अजानमैं।
अब तो अधिकारी ह्वै बैठे,
प्रभुगुन अखय खजानमैं॥ ३॥
गई दीनता सभी हमारी,
प्रभु तुझ समकित-दानमैं।
प्रभुगुन अनुभवके रसआगै,
आवत नहिं कोउ ध्यानमैं॥ ४॥
जिनही पाया तिन हि छिपाया,
न कहै कोऊ कानमैं।
ताली लगी जबहि अनुभवकी,
तब जानै कोउ ज्ञानमैं॥ ५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुगुन अनुभव चन्द्रहास ज्यौं,
सो तो रहै न म्यानमैं।
वाचक 'जस' कहै मोह महा हरि,
जीत लियो मैदानमैं॥ ६॥

आपका बनाया हुआ 'दिग्पट चौरासी बोल' छप गया है। यह भी हिन्दी पद्यमें है। पाँड़े हेमराजजीका बनाया हुआ एक 'सितपट चौरासी बोल' नामका खण्ड ग्रन्थ है, जिसमें श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जो चौरासी बातें दिगम्बर सम्प्रदायके विरुद्ध मानी गई हैं उनका खण्डन है। 'दिग्पट चौरासी बोल' उसीके उत्तरस्वरूप लिखा गया है। संभव है कि इनकी हिन्दीरचना और भी हो, पर हम उससे परिचित नहीं हैं।

८ विनयविजय। ये भी श्वेताम्बरसम्प्रदायके विद्वान् थे और यशोविजयजीके ही समयमें हुए हैं। सुनते हैं इन्होंने यशोविजयके ही साथ रह कर काशीमें विद्याध्ययन किया था। उपाध्याय कीर्तिविजयके ये शिष्य थे और संवत् १७३९ तक मौजूद थे। ये भी संस्कृतके अच्छे विद्वान् और ग्रन्थकर्त्ता थे। इनके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ हैं और वे प्रायः उपलब्ध हैं। इनका 'नयकर्णिका' नामका न्यायग्रन्थ अँगरेजी टीका सहित छप गया है। काशीमें रहनेके कारण हिन्दीकी योग्यता भी आपमें अच्छी हो गई थी। जिस संग्रहमें यशोविजयजीके पद छपे हैं उसीमें आपके पद भी 'विनयविलास' के नामसे छपे हैं। पद्योंकी संख्या ३७ है। अच्छी रचना है। एक पद देखिए:—

घोरा झूठा है रे, मत भूले असवारा।
तोहि मुधा ये लागत प्यारा,
अंत होयगा न्यारा॥घो०॥

चरै चीज अरु डरै कैदसौं,
ऊबट चले अटारा।
ज्ञान कसै तब सोया चाहै,
खानेकौं होशियारा॥ २॥

खूब खजाना खरच खिलाओ,
द्यो सब न्यामत चारा।
असवारीका अवसर आवै,
गलिया होय गँवारा॥ ३॥

छिनु ताता छिनु प्यासा होवै,
खिजमत करावनहारा (?)।
दौर दूर जंगलमें डारै,
झूरै धनी विचारा॥ ४॥

करहु चौकड़ा चातुर चौकस,
द्यो चाबुक दो चारा।
इस घोरेकौं 'विनय' सिखावो,
ज्यौं पावो भवपारा॥ ५॥

९ बुलाकीदास। लाला बुलाकीदासका जन्म आगरेमें हुआ था। आप गोयलगोत्री अग्रवाल थे। आपका व्यंक 'कसावर' था। आपके पूर्वपुरुष बयाने (भरतपुर) में रहते थे। साहु-अमरसी-प्रेमचन्द-श्रमणदास-नन्दलाल और बुलाकीदास यह इनकी वंशपरम्परा है। श्रमणदास अपना निवासस्थान छोड़कर आगरेमें आ रहे थे। आपके पुत्र नन्दलालको सुयोग्य देखकर पण्डित हेमराजजीने (प्रवचनसार-पंचास्तिकाय-टीकाके कर्त्ताने) अपनी कन्या ब्याह दी। उसका नाम 'जैनी' था। हेमराजजीने इस लड़कीको बहुत ही बुद्धिमती और व्युत्पन्न की थी। बुलाकीदासजी इसीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। वे अपनी माताकी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं:—

हेमराज पंडित वसै,
तिसी आगरे ठाइ।
गरग गोत गुन आगरौ,
सब पूजैं जिस पाइ॥

उपजी ताकै देहजा,
'जैनी' नाम विख्याति।
सीलरूप गुन आगरी,
प्रीतिनीतिकी पाँति॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीनी विद्या जनकनैं,
कीनी अति व्युत्पन्न ।
पंडित जापै सीख लैं,
धरनीतलमैं धन्न ॥

सुगुनकी खानि कीधौं सुकृतकी वानि सुभ,
कीरतिकी दानि अपकीरति-कृपानि है ।
स्वारथविधानि परस्वारथकी राजधानि,
रमाहूकी रानि कीधौं जैनी जिनवानि है॥
धरमधरानि भव भरम हरनि कीधौं,
असरन-सरनि कीधौं जननि-जहानि है ।
हेमसौ...पन सीलसागर...भनि,
दुरितदरानि सुरसरिता समानि है ॥

बुलाकीदासजी पीछे अपनी माताके सहित दिल्लीमें आ रहे थे । पाण्डवपुराण या 'भारत भाषा' की रचना आपने दिल्लीमें ही रहकर की थी । इनकी माता 'जैनी' या 'जैनुलदे' ने जब शुभचन्द्र भट्टारकका बनाया हुआ संस्कृत पाण्डवपुराण पढ़ा, तब वह उन्हें बहुत पसन्द आया, इसलिए उन्होंने पुत्रसे कहा:—

ताकौ अर्थ विचारकै,
भारत भाषा नाम ।
कथा पांडुसुत पंचकी,
कीजै बहु अभिराम ॥
सुगम अर्थ श्रावक सबै,
भनैं भनावैं जाहि ।
ऐसो रचिकै प्रथम ही,
मोहि सुनावौ ताहि ॥

इस आज्ञाको मस्तक पर चढ़ाकर बुलाकीदासजीने इस ग्रन्थकी रचना की है । इसी लिए इस ग्रन्थके प्रत्येक सर्गमें 'श्रीमन्महाशीलाभरणभूषितायां जैनीनामाङ्कितायां भारतभाषायां' इस प्रकार लिखकर उन्होंने अपनी माताकी स्मृति रक्षा की है । ग्रन्थके अन्तमें भी कविने अपनी माताके प्रति बहुत भक्ति प्रकट की है । ग्रन्थकी श्लोकसंख्या ५५०० है । रचना मध्यम श्रेणीकी है, पर कहीं कहीं बहुत अच्छी है । कविमें प्रतिभा है, पर वह मूलग्रन्थकी कैदके कारण विकसित नहीं होने पाई । मूलग्रन्थकी ही रचना बढ़ियाँ नहीं है । यह ग्रन्थ संवत् १७५४ में समाप्त हुआ है ।

१० **किसनसिंह** । ये सांगानेरके रहनेवाले खण्डेलवाल थे । इनका गोत्र पाटणी था । 'संघी' पद था । कल्याणसिंगईके सुखदेव और आनन्दसिंह दो बेटे थे । सुखदेवके थान, मान और किशनसिंह ये तीन बेटे हुए । किशनसिंहजीने संवत् १७८४ में क्रियाकोश नामका छन्दोबद्ध ग्रन्थ बनाया, जिसकी श्लोकसंख्या २९०० है । रचना स्वतंत्र है; पर कविताकी दृष्टिसे बिलकुल साधारण है । इस ग्रन्थका प्रचार बहुत है । भद्रबाहुचरित्र (सं०१७८५) और रात्रिभोजनकथा (सं०१७७३) ये दो छन्दोबद्ध ग्रन्थ भी आपहीके बनाये हुए हैं ।

११ **शिरोमणिदास** । ये पण्डित गंगादासके शिष्य थे । इन्होंने भट्टारक सकलकीर्तिके उपदेशसे, सिहरोन नगरमें रहकर, जहाँ राजा देवीसिंह राज्य करते थे, सं० १७३२ में, दोहा-चौपाईबद्ध 'धर्मसार' नामके ग्रन्थकी रचना की । इसमें ७६३ दोहा चौपाई हैं । रचना स्वतंत्र है । किसी ग्रन्थका अनुवाद नहीं है । कविता साधारण है ।

१२ **रायचन्द** । इनका बनाया हुआ 'सीताचरित' नामका छन्दोबद्ध ग्रन्थ है जिसकी श्लोकसंख्या ३६०० है । रविषेणके पद्मपुराणके आधारसे यह बनाया गया है । बननेका समय संवत् १७१३ है । कवितामें कवि अपना नाम 'चन्द्र' लिखता है । कविता साधारण है ।

१३ **मनोहरलाल** । इन्होंने संवत् १७०५ में धर्मपरीक्षा नामका ग्रन्थ बनाया है । यह आचार्य अमितगतिके इसी नामके संस्कृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थका पद्यानुवाद है । कवि अपना परिचय इस प्रकार देता है:—

कविता मनोहर खंडेलवाल सोनी जाति,
मूलसंघी मूल जाकौ सांगानेर वास है ।
कर्मके उदयतैं धामपुरमैं वसन भयौ,
सबसौं मिलाप पुनि सज्जनकौ दास है ॥
व्याकरण छंद अलंकार कछु पढ़्यौ नाहिं
भाषामैं निपुन तुच्छ बुद्धिकौं प्रकास है ।
बाई दाहिनी कछू समझै संतोष लीयैं,
जिनकी दुहाई जाकैं जिनहीकी आस है ॥

कविता साधारण है । कोई कोई पद्य बहुत चुभता हुआ है ।

१४ जोधराज गोदीका । इनका बनाया हुआ ' सम्यक्त्वकौमुदी ' नामका ग्रन्थ है । उसके अन्तमें इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—

अमर पूत जिनवर भगत,
जोधराज कवि नाम ।
बासी सांगानेरकौ,
करी कथा सुखधाम ॥
संवत सत्रहसौ चौईस,
फागुन वदि तेरस सुभदीस ।
सुकरवार संपूरन भई,
यहै कथा समकित गुन ठई ॥

इसकी रचना संस्कृत ' सम्यक्त्वकौमुदी ' के आधारसे की गई है । इसमें सब मिलाकर ११७८ दोहा चौपाई हैं । कविता साधारण है । इनके बनायेहुए और छह ग्रन्थोंका उल्लेख बाबू ज्ञानचन्दजीने अपनी ग्रन्थसूचीमें किया है । प्रीतंकरचरित्र (सं० १७२१), धर्मसरोवर, कथाकोश (१७२२), प्रवचनसार (१७२६), भावदीपिका वचनिका और ज्ञानसमुद्र । इनमेंसे भावदीपिकाको छोड़कर सब पद्यमें हैं ।

१५ खुशालचन्द काला । ये सांगानेरके रहनेवाले खण्डेलवाल थे । रचनामें तो कोई सत्त्व नहीं है, पर इन्होंने बडे बड़े ग्रन्थोंका पद्यानुवाद कर डाला है । इनकी तमाम रचनाकी लोकसंख्या ५०–६० हजारसे कम न होगी । इन्होंने हरिवंशपुराण संवत् १७८० में, पद्मपुराण १७८३ में और उत्तरपुराण १७९९ में बनाया है । धन्यकुमारचरित्र, व्रतकथाकोश, जम्बूचरित्र, और चौवीसी पूजापाठ भी इन्हींके बनाये हुए हैं । बम्बईके मंदिरमें खुशालचन्दजीका बनाया हुआ एक यशोधरचरित्र है, जो संवत् १७८१ में बना है । मालूम नहीं, इसके कर्त्ता खुशालचन्द हरिवंश आदिके कर्त्तासे भिन्न हैं या वे ही हैं । इन्होंने अपनेको सुन्दरका पुत्र लिखा है और दिल्ली शहरके जयसिंहपुरामें रहकर ग्रन्थ बनाया है । छन्दोवद्ध सद्भाषितावली भी इन दोमेंसे किसी एककी बनाई हुई है जो संवत् १७७३ में बनी है ।

१६ रूपचन्द । ये पाँड़े रूपचन्दजीसे भिन्न हैं । इनकी बनाई हुई बनारसीकृत नाटकसमयसारकी टीका हमने एक सज्जनके पास देखी थी । बड़ी सुन्दर और विशद टीका है । सं० १७९८ में बनी है । उसमें ग्रन्थकर्ताका परिचय भी दिया गया है, पर वह अब मुझे स्मरण नहीं है ।

१७ नेणसी मूता । ये ओसवाल जातिके श्वेताम्बर जैन थे । जोधपुरके महाराजा बड़े जसवन्तजीके दीवान थे । मारवाड़ी भाषामें राजस्थानका एक इतिहास लिखकर—जिसे ' मूता नेणसीकी ख्यात ' कहते हैं—ये अपना नाम अजर अमर कर गये हैं । सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजीने इस ग्रन्थकी बड़ी प्रशंसा की है और इसे एक अपूर्व और प्रामाणिक इतिहास बतलाया है । यह संवत् १७१६ से १७२२ तक लिखा गया है । ऐसी सैकड़ों बातोंका इसमें उल्लेख है जिसका कर्नल टाडके राजस्थानमें और दूसरे ग्रन्थोंमें पता भी नहीं है । इसमें राजपू-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तोंकी ३१ जातियोंका इतिहास दिया है। इसके पहले भागमें पहले तो एक एक परगनेका इतिहास लिखा है। उसमें यह दिखाया है कि परगनेका वैसा नाम क्यों हुआ, उसमें कौन कौन राजा हुए, उन्होंने क्या क्या काम किये और वह कब और कैसे जोधपुरके अधिकारमें आया। फिर प्रत्येक गाँवका थोड़ा थोड़ा हाल दिया है कि वह कैसा है, फसल कौन कौन धान्योंकी होती है, खेती किस किस जातिके लोग करते हैं, जागीरदार कौन हैं, गाँव कितनी जमाका है, पाँच वर्षोंमें कितना कितना रुपया बढ़ा है, तालाब नाले और नालियाँ कितनी हैं, उनके इर्द गिर्द किस प्रकारके वृक्ष हैं। इत्यादि। यह भाग कोई चारसौ पाँचसौ पत्रोंका है। इसमें जोधपुरके राजाओंका इतिहास राव सियाजीसे महाराजा बड़े जसवन्तसिंहजीके समयतकका है। दूसरे भागमें अनेक राजपूत राजाओंके इतिहास हैं। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। यदि कोई जैन धनिक इसे प्रकाशित करा देवे, तो बड़ा लाभ हो। मूता नेणसी इस ग्रन्थको लिखकर जैनसमाजके विद्वानोंका एक कलंक धो गये हैं कि ये देशके सार्वजनिक कार्योंसे उपेक्षा रखते हैं।

१८ दौलतराम। ये बसवाके रहनेवाले थे और जयपुरमें आ रहे थे। इनके पिताका नाम आनन्दराम था। इनकी जाति खण्डेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। ये राज्यके किसी बड़े पद पर थे। हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमें लिखा है:—

सेवक नरपतिकौ सही,
नाम सु दौलतराम।
तानै यह भाषा करी,
जपकर जिनवर नाम॥ २५॥

संवत् १७९५ में जब इन्होंने क्रियाकोश लिखा था, तब ये किसी राजाके मंत्री थे जिसका संक्षिप्त नाम 'जयसुत' (जयसिंहके पुत्र) लिखा है। उस समय ये उदयपुरमें थे:—

संवत सत्रासै पिच्याणव,
भादव सुदि वारस तिथि जानव।
मंगलवार उदैपुरमाहीं,
पूरन कीनी संसै नाहीं॥

आनँदसुत जयसुतकौ मंत्री,
जयकौ अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनि-दासा,
जिनमारगकी शरण गहै॥

हरिवंशपुराणकी रचनाके समय जयपुरमें रत्नचन्द्रजी दीवान थे, ऐसा उक्त पुराणमें उल्लेख है। उसमें यह भी लिखा है कि इस राज्यके मंत्री अकसर जैनी होते हैं। रायमल्ल नामक एक धर्मात्मा सज्जन जयपुरमें थे। उनकी प्रेरणासे दौलतरामजीने आदिपुराण, पद्मपुराण और हरिवंशपुराणकी वचनिकायें या गद्यानुवाद लिखे हैं। हरिवंशपुराणकी वचनिकाके लिए तो उन्होंने मालवेसे पत्र लिखकर प्रेरणा की थी। वे मालवेको किसी कार्यके लिए गये थे। वहाँ भाषा पद्मपुराण और आदिपुराणसे लोगोंका बहुत उपकार हो रहा था, यह देख उन्होंने हरिवंशपुराणकी भी वचनिका बनाईजानेकी आवश्यकता समझी। इससे उनका भाषाप्रेम प्रकट होता है। सचमुच ही जैनसमाजको इन ग्रन्थोंका भाषानुवाद हो जानेसे बहुत ही लाभ हुआ है। जैनधर्मकी रक्षा होनेमें इन ग्रन्थोंसे बहुत सहायता मिली है। ये ग्रन्थ बहुत बड़े बड़े हैं। हरिवंशपुराणकी वचनिका १९ हजार श्लोकोंमें और पद्मपुराणकी लगभग २० हजार श्लोकोंमें हुई है। आदिपुराण इससे भी बड़ा है। वचनिका बहुत सरल है। केवल हिन्दीभाषाभाषी प्रान्तोंमें ही नहीं, गुजरात और दक्षिणमें भी ये ग्रन्थ पढ़े और समझे जाते हैं। इनकी भाषामें ढूंढारीपन है, तो भी वह समझ ली जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिवंशकी रचना संवत् १८२९ में, आदिपुराणकी १८२४ में और पद्मपुराणकी १८२३ में हुई है । योगीन्द्रदेवकृत परमात्म-प्रकाशकी और श्रीपालचरित्रकी वचनिका भी आपकी ही बनाई हुई है । पं० टोडरमलजी पुरुषार्थसिद्धुपायकी भाषाटीका अधूरी छोड़ गये थे । वह भी दौलतरामजीने पूरी की है । पुण्यास्रवकी वचनिका सं० १७७७ में बनी है । मालूम नहीं वह इन्हींकी है या किसी अन्य दौलतरामकी ।

१९ **खड्गसेन** (आगरानिवासी) । त्रिलोकदर्पण छन्दोवद्ध (वि०सं०१७१३) ।

२० **जगतराय** । आगमविलास, सम्यक्त्वकौमुदी, और पद्मनंदिपच्चीसी (सं० १७२१) । सब छन्दोवद्ध ।

२१ **जिनहर्ष** (पाटननिवासी)। श्रेणिकचरित्र छन्दोवद्ध (१७२४) ।

२२ **देवीसिंह** (नरवरनिवासी)। उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला छन्दोवद्ध (संवत् १७९६) ।

२३ **जीवराज** । (बड़नगरनिवासी) । परमात्मप्रकाश वचनिका (सं० १७६२) ।

२४ **ताराचन्द** । ज्ञानार्णव छन्दोवद्ध । (सं० १७२८) ।

२५ **विश्वभूषणभट्टारक** । जिनदत्तचरित्र छन्दोवद्ध (सं०१७३८)।

मिश्रबन्धुविनोदमें इस शताब्दीके नीचे लिखे कवियोंका भी उल्लेख किया है:—

१ **हरखचन्द** साधु । श्रीपालचरित्र । रचनाकाल १७४० ।

२ **जिनरंगसूरि** । सौभाग्यपंचमी । समय १७४१ ।

२६ **धर्ममन्दिर गणि** । प्रबोधचिन्तामणि, चोपीमुनिचरित्र । रचनाकाल १७४१–१७५० ।

४ **हंसविजय जती** । कल्पसूत्रकी टीका । समय १७८० ।

५ **ज्ञानविजय जती** । मलयचरित्र । १७८१ संवत् ।

६ **लाभवर्द्धन** । उपपदी । संवत् १७११ ।

उन्नीसवीं शताब्दी ।

१ **टोडरमल**। इस शताब्दीके सबसे प्रसिद्ध लेखक पं० टोडरमलजी हैं । दिगम्बरजैन सम्प्रदायमें आप ऋषितुल्य माने जाते हैं। केवल २२ ही वर्षकी अवस्थामें आप इतना काम कर गये हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। आपकी रचनासे जैनसमाजमें तत्त्वज्ञानका बन्द हुआ प्रवाह फिरसे बहने लगा। जहाँ कर्म फिलासफीकी चर्चा करना केवल संस्कृतके-प्राकृतके विद्वानोंके हिस्सेमें था, वहाँ आपकी कृपासे साधारण हिन्दी जाननेवाले लोग भी कर्मतत्त्वोंके विद्वान् बनने लगे। आप जयपुरके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन थे। सुनते हैं जयपुरराज्यके दीवान अमरचन्द्रजीने आपको अपने पास रख कर विद्याध्ययन कराया था। १५–१६ वर्षकी उम्रमें ही आप ग्रंथरचना करने लगे थे। जैनधर्मके असाधारण विद्वान् थे। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गोम्मटसार वचनिका' है, जिसमें क्षपणासार और लब्धिसार भी शामिल है । इसकी श्लोकसंख्या लगभग ४५ हजार है । यह नेमिचन्द्र स्वामीके प्राकृत गोम्मटसारकी भाषाटीका है। इसमें जैनधर्मके कर्मसिद्धान्तका विस्तृत विवेचन है । दूसरा ग्रन्थ त्रैलोक्यसार वचनिका है। यह भी प्राकृतका अनुवाद है । इसमें जैनमतके अनुसार भूगोल और खगोलका वर्णन है । इसकी श्लोकसंख्या लगभग १०–१२ हजार होगी । तीसरा ग्रन्थ गुणभद्रस्वामीकृत संस्कृत आत्मानुशासनकी वचनिका है । इसमें बहुत ही हृदयग्राही आध्यात्मिक उपदेश है । भर्तृहरिके वैराग्यशत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कके ढंगका है । शेष दो ग्रन्थ अधूरे हैं– १ पुरुषार्थसिद्धु पायकीवचनिका और २ मोक्षमार्ग-प्रकाशक । इनमेंसे पहले ग्रन्थको तो पं० दौलतरामजी काशलीवालने पूर्ण कर दिया था; परन्तु दूसरा ग्रन्थ मोक्षमार्गप्रकाशक अधूरा ही है । यह छप चुका है । ५०० पृष्ठका ग्रन्थ है । बिल्कुल स्वतंत्र है । गद्य हिन्दीमें जैनोंका यही एक ग्रन्थ है जो तात्त्विक होकर भी स्वतंत्र लिखा गया है । इसे पढ़नेसे मालूम होता है कि यदि टोडरमलजी वृद्धावस्थातक जीते, तो जैनसाहित्यको अनेक अपूर्व रत्नोंसे अलंकृत कर जाते । आपके ग्रन्थोंकी भाषा जयपुरके बने हुए तमाम ग्रन्थोंसे सरल, शुद्ध और साफ है । अपने ग्रन्थोंमें मंगलाचरण आदिमें जो आपने पद्य दिये हैं, उनके पढ़नेसे मालूम होता है कि आप कविता भी अच्छी कर सकते थे । आपकी जन्म और मृत्युकी तिथियाँ हमें मालूम नहीं हैं। आपने गोम्मटसारकी टीका विक्रम संवत् १८१८ में पूर्ण की है और आपके पुरुषार्थ-सिद्ध्युपायका शेष भाग दौलतरामजीने सं० १८२७ में समाप्त किया है । अर्थात् इससे वर्ष दो वर्ष पहले आपका स्वर्गवास हो चुका होगा और यदि आपकी मृत्यु ३२–३३ वर्षकी अवस्थामें हुई हो तो आपका जन्म वि० संवत् १७९३के लगभग माना जा सकता है । आपकी लिखी हुई एक धर्ममर्मपूर्ण चिट्ठी भी है जो आपने मुलतानके पंचोंको लिखी थी । यह एक छोटी मोटी पुस्तकके तुल्य है । छप चुकी है ।

२ जयचन्द्र । इस शताब्दीके लेखकोंमें पं० जयचन्दजीका दूसरा नम्बर है । आप भी जयपुरके रहनेवाले थे और छावड़ा-गोत्री खंडेलवाल थे । आपने नीचे लिखे ग्रन्थोंकी भाषावचनिकायें लिखी हैं । इन सब ग्रन्थोंकी श्लोकसंख्या सब मिलाकर ६० हजारके लगभग है ।

१ सर्वार्थसिद्धि	विक्रम संवत्	१८६१
२ परीक्षामुख (न्याय)	,,	१८६३
३ द्रव्यसंग्रह	,,	१८६३ ।
४ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा	,,	१८६६ ।
५ आमख्याति समयसार	,,	१८६४ ।
६ देवागम (न्याय)	,,	१८८६ ।
७ अष्टपाहुड	,,	१८६७ ।
८ ज्ञानार्णव	,,	१८६९ ।
९ भक्तामरचरित्र	,,	१८७० ।
१० सामायिक पाठ ११ चन्द्रप्रभकाव्यके द्वितीय सर्गका न्यायभाग १२ मतसमुच्चय (न्याय) १३ पत्रपरीक्षा (न्याय)	समय मालूम नहीं।	

ये सब ग्रन्थ संस्कृत और प्राकृतके कठिन कठिन ग्रन्थोंके भाषानुवाद हैं । पाँच ग्रन्थ तो केवल न्यायके हैं । (भक्तामरको छोड़कर) शेष सब उच्चश्रेणीके तात्त्विक ग्रन्थ हैं । पद्य भी आप अच्छा लिख सकते थे । आपने फुटकर पद और विनतियाँ भी बनाई हैं जिनकी श्लोकसंख्या ११०० है । द्रव्यसंग्रहका पद्यानुवाद भी आपने किया है । आपकी लिखी हुई एक चिट्ठी हमने वृन्दावनविलासमें प्रकाशित की है जो संवत् १८७० की लिखी हुई है और पद्यमें है । आपकी गद्यलेखशैली अच्छी है । आपके बनाये हुए कई बड़े बड़े ग्रन्थ छप चुके हैं । लेख बड़ा हो गया है, इस कारण हम आपकी रचनाके उदाहरण नहीं दे सकते ।

३ वृन्दावन । वृन्दावनजीका जन्म शाहाबाद जिलेके बारा नामक ग्राममें संवत् १८४८ को हुआ था । आप गोयलगोत्री अग्रवाल थे । आपके पिताका नाम धर्मचन्दजी था । जब आपकी उम्र १२ वर्षकी थी तब आपके पिता आदि काशीमें आ रहे थे । काशीमें बाबरशाही-दकी गलीमें आपका मकान था । आपके वंशके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोग इस समय आरामें मौजूद हैं। आपका विस्तृत जीवनचरित हमने वृन्दावनविलासकी भूमिकामें लिखा है। आपका देहान्त कब हुआ है, यह पता नहीं। आपकी सबसे अन्तिम रचना संवत् १९०५ की है।

आप अच्छे कवि थे। आपका बनाया हुआ मुख्य ग्रन्थ 'प्रवचनसार' है, जो प्राकृत ग्रन्थका पद्यानुवाद है। इसे आपने बड़े ही परिश्रमसे बनाया है। इसको सर्वश्रेष्ठ बनानेके लिए आपने तीन बार परिश्रम किया था। यथाः—

तब छन्द रची पूरन करी,
चित न रुची तब पुनि रची।
सोऊ न रुची तब अब रची,
अनेकान्त रससौं मची॥

दूसरा ग्रन्थ 'चतुर्विंशतिजिनपूजापाठ' और तीसरा 'तीस चौवीसीपूजापाठ' है। दूसरे ग्रन्थका बहुत अधिक प्रचार है। कई बार छप चुका है। इनमें तीर्थंकरोंकी पूजायें हैं। शब्दालङ्कार अनुप्रास यमक आदिकी इनमें भरमार है; पर भावकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना शब्दोंकी ओर दिया गया है। चौथा छन्दशतक है। यह बहुत ही अच्छा ग्रन्थ है। इसमें अधिक उपयोगी १०० प्रकारके छन्दोंके बनानेकी विधि और छन्दशास्त्रकी प्रारंभकी बातें पद्यमें लिखी हुई हैं। विद्यार्थी बहुत ही थोड़े परिश्रमसे इसके द्वारा छन्दशास्त्रका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अब तक इसके जोड़का सरल सुपाठ्य और थोड़ेमें बहुत प्रयोजन सिद्ध करनेवाला दूसरा छोटा छन्दोग्रन्थ नहीं देखा गया। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनकी प्रथमा परीक्षामें यह पाठ्य पुस्तक बननेके योग्य है। संस्कृतके वृत्तरत्नाकर आदि ग्रन्थोंकी नाईं प्रत्येक छन्दके लक्षण और नाम आदि उसी छन्दमें दिये हैं और प्रत्येक छन्दमें अच्छी अच्छी निर्दोष शिक्षायें भरी हुई हैं। एक उदाहरणः—

चतुर नगन मुनि दरसत,
भगत उमग उर सरसत।
नुति थुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल बरसत॥

इसमें छन्दका नाम और लक्षण बहुत ही खूबीसे दिया गया है। यह ग्रन्थ सं०१८९८ में कविने अपने पुत्र अजितदासके पढ़ानेके लिए केवल१५ दिनमें बनाया था।

चौथा ग्रन्थ कविकी तमाम फुटकर कविताओंका संग्रह 'वृन्दा वनविलास' है। इसमें पद, स्तुति, पत्रव्यवहार आदि हैं। एक और ग्रन्थ 'पासा केवली' है जिसमें पासा डालकर शुभाशुभ जाननेकी रीति लिखी है।

४ यति ज्ञानचन्द्र। ये उदयपुर राज्यके माण्डलगढ़में रहते थे। राजस्थानके इतिहासके अच्छे जानकार और इतिहासके साहित्यका संग्रह रखनेवाले थे। राजस्थानका इतिहास लिखनेमें कर्नल टाडको इन्होंने बहुत सहायता दी थी। टाड साहब इन्हें अपना गुरु मानते थे। उन्होंने अपने ग्रन्थमें इनके उपकारोंका उल्लेख किया है। ये अच्छे कवि थे। इनकी बनाई हुई कुछ फुटकर कवितायें मिलती हैं। मिश्रबन्धुओंने इनका पद्य रचनाकाल १८४० लिखा है।

५ भूधर मिश्र। आगरेके समीप शाहगंजके रहनेवाले ब्राह्मण थे। आपके गुरुका नाम पण्डित रंगनाथजी था। पुरुषार्थसिद्धुपाय नामक जैनग्रन्थमें अहिंसातत्त्वकी मीमांसा पढ़नेसे आपको जैनधर्म पर भक्ति हो गई थी। आपने रंगनाथजीसे अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया और फिर पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी एक विशद भाषाटीका बनाई। यह विक्रम संवत् १८७१ की भाद्रपद सुदी १० को समाप्त हुई है। इस टीकामें आपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीसों जैनग्रन्थोंके प्रमाण देकर अपने विचारोंको पुष्ट किया है। चर्चासमाधान नामका एक और ग्रन्थ भी आपका बनाया हुआ मिलता है। आप कवि भी अच्छे थे। पुरुषार्थसि० का मंगलाचरण देखिए:—

नमों आदि करता पुरुष,
आदिनाथ अरहंत।
द्विविध धर्मदातार धुर,
महिमा अतुल अनंत ॥ १ ॥
स्वर्ग-भूमि-पातालपति,
जपत निरंतर नाम।
जा प्रभुके जस हंसकौ,
जग पिंजर विश्राम ॥ २ ॥
जाकौं सुमरत सुरतसौं,
दुरत दुरत यह भाय।
तेज फुरत ज्यौं तुरत ही,
तिमिर दूर दुर जाय ॥ ३ ॥

इन पद्योंसे यह भी मालूम होता है कि आपको जैनधर्म पर अच्छा विश्वास था।

६ बुधजन। बुधजनका पूरा नाम विरधीचन्दजी था। आप खण्डेलवाल थे और जयपुरके रहनेवाले थे। आपके बनाये हुए चार पद्यग्रन्थ उपलब्ध हैं —१ तत्त्वार्थबोध, २ बुधजनसतसई, ३ पंचास्तिकाय और ४ बुधजनविलास। ये चारों क्रमसे १८७१-८१-९१ और ९२ संवत्के बने हुए हैं। इनकी कवितामें मारवाड़ीपन बहुत है। बुधजनसतसईकी रचना कुछ अच्छी है और सब रचनायें साधारण हैं। तत्त्वार्थबेध और पंचास्तिकायको छोड़कर इनके लगभग सब ग्रन्थ छप गये हैं।

७ दीपचन्द। ये आमेर (जयपुर) के रहनेवाले काशलीवाल गोत्रीय खंण्डलवाल थे। इनके जो ग्रन्थ हमने देखे, उनमें समय आदि कुछ भी नहीं लिखा है, तो भी अनुमानसे ये १९ वीं शताब्दीके कवि हैं। इनके बनाये हुए गद्य पद्यके अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमेंसे दो छप चुके हैं—१ ज्ञानदर्पण और २ अनुभवप्रकाश। इनमें पहला पद्यमें और दूसरा गद्यमें है। पद्यरचना सुन्दर, छन्दोभंग आदि दोषोंसे रहित और सरल है। गद्यका नमूना यह है:—

" इस शरीरमंदिरमैं यह चेतन दीपक सासता है। मन्दिर तौ छूटै पर सासता रतन दीप ज्यौंका त्यौं रहै। व्यवहारमैं तुम अनेक स्वांग नटकी ज्यौं धरे। नट ज्यौंका त्यौं रहै। वह स्पष्ट भाव कर्मकौ है। तौऊ कमलिनीपत्रकी नांई कर्मसौं न बँधै न स्पर्शै। "

इससे मालूम होता है कि गद्यरचना कितनी अच्छी और साफ है। आजसे लगभग १०० वर्ष पहले इतना अच्छा गद्य लिखा जाने लगा था। इनके बनाये हुए अनुभवप्रकाश, अनुभवविलास, आत्मावलोकन, चिद्विलास, परमात्मपुराण, स्वरूपानन्द, उपदेशरत्न, और अध्यात्मपचीसी ये पद्यके ग्रन्थ और भी हैं। ये सब ग्रन्थ स्वतंत्र हैं और यही इनकी विशेषता है।

८ ज्ञानसार या ज्ञानानन्द। आप एक श्वेताम्बर साधु थे। संवत् १८६६ तक आप जीवित रहे हैं। आप अपने आपमें मस्त रहते थे और लोगोंसे बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। कहते हैं कि आप कभी कभी अहमदाबादके एक स्मशानमें पड़े रहते थे! 'सज्झाय पद अने स्तवन संग्रह' नामके संग्रहमें आपके 'ज्ञानविलास' और 'समयतरंग' नामसे दो हिन्दी पदसंग्रह छपे हैं जिनमें क्रमसे ७५ और ३७ पद हैं। रचना अच्छी है। आपने आनन्दघनकी चौवीसी पर एक उत्तम गुजराती टीका लिखी है जो छप चुकी है। इससे आपके गहरे आत्मानुभवका पता लगता है।

९ रंगविजय। ये तपागच्छके विजयानंदसूरि समुदायके यति थे। इनके गुरुका नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमृतविजय कवि था। इन्होंने बहुतसे आध्यात्मिक और प्रार्थनात्मक पद बनाये हैं। इनकी इन कृतियोंका एक संग्रह, जो स्वयं इन्हींके हाथका लिखा हुआ है, श्वेताम्बर साधु प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजीके शास्त्रसंग्रहमें है। इस संग्रहमें कोई २०० पद इनके बनाये हुए हैं। रचना सरल और सरस है। वैष्णव कवियोंने जैसे राधा और कृष्णको लक्ष्य कर भक्ति और शृंगारकी रचना की है वैसे ही इन्होंने भी राजीमती और नेमिनाथके विषयमें बहुतसे शृंगारभावके पद लिखे हैं। नमूनाके लिए यह एक पद देखिए;—

आवन दे री या होरी।
चंदमुखी राजुलसौं जंपत,
ल्याउं मनाय पकर बरजोरी॥
फागुनके दिन दूर नहीं अब,
कहा सोचत तू जियमैं भोरी॥
बाँह पकर राहा जो कहावूं,
छाँड़ूँ ना मुख माँड़ूँ रोरी॥
सज सनगार सकल जदुवनिता,
अबीर गुलाल लेइ भर झोरी॥
नेमीसर संग खेलैं खिलौना,
चंग मृदँग डफ ताल टकोरी॥
हैं प्रभु समुदविजैके छौना,
तू है उग्रसेनकी छोरी॥
'रंग' कहै अंमृत पद दायक,
चिरजीवहु या जुग जुग जोरी॥

संवत् १८४९ में इन्होंने एक गजल बनाई है जिसमें ५५ पद्य हैं और जिसमें अहमदाबाद नगरका वर्णन है। यह खड़ी हिन्दीके ढंगकी भाषा है।

१० कर्पूरविजय य चिदानन्द। ये संवेगी साधु थे, पर रहते थे सदा अपने ही मतमें मस्त। इन्हें मतभेदका कर्कश पाश कुछ भी नहीं कर सकता था। इच्छा हुई तो गुहाओंमें जा डेरा डाल देते और मौज हुई तो सुंदर मकानोंमें आकर जम जाते। ये योगी अच्छे थे और अपना साम्प्रदायिक नाम छोड़ कर 'चिदानन्द' के अभेदमार्गीय नामसे अपना परिचय देते थे। इन्होंने बहुतसे आध्यात्मिक पद बनाये हैं। स्वरशास्त्रके ये अच्छे ज्ञाता थे, इस लिए 'स्वरोदय' नामका एक प्रबंध भी इन्होंने स्वरज्ञानविषयक बनाया है। कहते हैं ये संवत् १९०५ तक विद्यमान थे। इनकी रचना आनंदघनके जैसी ही अनुभवपूर्ण और मार्मिक है। एक पद देखिए:—

जौं लौं तत्त्व न सूझ पड़ै रे।
तौ लौं मूढ़ भरमवश भूल्यौ,
मत ममता गहि जगसौं लड़ै रे॥
अकर रोग शुभ कंप अशुभ लख,
भवसागर इण भांति मड़ै रे!
धान काज जिम मूरख खितहड़,
उखेर भूमिको खेत खड़ै रे॥
उचित रीत ओलंख बिन चेतन,
निश दिन खोटो घाट घड़ै रे।
मस्तक मुकुट उचित मणि अनुपम,
पग भूषण अज्ञान जड़ै रे॥
कुमता वश मन वक्र तुरग जिम,
गहि विकल्प मग माहिं अड़ै रे।
'चिदानन्द' निज रूप मगन भया,
तब कुतर्क तोहि नाहिं नड़ै रे॥

गुजरातमें निवास होनेके कारण इसमें कुछ कुछ गुजरातीकी झलक है।

११ टेकचन्द। इनके बनाये हुए ग्रन्थ—१ तत्त्वार्थकी श्रुतसागरी टीकाकी वचनिका (सं० १८३७), सुदृष्टितरंगिनी वचनिका (१८३८) षट्पाहुड़ वचनिका, कथाकोश छन्दोबद्ध, बुधप्रकाश छ०, अनेक पूजा पाठ। इनका सुद-

१ किसान। २ ऊसर। ३ पहिचान। ४ नड़ना, बाधा देना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ष्टितरंगिणी ग्रन्थ बहुत बड़ा है। उसकी ग्रन्थसंख्या साढ़े सत्रह हजार श्लोक है।

१२ नथमल विलाला। (भरतपुरनिवासी खजांची)। इनका एक ग्रन्थ सिद्धान्तसार हमने देखा है। यह सकलकीर्तिके संस्कृत ग्रन्थका अनुवाद है। संवत् १८२४ में बना है। श्लोकसंख्या लगभग ७५०० है। जिनगुणविलास, नागकुमारचरित्र, (१८३४), जीवंधरचरित्र (१८३५) और जम्बूस्वामीचरित्र, ये ग्रन्थ भी इन्हींके बनाय हुए हैं। सब पद्यमें हैं। कविता साधारण है।

१३ डालूराम। (माधवराजपुरनिवासी अग्रवाल)। गुरूपदेशश्रावकाचार छन्दोवद्ध (१८६७), सम्यक्त्वप्रकाश (१८७१) और अनेक पूजायें।

१४ देवादास। (खण्डेलवाल बसवानिवासी) सिद्धान्तसारसंग्रह वचनिका (१८४४) और तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिका।

१५ देवीदास। (दुगोदह केलगवाँ जिला झांसी निवासी)। परमानन्दविलास छन्दोवद्ध (सं० १८१२), प्रवचनसार छ०, चिद्विलास-वचनिका, चौवीसी पाठ।

१६ सेवाराम। (राजपूत)। हनुमच्चरित्र छन्दोवद्ध (१८३१), शान्तिनाथपुराण छ० और भविष्यदत्तचरित्र छ०।

१७ भारामल्ल। ये फर्रुखाबादके रहनेवाले सिंगई परशुरामके पुत्र थे और खरौआ जातिके थे। इन्होंने भिण्ड नगरमें रह कर संवत् १८१३ में चारुदत्तचरित्र बनाया। सप्तव्यसनचरित्र, दान-कथा, शीलकथा, रात्रिभोजन कथा ये सब छन्दोबद्ध ग्रन्थ भी इन्हींके बनाये हुए हैं।

१८ गुलाबराय। शिखरविलास छ० सं० १८४२ में बनाया।

१९ थानसिंह। सुबुद्धिप्रकाश छन्दो० (सं० १८४७)।

२० नन्दलाल छावड़ा। मूलाचारकी वचनिका सं० १८८८ में।

२१ मन्नालाल सांगाका। चारित्रसारकी वचनिका सं० १८७१ में।

२२ मनरंगलाल। (कन्नौजके रहनेवाले पल्लीवाल)। सं० १८५७ में चौवीसी पूजापाठ बनाया। कविता अच्छी है। नेमिचन्द्रिका, सप्तव्यसनचरित्र और सप्तर्षिपूजा ये ग्रन्थ भी इनके बनाये हुए हैं।

२३ लालचन्द (सांगानेरी)। **षट्कर्मोपदेशरत्नमाला** (सं०१८१८) वरांगचरित्र, विमलनाथपुराण, शिखरविलास, सम्यक्त्वकौमुदी, आगम शतक, और अनेक पूजाग्रन्थ। सब छन्दोबद्ध।

२४ सेवारामशाह। (जयपुरनिवासी)। चौवीसी पूजापाठ (सं० १८५४) और धर्मोपदेश छन्दोवद्ध।

२५ कुशलचन्द्र गणि यति। यति बालचन्द्रजी खामगांव वालोंने आपका बनाया हुआ 'जिनवाणीसार' नामका ७०० हिन्दी पद्योंका ग्रन्थ बीकानेरके यतियोंके पास देखा है। अध्यात्मिक ग्रन्थ है, रचना भी कहते हैं अच्छी है।

२६ यति मोतीचन्द। उक्त यतिजीके कथनानुसार ये जोधपुरनरेश मानसिंहजीके सभाके रत्नोंमेंसे एक थे। इन्हें मानसिंहजीने 'जगद्गुरु भट्टारक' पद प्रदान किया था। हिन्दीके श्रेष्ठ कवि थे।

२७ हरजसराय। ये स्थानकवासी सम्प्रदायके थे। हिन्दीके अच्छे कवि थे। साधुगुणमाला, देवाधिदेवरचना और देवरचना नामके ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं। 'देवाधिदेव रचना'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छप चुका है। यह संवत्१८६५ में समाप्त हुआ है।

२८ क्षमाकल्याण पाठक। इन्होंने संवत् १८५० में जीवविचारवृत्तिकी रचना की। साधुप्रतिक्रमणविधि, श्रावकप्रतिक्रमणविधि, सुमतिजिनस्तवन आदि और भी कई ग्रन्थ इनके रचे हुए हैं। पिछला स्तवन छप गया है। रचना अच्छी है।

विजयकीर्ति—ये नागौरकी गद्दीके भट्टारक थे। इन्होंनें सं० १८२० में श्रेणिकचरित्र छन्दोबद्धकी रचना की है।

बीसवीं शताब्दी।

१ सदासुख। इस शताब्दीके पुराने ढंगके लेखकोंमें सदासुखजी बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका रत्नकरण्ड श्रावकाचार बहुत बड़ा लगभग १५-१६ हजार श्लोक प्रमाण गद्यग्रन्थ है। जैनसमाजमें इसका बहुत अधिक प्रचार है। दो बार छप चुका है। एक डेढ़ सौ श्लोकके इसी नामके मूल ग्रंथका यह विशाल भाष्य है। एक प्रकारसे इसे स्वतंत्र ग्रन्थ कहना चाहिए। इनका दूसरा ग्रन्थ अर्थप्रकाशिका है। यह भी लगभग उतना ही बड़ा है। यह तत्वार्थसूत्रका भाष्य है। गद्यमें है। भगवती आराधनाकी टीका भी आपने लिखी है जो २० हजार होगी। यह विक्रम संवत् १९०८ में बनी है। बनारसीकृत नाटक समयसारकी टीका, नित्यपूजाटीका और अकलंकाष्टककी टीका भी आपकी बनाई हुई है।

२ पन्नालाल चौधरी। संस्कृत ग्रन्थोंके ये बड़ेभारी अनुवादक हुए हैं। इन्होंने ३५ ग्रन्थोंकी वचनिकायें (गद्यानुवाद) लिखी हैं जो प्रायः सब ही उपलब्ध हैं:-१ वसुनंदिश्रावकाचार, २ सुभाषितार्णव, ३ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, ४ जिनदत्तचरित्र, ५ तत्त्वार्थसार, ६ सद्भाषितावली, ७ भक्तामरकथा, ८ आराधनासार, ९ धर्मपरीक्षा, १० यशोधरचरित्र, ११ योगसार, १२ पाण्डवपुराण, १३ समाधिशतक, १४ सुभाषितरत्नसंदोह, १५ आचारसार, १६ नवतत्त्व, १७ गोतमचरित्र, १८ जम्बूचरित्र, १९ जीवंधरचरित्र, २० भविष्यदत्तचरित्र, २१ तत्त्वार्थसारदीपक, २२ श्रावकप्रतिक्रमण, २३ स्वाध्यायपाठ, विविध भक्तियाँ और विविधस्तोत्र।

३ भागचन्द्र। ये ईसागढ़ (ग्वालियर) के रहनेवाले ओसवाल थे, पर दिगम्बरसम्प्रदायके अनुयायी थे। बहुत अच्छे विद्वान् थे। संस्कृत और भाषा दोनोंके कवि थे। ज्ञानसूर्योदय, उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला (षष्ठिशतप्रकरण), अमितगतिश्रावकाचार, प्रमाणपरीक्षा (न्याय), और नेमिनाथपुराण, इतने ग्रन्थोंकी आपने गद्यटीकायें लिखी हैं जो प्रायः उपलब्ध हैं। आपकी कई रचनायें संस्कृतमें भी हैं। आपके पदभजनोंका संग्रह छप चुका है। अच्छी कविता है।

४ दौलतराम। ये सासनीनिवासीपल्लीवाल थे। सुनते हैं, छीपीका काम करते थे; परन्तु बहुत अच्छे विद्वान् थे। गोम्मटसार सिद्धान्तके अच्छे मर्मज्ञ समझे जाते थे। आपका बनाया हुआ एक छहढाला नामका सुन्दर पद्यग्रन्थ है, जो कमसे कम ७-८ बार छप चुका है। जैनपाठशालाओंमें पाठ्यपुस्तक है। इसमें जैनधर्मका सार भरा हुआ है। सर्वथा स्वतंत्र है। इसके सिवाय आपके बनाये हुए बहुतसे पद और स्तवन है जिनमेंसे लगभग १२५ का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। चार बार छप चुका है। पदरचना भाषा और भाव दोनोंकी दृष्टिसे अच्छी है।

५ मुनि आत्माराम। ये श्वेताम्बरसम्प्रदायके बहुत ही प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं। इनका जीवन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरित्र सरस्वतीमें निकल चुका है। शायद इनके बाद इस सम्प्रदायमें कोई ऐसा उद्भट विद्वान् नहीं हुआ। इनका जन्म वि० सं० १८९३ के लगभग हुआ था और देहोत्सर्ग १९५३ में। आपकी जन्मभूमि पंजाब थी। पाश्चात्यदेशोंतक आपकी ख्याति थी। आपके शिष्य श्रीयुत वीरचन्द राघवजी गांधी बी. ए. बैरिस्टर एट ला, चिकागो (अमेरिका) की धर्ममहासभामें गये थे। उन्होंने वहाँ आपकी बहुत ही प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। आपकी 'चिकागो-प्रश्नोत्तर' नामकी पुस्तक उसी समयके प्रश्नोत्तरोंकी है। आपने अपनी सारी रचना हिन्दीमें की है आपके कई बड़े बड़े ग्रन्थ हैं। उनमें जैनतत्त्वादर्श, तत्त्वनिर्णयप्रसाद, और अज्ञानतिमिरभास्कर मुख्य हैं। आप स्वामी दयानन्दके ढंगके विद्वान् थे। खण्डन मण्डनसे आपको बहुत प्रेम रहा है। अन्य धर्मों और सम्प्रदायों पर आपने बहुत आक्रमण किये हैं। आपकी भाषामें कुछ पंजाबीपन मिला हुआ है, पर वह समझमें अच्छी तरह आती है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें आपकी स्मृतिकी रक्षाके लिए बहुत प्रयत्न किये गये हैं। कई सभायें आपके नामसे चल रही हैं और कई मासिकपत्र और ग्रन्थमालायें भी आपके स्मरणार्थ निकलती हैं। आपके प्रायः सभी ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं। उनका प्रचार खूब है।

६ यति श्रीपालचन्द्र। ये यति बीकानेरके रहनेवाले थे। सुयोग्य थे। कई वर्षोंतक अनवरत परिश्रम करके आपने 'जैनसम्प्रदायशिक्षा' नामका ग्रन्थ बनाया था। यह ग्रन्थ आधा भी न छप पाया था कि आपका देहान्त हो गया। आपके ग्रन्थको अब निर्णयसागर प्रेसके मालिक चार रुपयेमें बेचते हैं। बोलचालकी शुद्ध हिन्दीमें इसकी रचनाहुई है। इसमें विविध विषयोंका संग्रह है। यतिजीका देहान्त हुए केवल ७–८ वर्ष हुए हैं।

७ चंपाराम। (पाटननिवासी)। गौतमपरीक्षा (सं० १९१६), वसुनन्दिश्रावकाचार, चर्चासागर, योगसार। ये सब ग्रन्थ गद्यमें हैं।

८ छत्रपति। (पद्मावतीपुरवार)। द्वादशानुप्रेक्षा (१९०७) मनमोदनपंचशति (१९१६), उद्यमप्रकाश (१९२२), शिक्षाप्रधान। ये सब ग्रन्थ पद्यमें हैं। ये अच्छे कवि मालूम होते हैं। इनकी मनमोदनपंचशती छपकर प्रकाशित हो रही है।

९ जौहरीलाल शाह। पद्मनन्दि पंचविंशतिकाकी वचनिका (१९१५)।

१० नन्दराम। योगसारवचनिका (सं० १९०४), यशोधरचरित्र छ० और त्रैलोक्यसार पूजा।

११ नाथूलाल दोसी। (जयपुरनिवासी)। गद्यमें सुकमालचरित्र, महीपालचरित्र, समाधितंत्र, और पद्यमें दर्शनसार, परमात्माप्रकाश, सिद्धप्रियस्तोत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार।

१२ पन्नालाल (दूनीवाले)। विद्वज्जनबोधक (विशालग्रन्थ), उत्तरपुराण वचनिका और अनेक पूजापाठ।

१३ पारसदास। (जयपुरनिवासी)। पारसविलास (छ०), ज्ञानसूर्योदय और सारचतुर्विंशतिकाकी वचनिका।

१४ फतेहलाल। (जयपुरी)। विवाहपद्धति, दशावतारनाटक, राजवार्तिकालंकार, रत्नकरण्ड, न्यायदीपिका और तत्त्वार्थसूत्रकी, वचनिकायें।

१५ बक्तावरमल–रतनलाल। (दिल्लीनिवासी)। जिनदत्तचरित्र, नेमिनाथपुराण, चन्द्रप्रभपुराण, भविष्यदत्तचरित्र, प्रीतिंकरचरित्र, प्रद्युम्नचरित्र, व्रतकथाकोश आदि छन्दोबद्ध ग्रन्थ।

१६ मन्नालाल बैनाड़ा। प्रद्युम्नचरित्र वचनिका (१९१६)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१७ **महाचन्द्र**। महापुराण संस्कृत-प्राकृत और भाषामें, सामायिकपाठ,फुटकर संस्कृत और भाषाके पद।

१८ **मिहिरचन्द्र**। ये सुनपत (दिल्ली) के रहनेवाले थे। संस्कृत और फारसीके अच्छे विद्वान् थे। आपने सज्जनचित्तवल्लभ काव्यकी संस्कृत टीका और हिन्दी पद्यानुवाद बनाया है जो छप चुका है। कविता अच्छी है। शेख सादीके सुप्रसिद्ध काव्यद्वय गुलिस्तां और बोस्तांका हिन्दी अनुवाद भी आपका किया हुआ है जो एक बार छप चुका है। सुनते हैं, और भी आपकी कई हिन्दी रचनायें हैं।

१९ **हीराचन्द अमोलक**। ये फलटण जिला सताराके रहनेवाले हूंबड़ वैश्य थे। आपकी मातृभाषा हिन्दी न थी तो भी आपने हिन्दीमें अनेक अच्छे पद बनाये हैं जो छप चुके हैं। पंचपूजा भी आपकी बनाई हुई है।

२० **शिवचन्द्र** (दिल्लीवाले भट्टारकके शिष्य)। नीतिवाक्यामृत, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार और तत्त्वार्थसूत्रकी वचनिकायें।

२१ **शिवजीलाल** (जयपुरनिवासी)। रत्नकरण्ड, चर्चासंग्रह, बोधसार, दर्शनसार, अध्यात्मतरंगिणी आदि अनेक ग्रन्थोंकी वचनिकायें और तेरहपंथखण्डन।

२२ **स्वरूपचन्द**। मदनपराजयवचनिका, त्रैलोक्यसार छ० आदि।

वर्तमान समयके परलोकगत लेखक।

१ **राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द**। ये महाशय सं० १८८० में उत्पन्न हुए और १९५२ में इनका स्वर्गवास हुआ। श्वेताम्बर जैन सम्प्रदायके आप अनुयायी थे। आप शिक्षा विभागके उच्च कर्मचारी थे और राजा तथा सी-आई. ई. की उपाधियोंसे विभूषित थे। वर्तमान खड़ी हिन्दीके आप जन्मदाता समझे जाते हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी आपको अपना गुरु मानते थे। उन्होंने अपना मुद्राराक्षस नाटक आपको ही समर्पित किया था। आप हिन्दीके बड़े पक्षपाती थे। आपकी ही दयासे शिक्षा-विभागसे हिन्दीका दर्शनिकाला होता होता रह गया। शिक्षाविभागके लिए आपने हिन्दीकी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उनमें इतिहास तिमिरनाशक बहुत प्रसिद्ध है। आपके धार्मिक विचार बहुत स्वतंत्र थे। जैनसमाजको आपका अभिमान है।

२ **बाबू रतनचन्द्र वकील**। आप इलाहाबादके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन थे। बी. ए. एल एल. बी. और वकील थे। अभी कुछ ही वर्षोंपहले आपका स्वर्गवास हुआ है। आप हिन्दीके अच्छे लेखक थे। आपका नूतनचरित्र प्रयागके इंडियन प्रेसने प्रकाशित किया है। न्यायसभा नाटक, भ्रमजालनाटक, चातुर्थार्णव, वीरनारायण, इन्दिरा, हिन्दी-उर्दूनाटक, आदि कई ग्रन्थ आपके बनाये हुए हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं। 'भ्रमजाल' आदि अँगरेजीसे अनुवादित हैं, कुछ स्वतंत्र हैं और कुछ आधार लेकर लिखे गये हैं।

३ **बाबू जैनेन्द्रकिशोर**। आप आराके एक जमींदार थे। अग्रवाल जैन थे। आराकी नागरीप्रचारिणी सभा और प्रणेतृसमालोचक सभाके उत्साही कार्यकर्ता थे। हिन्दीके सुलेखक और सुकवि थे। आपकी बनाईहुई खगोलविज्ञान, कमलावती, मनोरमा उपन्यास आदि कई पुस्तकें छप चुकी हैं। जैनकथाओंके आधारसे आपने कई नाटक और प्रहसन लिखे थे जिनमेंसे 'सोमासती' व्येंकटेश्वर प्रेससे प्रकाशित हो चुका है, शेष सब अमुद्रित हैं। आपने कई वर्षतक हिन्दी जैनगजटका सम्पादन किया था। कोई ६-७ वर्ष हुए, आपका देहान्त हो गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आपका जीवनचरित आरेकी नागरीहितैषिणी पत्रिकामें निकल चुका है।

४ मि० जैन वैद्य। मि० जैन वैद्यका नाम जवाहिरलाल था। आप खण्डेलवाल जैन थे। 'वैद' आपका गोत्र था। आपका जन्म संवत् १९३७ में हुआ था। आपने अँगरेजी तो म्याट्रिक तक ही पढ़ी थी, पर विद्याभिरुचिके कारण उसमें उन्नति अच्छी कर ली थी। रायल एशियाटिक सुसायटी और थियोसोफिकल सुसायटीके आप मेम्बर थे। बंगला उर्दू, मराठी और गुजराती भी आप जानते थे। हिन्दीके बड़े ही रसिक थे और नागरीके प्रचारका सदैव यत्न किया करते थे। आपने हिन्दीके कई पत्र निकाले, पर वे चल नहीं सके। आपका सबसे नामी पत्र 'समालोचक' निकला। उसे आपने चार सालतक बड़े परिश्रम और अर्थव्ययसे चलाया। इससे आपकी हिन्दी संसारमें बड़ी ख्याति हुई। इस पत्रमें बड़े ही मार्केके लेख निकलते थे। छात्रावस्थामें इन्होंने कमलमोहिनी-भँवरसिंह नाटक, व्याख्यानप्रबोधक और ज्ञान-वर्णमाला नामक तीन पुस्तकें लिखी थीं। नागरी प्रचारिणीसभाके ये बड़े सहायक थे। इन्होंने जयपुरमें एक 'नागरी भवन' नामक पुस्तकालय खोला था, जो अबतक अच्छी दशामें है। आपने 'संस्कृत कविपंचक' आदि हिन्दीके कई अच्छे ग्रन्थ अपने खर्चसे प्रकाशित किये थे। आपकी मृत्यु संवत् १९६६ में हो गई।

मुंशी नाथूरामजी लमेचू। ये करहल जिला मैनपुरीके रहनेवाले थे, पर पीछे कटनी मुड़वारामें आ रहे थे। कोई दशवर्ष हुए जब आपकी मृत्यु हो गई। छापेके प्रचारकोंमें आप भी एक अगुए थे। इसके कारण आपने भी खूब गालियाँ सुनीं, अपमान सहन किया और मार तक खाई! आप गद्य और पद्य दोनों लिखते थे। पद्यमें आपने लावनियाँ बहुत बनाई हैं, जिनमेंसे कुछ 'ज्ञानानन्दरत्नाकर' के नामसे छपी हैं। गद्यमें आपने जैन प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ पुस्तक और हिन्दीकी पहली दूसरी-तीसरी आदि अनेक पुस्तकें लिखी हैं। कई पुस्तकों-की टीकायें और पद्यानुवाद भी आपने किये हैं। आप पुस्तकप्रकाशक थे। सैकड़ों छोटी बड़ी पुस्तकें आपने छपाई थीं। आपके विचार सुधा-रकोंके ढंगके थे, इस कारण सर्व साधारणसे आपकी बहुत ही कम बनती थी। जैन कथा-ग्रन्थोंकी असंभव बातों पर आपकी अश्रद्धा थी और जैनभूगोलके सिद्धान्तोंका आप विरोध किया करते थे। इस विषयमें उस समय आपने लाहो-रकी 'जैनपत्रिका' में कुछ लेख भी प्रकाशित कराये थे। आपके पुत्र बाबू नन्दकिशोरजी बी ए. असिस्टेंट सर्जन हैं। उन्होंने आपके पुस्तकालयकी तमाम पुस्तकें कटमीकी जैनपाठ-शालाको दे डाली हैं।

वर्तमान लेखक।

बाबू सूरजभानजी। आप देवबन्द जिला सहारनपुरके रहनेवाले अग्रवाल जैन हैं। वकील हैं। लगभग २०–२२ वर्षसे आप हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। जैनसमाजमें नई जागृति उत्पन्न करनेवालोंमेंसे आप एक हैं। जिससमय सारा जैनसमाज जैनग्रन्थोंके छपानेका विरोधी था, उससमय आपने बड़े साहसके साथ इस कामको उठाया और हरतरहके कष्ट उठाकर जारी रक्खा। आप अपनी धुनके बड़े पक्के हैं। हिन्दी जैनगजटके जन्मदाता आप ही हैं। आपने कई वर्षतक उसे साप्ताहिक रूपमें बिना किसीकी मददके चलाया। इसके बाद दो मासिकपत्र आपने और निकाले जो कुछ वर्ष चलकर बन्द हो गये। द्रव्यसंग्रह, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, परमात्म-प्रकाश आदि कई ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आपके लिखे हुए हैं। हिन्दीकी सर्वोपयोगी पुस्तकें भी आपने कई लिखी हैं। आपकी 'ब्याही बहू' नामकी छोटीसी पुस्तक अभी हाल ही प्रकाशित हुई है। 'मनमोहिनी' नामका स्वतंत्र उपन्यास भी आपका लिखा हुआ है। आपकी 'ज्ञानसूर्योदय' नामकी पुस्तक बहुत अच्छी है जो पहले उर्दूमें लिखी गई थी। इस समय आप वकालतका काम छोड़कर जैन-समाजकी सेवा किया करते हैं। आपकी अवस्था ५० वर्षके लगभग होगी।

पं० पन्नालालजी बाकलीवाल। आप सुजानगढ़ जिला बीकानेरके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन हैं। जैनसमाजमें ग्रन्थोंके छपाने और प्रचार करनेवालोंमें आप अग्रणी हैं। आप भी कोई बीस वर्षसे केवल यही काम कर रहे हैं। बम्बईके जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयकी जड़ जमानेवाले आप ही हैं। काशीकी स्याद्वादपाठशालाकी स्थापना करनेमें भी आपका हाथ था। आप बड़े स्वार्थत्यागी हैं। जैनहितैषी पत्रके जन्मदाता भी आप ही हैं। इसे शुरूमें आपने कई बार निकाला और कई वर्षतक चलाया था। धर्मपरीक्षाका अनुवाद, रत्नकरंड, द्रव्यसंग्रह, और तत्त्वार्थसूत्रकी छात्रोपयोगी टीकायें, जैनबालबोधक, स्त्रीशिक्षा आदि जैनधर्मकी पुस्तकोंके सिवाय हिन्दीकी सर्वोपयोगी पुस्तकें भी आपने कई लिखी हैं। आजकल आप कलकत्तेसे 'सनातन जैनग्रन्थमाला' नामक संस्कृत ग्रन्थोंकी सीरीज निकाल रहे हैं। इस समय आपकी उम्र लगभग ४८ वर्षकी होगी।

पं० गोपालदासजी बरैया। आप आगरेके रहनेवाले हैं और बरैया आपकी जाति है। आजकल मोरेना (ग्वालियर) में रहते हैं। दिगम्बरसम्प्रदायके धुरंधर विद्वानोंमें आपकी गणना है। न्यायवाचस्पति, वादिगजकेसरी, स्याद्वादवारिधि आदि कई पदवियाँ आपको मिली हुई हैं। आप बड़े स्वार्थत्यागी हैं। मोरेनाका जैनसिद्धान्तविद्यालय—जिसमें कोई हजार रुपया मासिक खर्च होता है—आपहीके परिश्रम और स्वार्थत्यागसे चल रहा है। आपके द्वारा जैनसमाजमें न्याय और कर्मसिद्धान्तके जाननेवाले बीसों विद्वान् तैयार हुए हैं और हो रहे हैं। बम्बईका 'जैनमित्र' जो अब साप्ताहिक होगया है, सबसे पहले आपहीने निकाला था। इसका सम्पादन आप ६–७ वर्षतक करते रहे हैं। आप खासी हिन्दी लिखते हैं। सुशीला उपन्यास, जैनसिद्धान्तदर्पण, और जैनसिद्धान्त-प्रवेशिका ये तीन हिन्दीके ग्रन्थ आपके रचे हुए हैं। पिछली पुस्तकका जैनसमाजमें खूब प्रचार है। इस समय आपकी अवस्था ४८ वर्षके लगभग होगी। मोरेनामें आपकी आढ़तकी दूकान है।

बाबू जुगलकिशोरजी। आप देवबन्द जिला सहारनपुरमें रहते हैं। अग्रवाल जैन हैं। मुख्तारीका काम छोड़कर अब केवल साहित्य-सेवा करते हैं। अभी आपकी उम्र ४० वर्षसे कम है। जैन-साहित्यके बड़े नामी समालोचक हैं। अभी अभी आपने चार पाँच जैन-ग्रन्थोंकी विस्तृत समालोचनायें लिखकर जैनसमाजमें एक हलचल मचा दी है। बड़े ही परिश्रमशील लेखक हैं। जैनधर्मसम्बन्धी इतिहास पर भी आप बहुत कुछ लिखा करते हैं। आगे आपसे जैनसाहित्यकाबहुत उपकार होनेकी संभावना है। आप कई वर्षतक साप्ताहिक जैनगजटका सम्पादन कर चुके हैं। आर्यमतलीला, पूजाधिकारमीमांसा, विवाहका उद्देश्य आदि कई अच्छी अच्छी पुस्तकें आपकी लिखी हुई हैं।

पं० अर्जुनलालजी सेठी। आप जयपुरके रहनेवाले खण्डेलवाल जैन हैं। बी. ए. हैं। किसी राजनीतिक अपराधके सन्देहमें आप कोई तीन वर्षसे कैद हैं। आप हिन्दीके परम प्रेमी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और देशभक्त हैं। जयपुरकी जैनशिक्षाप्रचारक समिति और वर्द्धमानविद्यालय ये दो संस्थायें आपहीने अपने असीम परिश्रम और स्वार्थत्यागके बलसे स्थापित की थीं। जैनसमाजमें हिन्दीकी प्रतिष्ठाके लिए आपने बहुत उद्योग किया है। आपने महेन्द्रकुमार नाटक आदि दो तीन हिन्दी पुस्तकें भी लिखी हैं।

लाला मुंशीलालजी। आप अग्रवाल जैन हैं, ग्रेज्युएट हैं और संस्कृतके एम. ए. हैं। पहले लाहौरके किसी कालेजमें प्रोफेसर थे। इस समय पेन्शनर हैं और लाहौरमें ही रहते हैं। आप उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओंके लेखक हैं। हिन्दीमें आपकी लिखी हुई कई अच्छी अच्छी पुस्तकें हैं–१ दरिद्रतासे श्रेय, २ कहानियोंकी पुस्तक, ३ शील और भावना, ४ शीलसूत्र, ५ छात्रोंको उपदेश आदि। संस्कृतके भी आप अच्छे विद्वान् हैं, इस लिए आपने क्षत्रचूड़ामणि काव्यका हिन्दी अनुवाद लिखा है और पंजाबके शिक्षा-विभागके लिए संस्कृतकी चार पुस्तकें लिख दी हैं। उत्तराध्ययन सूत्रका भी आपने हिन्दी अनुवाद किया है। आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है, वृद्धावस्था है, तो भी आप हिन्दीमें कुछ न कुछ लिखा ही करते हैं।

बाबू दयाचन्दजी गोयलीय। आप अग्रवाल जैन हैं और बी. ए. हैं। इस समय लखनऊके कालीचरण हाईस्कूलमें मास्टर हैं। हिन्दीकी सेवाका आपको बहुत ही उत्साह है। अच्छी हिन्दी लिखते हैं। हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय द्वारा आपकी १ मितव्ययता, २ युवाओंको उपदेश, ३ शान्तिवैभव, ४ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा, ५ चरित्रगठन और मनोबल, ५ पिताके उपदेश, ६ अब्राहम लिंकन आदि कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जैनधर्मकी भी आपने कई छोटी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। गत वर्षसे आप एक 'जातिप्रबोधक' नामका मासिकपत्र निकालने लगे हैं।

मि० वाडीलाल मोतीलाल शाह। आप अहमदाबादके रहनेवाले श्रीमाल जैन हैं और गुजरातीके प्रभावशाली पत्र जैनहितेच्छुके सम्पादक हैं। गुजरातीके आप लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। हिन्दी आपकी मातृभाषा नहीं है, तो भी आप अपने हिन्दीभाषी भाइयोंके लिए कुछ न कुछ लिखा ही करते हैं। आपके जैनसमाचारपत्रमें हिन्दीके लगभग आधे लेख रहते थे। हिन्दीसे आपको बहुत ही प्रेम है। अभी थोड़े ही दिन पहले झालरापाटनमें जो 'राजपूताना हिन्दी-साहित्य-समिति'की स्थापना हुई है और जिसमें लगभग १०–११ हजारका चन्दा केवल जैन सज्जनोंने दिया है, वह आपके ही उद्योगका फल है। आपने उसमें स्वयं अपनी गाँठसे दो हजार रुपयेकी रकम दी है। इस समितिका काम आपके ही हाथमें है। इसके द्वारा बहुत ही जल्दी अच्छे अच्छे ग्रन्थ लागतके मूल्य पर प्रकाशित होंगे।

बाबू सुपार्श्वदासजी गुप्त। आप आराके रहनेवाले अग्रवाल जैन हैं। एम. ए. के विद्यार्थी हैं। हिन्दी लिखनेका आपको बहुत उत्साह है। लिखते भी अच्छा हैं। सरस्वतीमें प्रायः लिखा करते हैं। अभी आपने एक 'पार्लमेंट' नामका लगभग ४०० पृष्ठका ग्रन्थ लिखा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है।

बाबू मोतीलालजी। आप आगरेमें स्कूल मास्टर हैं। पल्लीवाल जैन हैं। बी. ए. हैं। आपने स्माइल्सके 'सेल्फ हेल्प' की छाया लेकर 'स्वावलम्बन' नामका ग्रन्थ लिखा है, जो बहुत पसन्द किया गया है। इन्दौरकी होलकर्स हिन्दी कमेटीने इससे प्रसन्न होकर आपको पारितोषिक दिया है। कविता भी अच्छी लिखते हैं। आगे आपके द्वारा हिन्दीकी बहुत कुछ सेवा होगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाबू वेणीप्रसादजी। आप बाबू मोतीलालजीके भाई हैं। अभी एम. ए. के विद्यार्थी हैं। हिन्दी बड़ी अच्छी लिखते हैं। सरस्वती आदिपत्रोंमें आपके कई प्रतिभापरिचायक लेख प्रकाशित हुए हैं। आगे आपसे हिन्दीकी बहुत कुछ सेवा होनेकी आशा है।

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। आप लखनऊके रहनेवाले अग्रवाल जैन हैं। ७-८ वर्षसे आप गृहत्यागी होगये हैं। बम्बईके जैनमित्रका सम्पादन इन दिनों आप ही करते हैं। गृहस्थधर्म, छहढालाकी टीका, नियमसारकी टीका, अनुभवानन्द आदि कई जैनधर्मसम्बन्धी ग्रन्थ आपके लिखे हुए हैं। आप जैनसमाजकी निःस्वार्थ भावसे अनवरत सेवा कर रहे हैं।

मुनि जिनविजयजी। आप श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधु हैं। बहुत अच्छे विद्वान् हैं। आपका ऐतिहासिक ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा है। पाटनआदिके पुस्तकभण्डारोंके ग्रन्थोंसे आप सविशेष परिचित हैं। हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंके लेखक हैं, और मजा यह कि दोनों भाषाओंमें आप मातृभाषाके समान शुद्ध लिख सकते हैं। विज्ञप्ति-त्रिवेणी, कुपारस-कोश, प्रशस्तिसंग्रह आदि कई संस्कृत ग्रन्थोंका सम्पादन आपने किया है और बड़ी योग्यतासे किया है। इन ग्रन्थोंकी आपने बहुत बड़ी बड़ी विस्तृत भूमिकायें हिन्दीमें ही लिखी हैं जो इतिहासपर अपूर्व प्रकाश डालती हैं। जैनधर्मके भी आप अच्छे मर्मज्ञ हैं। आपके लेख सरस्वती आदि अनेक पत्रोंमें प्रकाशित हुआ करते हैं।

बाबू माणिकचन्दजी। आप पोरबाड़ हैं और बी. एल एल.बी. हैं। खंडवेमें वकालत करते हैं। छात्रावस्थासे ही आपको हिन्दी लिखनेका शौक है। आप कुछ समय तक प्रयागके अभ्युदयके सहकारी सम्पादक रह चुके हैं। खंडवेकी हिन्दीग्रन्थप्रसारक मण्डली आपके ही अध्यवसाय और परिश्रमसे चल रही है। आपके ही प्रयत्नसे मंडली कई नामी नामी ग्रन्थोंके प्रकाशित करनेमें समर्थ हुई है। जीवदया, सुखानन्दमनोरमा नाटक आदि कई पुस्तकें आपने छात्रावस्थामें लिखी हैं। हिन्दीका आपके द्वारा बहुत उपकार हुआ है और होगा।

बाबू कन्हैयालालजी। आप श्रीमाल जैन हैं। भरतपुरकी पल्टनमें हेडक्लार्क हैं। आपने 'अंजनासुन्दरी' नामका एक नाटक लिखा है जिसे व्येंकटेश्वर प्रेसने प्रकाशित किया है। नाटक स्वतंत्र है और अच्छा है। आपने सुनते हैं और भी कई पुस्तकें लिखी हैं, पर हम उनसे परिचित नहीं।

पं० उदयलालजी काशलीवाल। आप खण्डेलवाल जैन हैं। सत्यवादी नामक पत्रका आप दो वर्षतक सम्पादन करते रहे हैं। जैनधर्मके कई संस्कृत ग्रन्थोंका आपने अनुवाद किया है। आप अच्छी हिन्दी लिखते हैं। इस समय आप बम्बईमें रहते हैं। हिन्दीजैनसाहित्यप्रसारक कार्यालयके मालिकोंमें हैं। इस वर्ष आपने 'हिन्दी-गौरवग्रन्थमाला' नामकी सीरीज निकालनेका प्रारंभ किया है।

पं० दरयावसिंहजी सोधिया। आप गढ़ाकोठा जिला सागरके रहनेवाले हैं। आजकल इन्दौरमें रहते हैं। हिन्दीमें आपने कृषिविद्या, हिन्दी व्याकरण, कहावतकल्पद्रुम आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। अभी लगभग एक वर्ष पहले आपने 'श्रावकधर्मसंग्रह' नामक जैनग्रन्थ लिख कर प्रकाशित कराया है।

बाबू खूबचन्दजी सोधिया। आप पं० दरयावसिंहजी सोधियाके पुत्र हैं। बी. ए. तथा एल. टी. हैं और हिन्दीके होनहार लेखक हैं। अभी आपने हेल्प्सके निबन्धोंका अनुवाद 'सफलगृहस्थ' के नामसे लिखा है और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित कराया है। आप और भी कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख रहे हैं।

बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस सी. । आप काशीके हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर हैं। खण्डेलवाल जैन हैं। जैनहितैषी, विज्ञान आदि पत्रोंमें आपके हिन्दीके कई लेख प्रकाशित हुए हैं। हिन्दीसे आपको अतिशय प्रेम है। आप इस समय एक विज्ञानसम्बन्धी ग्रन्थ लिख रहे हैं।

पं० वंशीधरजी शास्त्री । आप सोलापुरकी जैनपाठशालामें अध्यापक हैं। संस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं। अष्टसहस्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि अनेक ग्रन्थोंका आपने सम्पादन और संशोधन किया है। हिन्दीमें आत्मानुशासनका अनुवाद आपने लिखा है। जैनगजटके सहकारी सम्पादकका काम भी आपने कुछ समय तक किया है।

पं० खूबचन्दजी शास्त्री । आप वंशीधरजीके भाई हैं। आजकल सत्यवादीका सम्पादन करते हैं। हिन्दी अच्छी लिखते हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड, न्यायदीपिका और महावीरचरित काव्यका आपने हिन्दी अनुवाद किया है।

मुनि शान्तिविजयजी । आप श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधु हैं। मानवधर्मसंहिता, जैनतीर्थ गाइड, उपदेशदर्पण आदि कई पुस्तकें आपने लिखी हैं। खण्डन मण्डन आपको बहुत प्रिय है। आपकी भाषा उर्दूमिश्रित होती है।

लाला न्यामतसिंहजी । आप हिसारके रहनेवाले अग्रवाल हैं। इस समय जैनसमाजमें आपके थियेट्रिकल गानोंकी धूम है। इस प्रकारकी आप एक दर्जनसे अधिक पुस्तकें बना चुके हैं। दूर असलमें आपके कोई कोई पद बहुत अच्छे होते हैं।

यति बालचन्द्राचार्यजी । आप रामगाँव (बरार) में रहते हैं। श्वेताम्बर यति हैं। इतिहासके जानकार हैं। आपको भी खण्डन मण्डन बहुत प्रिय है। आपने जगकर्तृत्वमीमांसा, मानवकर्तव्य आदि कई हिन्दी पुस्तकें लिखी हैं। आपने हमको इस लेखके लिखनेमें भी बहुत कुछ सहायता दी है।

मुनि माणिकजी । आप श्वेताम्बर साधु हैं। आपकी मातृभाषा शायद गुजराती है, पर हिन्दी भी आप लिख सकते हैं और हिन्दीसे आपको बहुत प्रेम है। हिन्दीके आपने मेरठ जिलेमें कई सार्वजनिक पुस्तकालय खुलवाये हैं। समाधितंत्र, कल्पसूत्र, आदि कई पुस्तकोंके आपने हिन्दी अनुवाद भी किये हैं और प्रकाशित कराये हैं।

बाबू सुखसम्पतिरायजी भण्डारी । आप श्वेताम्बरसम्प्रदायके ओसवाल हैं। इस समय इन्दौरके 'मल्हारि मार्तण्ड विजय' के सम्पादक हैं। इसके पहले हिन्दीके और भी कई पत्रोंका सम्पादन आप कर चुके हैं। महात्मा बुद्धदेव, स्वर्गीय जीवन, उन्नति, आदि कई पुस्तकें आपकी लिखी हुई हैं।

बाबू सूरजमलजी । आपकी जाति लमेचू है। हरदेमें आपका घर है। इस समय इन्दौरमें रहते हैं। पहले आप जैनमित्रके सहकारी सम्पादक रह चुके हैं। आज कल जैनप्रभातका सम्पादन करते हैं। जैन इतिहास, पयुर्षणपर्व आदि कई पुस्तकें आप लिख चुके हैं।

बाबू कृष्णलालजी वर्मा । जयपुरकी जैनशिक्षाप्रचारक समितिके आप विद्यार्थी हैं। राजपूत जैन हैं। इस समय बम्बईमें रहकर 'जैनसंसार' का सम्पादन करते हैं। चम्पा, राजपथका पथिक, दलजीतसिंह नाटक आदि कई पुस्तकें अपने लिखी हैं।

पं० लालारामजी । पद्मावतीपुरवार हैं। संस्कृतके अच्छे पण्डित हैं। इन्दौरके जैन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हाईस्कूलमें अध्यापक हैं । हिन्दी अच्छी लिखते हैं । आपने सागरधर्मामृत और आदिपुराण इन दो ग्रन्थोंके हिन्दी अनुवाद किये हैं । पिछला ग्रन्थ बहुत बड़ा है ।

बाबू शंकरलालजी । आप मुरादाबादके रहनेवाले खण्डेलवालजातीय हैं । अच्छे वैद्य हैं । दो तीन वर्षसे 'वैद्य' नामक हिन्दी मासिक पत्रका सम्पादन करते हैं । वैद्यके लेख अच्छे होते हैं । आपने कई वैद्यक-ग्रन्थ भी लिखे हैं ।

इस निबन्धके लेखक द्वारा पहले पाँच छह वर्ष तक जैनमित्रका सम्पादन हुआ और अब लगभग सात वर्षसे जैनहितैषीका सम्पादन हो रहा है। नीचे लिखी रचनाओंके सिवाय बहुतसे जैनग्रन्थों और सार्वजनिक हिन्दी ग्रन्थोंका भी इसने सम्पादन-संशोधन आदि किया है:—

१ विद्वद्रत्नमाला प्रथम और द्वितीयभाग (इतिहास) ।
२ दिगम्बरजैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ ।
३ भट्टारक-मीमांसा (आलोचनात्मक निबन्ध)।
४ बनारसीदासजीका जीवनचरित ।
५ कर्नाटक-जैन-कवि (इतिहास) ।
६ भक्तामरस्तोत्रका पद्यानुवाद और अन्वयार्थ ।
७ विषापहारका पद्यानुवाद ।
८ उपमितिभवप्रपंचाकथाके दो भाग (संस्कृतसे अनुवादित)।
९ पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी हिन्दीभाषाटीका ।
१० ज्ञानसूर्योदयनाटक (संस्कृतसे अनु०) ।
११ प्राणप्रिय काव्य (संस्कृतसे) ।
१२ सज्जनचित्तवल्लभ काव्य ,,
१३ पुण्यास्रवकथाकोश ,,
१४ धूर्ताख्यान (गुजरातीसे अनुवादित)।
१५ चरचाशतककी टीका ।
१६ जान स्टुआर्ट मिलका जीवनचरित ।
१७ प्रतिभा (बंगलासे अनुवादित) ।
१८ फूलोंका गुच्छा ,,
१९ दियातले अँधेरा (मराठीसे) ।

भाग्यचक्र ।

[ले०, पं० व्रजनन्दनप्रसाद मिश्र और पं० रघुनन्दनप्रसाद मिश्र ।]

प्रथम परिच्छेद ।

जब रामेश्वर शर्मा पचीस वर्षके हुए तब उनके पिता चल बसे । उनको अपने पितासे बड़ा प्रेम था । उनके पिताने मरते समय जो कुछ भी छोड़ा था, उस सबको उन्होंने पिताके श्राद्धहीमें लगा डाला । पिताको स्वर्ग मिलनेकी इच्छासे उन्होंने वे सभी काम किये जो उन्हें लोगोंने बतलाये । क्रिया समाप्त हो जानेपर जब नाते रिश्तेके लोग अपने अपने घरोंको लौट गये, तब कहीं रामेश्वरको जान पड़ा कि मैं छूँछा रह गया । घरवालोंको खिलाना पहिनाना तक कठिन होगया । उनके घरमें एक दिन उन्हें, उनकी जबान स्त्री और तीन वर्षके बालक आनन्ददुलोर—सबहीको भूखे रहने पड़ा । बालक भोजनके लिए रोने लगा और बच्चेका रोना देखकर रामेश्वर शर्माकी स्त्री पार्वती भी रो पड़ी । रामेश्वर कुछ खानेके सामानका संग्रह करनेको घरसे बाहर गये हुए थे; जब वे निष्फल चेष्टा करके खाली हाथ लौट आये तो उन्होंने मा-बेटा दोनोंको बाहर द्वार पर खड़े प्रतीक्षा करतेहुए देखा । दरवाजेसे कुछ ही दूर पर ब्राह्मण भोजनकी पत्तलें और मिट्टीके जल पीनेके पात्रोंका ढेर लगा हुआ था, जिनमें कि गाँवके कुत्ते भोजन खोज रहे थे । बालक बेचारा उधरहीको एकटक देख रहा था । रामेश्वरको देखते ही बालक उनके पासको दौड़ आया और पूछने लगा "पिता, हमारे लिए क्या लाये ?" रामेश्वरकी आँखोंमें आँसू छलछला आये; पार्वतीके नेत्रोंमें भी पानी भर आया । उसने जब बालकके मुखको देखा तो आँसू बह निकले—इतनेहीमें जब फिर उसने आँख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उठाई तो पतिसे दृष्टि मिल गई जिससे दोनों रोपड़े। बालकने दो एक बार इनकी ओर देखा और फिर अन्तमें वह भी रोने लगा। इस प्रकार तोनों बड़ी देरतक रोते रहे। बालक रोते रोते सो गया।

संध्या होगई, रामेश्वर उठ खड़े हुए और अपने जीमें दृढ प्रतिज्ञा करके चल पड़े। एक जगह पर उन्होंने देखा कि नये निकले हुए चन्द्रमाके उजालेमें एक बावड़ीके किनारे कई एक कम अवस्थावाले बाबू लोग बालकाढ़े और कोट पहने हुए चाँदनीसे चमकते हुए स्वच्छ जलमें पैसे फेंक फेंककर 'छन मन' खेल रहे हैं। उनके सामने हाथ जोड़ कर रुद्धकंठ रामेश्वरने चार पैसेकी भिक्षा माँगी। इसपर उन्होंने कहा- " हम अपने पैसे तुझे क्यों दे ? " रामेश्वरने कातर होकर कहा " मैं पैसोंके बिना अपने कुटुम्बके सहित भूखों मरा जाता हूँ, और आप पैसोंको जलमें फेंक रहे हैं।" बाबुओंने उत्तर दिया, " हम अपने पैसोंको चाहे जलमें फेंकें या कुछ करें, तू कौन है साले ! " यह कह चुकने पर एक आदमी घूँसा तानकर रामेश्वरको मारनेको चला। तीर लगे हुए सिंहकी भाँति रामेश्वर वहाँसे हट गये और कुछ दूर जाकर जीमें सोचने लगे कि मैं तो इन बन्दरोंको एक एक थप्पड़ जमा देकर इनके पैसे छीन ले सकता था, तब मैंने छीन ही क्यों न लिये ! क्षुधाकी ज्वालासे उनका धर्म और अधर्मका ज्ञान लोप होने लगा था। वहाँसे वे एक और गाँवमें गये और एक मकानके पास जाकर खड़े हो गये। घरमें सब सोये हुए जान पड़े। इतनेहीमें आनन्ददुलोरेका भूखा और कातर नन्हासा मुख स्मरण आगया और पार्वतीके रोनेकी याद आगई, जिसस उन्होंने विचारा कि अकेले धर्मको लेकर क्या चाटूँगा ! वे उसी समय घरमें घुस गये और वहाँ एक पिटारेमेंसे उन्होंने कुछ पैसे चुराये। पिटारेमें तीन रुपये और आठ आनेके पैसे पड़े थे। रामेश्वरने केवल आठ आने पैसे ही निकाले। घरवालोंमेंसे किसीको भी चेत नहीं हुआ।

चलते चलते रामेश्वरने सोचा कि पैसे तो मिले; किन्तु चावल और नोन कहाँ मिलेगा ? आखिर इस सामानकी खोजमें वे एक दूसरे गाँवको गये। आसपासके पाँच सात गाँवोंमेंसे केवल उसी गाँवमें एक दूकान थी। वहाँ पहुँचकर रामेश्वरने दूकानदारको कई बार पुकारा; पर दूकानदार कहीं गया था, इसलिए कोई उत्तर न मिला। हारकर उन्होंने दूकानका दरवाजा खोला और भीतर पहुँचकर वहाँसे रातके गुजारे भरके लिए दाल चावल और नोनको निकाला। सब चीजोंको कपड़ेके छोरमें बाँधकर उचित मूल्य वहाँ रख दिया और इसके बाद उन्होंने वहाँसे प्रस्थान किया। रास्तेभर उनका जी डरता रहा, किन्तु कोई विपत्ति नहीं आई और वे सकुशल घर जा पहुँचे। पार्वतीने भोजन बनाया और रामेश्वर और लड़केने खाया। पार्वती खा लेती तो दूसरे दिनको कुछ भी नहीं बचता, इससे उसने उपवास किया और अपने हिस्सेका भोजन स्वामीसे छिपाकर एक हाँड़ीमें बालकके लिए दूसरे दिनको रख दिया। रामेश्वरको इसका पता नहीं लगा।

दूसरे दिन पार्वतीसे सलाह करके रामेश्वरने अपना गाँव छोड़ दिया और परिवारसहित वे भातीपुर गाँवको चले गये। यह गाँव उनके जन्मस्थानसे दो मंजिल दूर था। वहाँ पर पहिचाने जानेकी कोई संभावना नहीं थी, इसलिए उन्होंने सोचा कि मैं अपनेको क्षत्रिय बतलाकर और लोगोंकी भाँति शारीरिक परिश्रम करके घरवालोंका पेट पाल सकूँगा। पार्वती बोली कि मैं किसी भले घरानेमें दासीवृत्ति कर लूँगी। यह सलाह ठहरा कर उन्होंने अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घरको बेचनेसे पायेहुए धनद्वारा एक कुटी बनवाली और उसमें रहने लगे। किन्तु अपरिचित होनेके कारण उनके भाग्यसे कोई नौकरी नहीं मिली। वे जहाँ जाते थे वहीं जमानत माँगी जाती थी। अजान पुरुषकी जमानत कौन दे? अपने घरको बेचकर जो दाम दमड़े लाये थे वे प्रायः सब पूरे हो चुके थे। ऐसी दशामें रामेश्वरने एक दिन गाँवके नायबसे अपनी दीनताका हाल कहकर एक सिपहगीरीकी नौकरीकी प्रार्थना की। नायब बोला, "अभी कोई जगह तो खाली नहीं है; किन्तु इस समय पैसा कमानेकी एक और सूरत है। कल तुम्हारी स्त्री मेरे घर गई थी। मैंने उसे भी वह बात बतलाई थी; किन्तु उसको सुनते ही वह बिगड़ उठी। शायद तुम भी बिगड़ उठोगे और वह काम है भी कठिन। इसलिए तुमको उसका बतलाना ही व्यर्थ है।"

रामेश्वरने कहा—"पेटकी आगके सामने मेरे लिए सब कुछ साध्य है। स्त्रियोंकी समझमें तो सबही कार्य बे-ठीक जँचते हैं। आप मुझसे कहें तो मैं उस पर विचार करूँ।"

नायबने कहा, "अच्छा, सुनो। कोई दो महीने हुए इस गाँवमें एक स्त्री मार डाली गई थी; किन्तु इस बातका पता अभी तक नहीं चला कि हत्या करनेवाला कौन है। दारोगाने बड़ी तहकीकात की और मैंने भी चेष्टा की, किन्तु कुछ भी सफलता नहीं हुई। पता न लग सकनेके कारण मजिस्ट्रेट साहबने रुष्ट होकर हमारी लापरवाही समझी और जमींदारको दण्ड दिया। उसके बाद अब इस गावमें एक चोरी होगई है। पर उसका भी अभीतक कुछ भेद नहीं खुला है। दारोगाको एक मनुष्य पर सन्देह हुआ था; किन्तु वह भाग गया। उसका न अबतक कुछ पता लगा है और न शीघ्र लगनेकी आशा ही है। यदि शीघ्र ही किसीको अपराधी ठहराकर मजिस्ट्रेटके पास नहीं भेजा जायगा, तो जमींदारको फिर दण्ड-दिया जायगा, या उनकी जमींदारी निकल जायगी। इस लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है कि किसी आसामीको तैयार करके चालान कर दिया जाय। जो कोई तैयार होगा, उसको भी कुछ अधिक भयकी बात नहीं है। क्योंकि चोरी केवल सामान्य वर्त्तनोंकी है जिसके लिए ज्यादासे ज्यादा महीने भर तककी जेल हो सकती है, अधिककी नहीं। किसी रोजगारके लिए विदेश जानेहीमें कभी कभी महीने भरसे अधिक समय लग जाता है। यह भी वैसा ही हिसाब है और फिर विदेश जाकर एक महीनेमें जितना धन कमाया जा सकता है, इसमें उससे दसगुनेका मीजान है। जमींदारने कहा है कि जो आसामी जानेको तैयार होगा, उसको पचास रुपये मिलेंगे। इस लिए यह भी धन कमानेकी एक राह है। इसके सिवाय जब तुम जेलसे छूट आओगे, तब तुम्हें कोई सरकारी नौकरी भी दिला दी जायगी।"

नायबकी इस बातको सुनते ही रामेश्वर अपनी पहली चोरीको याद करके पीला होगया और सोचने लगा कि शायद ईश्वरने मेरे भाग्यमें जेलखाना ही लिख रक्खा है; नहीं तो मैं उस दिन वे थोड़ेसे पैसे चुराता ही क्यों? जब उस पापका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना पड़ेगा, तब दो दिनके आगे पीछेका विचार क्यों किया जाय? स्वयं ही जेल जाकर उस पापका प्रायश्चित्त क्यों न कर डालूँ? मैं जब अपने आप ही प्रायश्चित्त कर लूँगा तब क्या भगवान् प्रसन्न नहीं होंगे? और यह जो अन्नका दारिद्र्य सिर पर चढ़ा हुआ है इसको हटानेका और कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है।

रामेश्वरने कहा, "मैं राजी हूँ, तुम मेरे पचास रुपये मुझको दे दो।" नायब उसी समय रुपये देकर बोला—"एक बात यह भी है कि जब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिलेमें पहुँचोगे तब तुमको माजिस्ट्रेटके सामने चोरी स्वीकार करनी होगी। यदि तुम अपराध अस्वीकार करोगे तो मुझको तुम्हारे विरुद्ध झूठा प्रमाण तैयार करके भेजना होगा।" रामेश्वर स्वीकारतासूचक गर्दन हिलाकर वहाँसे चल-दिया। घर जाकर उसने वे पचास रुपये गिन-कर अपनी स्त्रीके हाथमें रख दिये। हाथमें रुपये लेकर पार्वती बोली कि ये रुपये आपने कहाँसे पाये? रामेश्वरने सब हाल विस्तारपूर्वक कह डाला।

इस बातको सुनते ही पार्वतीने रुपयोंको दूर फेंक कर स्वामीके दोनों पैर पकड़ लिये और आँखोंमें आँसू भरकर ऊपरको मुख उठाकर कहना आरंभ किया-"ऐसा काम कभी मत करना, इन सत्यानाशी रुपयोंके लिए अपने आपको क्यों कैदी बन रहे हो? मैं भीख माँगकर खिला-ऊँगी। देखो, ऐसा मत करो। मुझे विदेशमें अकेली छोड़कर न चले जाना। यदि तुम्हें मेरा ख्याल न हो तो न सही, टुक इस बालकके मुखको तो देखो; इस बेचारेका और कौन है? यदि इसे कुछ हो गया तो मैं कहाँ जाऊँगी और किसके द्वार पर जाकर खड़ी होऊँगी?" यह कह कर उसने अपने पतिकी छातीमें मुख छुपा लिया और रोना शुरू कर दिया। उस समय लड़का बाहर खेल रहा था; उसने माँकी रोनेकी आवाज सुनी। सुनते ही दौड़ा आया और उसने घबड़ाकर अपने धूल भरे हाथोंको शरीरसे पोंछते पोंछते दोनोंकी ओर देखा। अंतमें बोला कि "पिताजी, क्या तुमने अम्माको मारा है?" यह कहकर उसने माँकी गोदमें चढ़ कर उसके मुखका बार बार चुंबन किया और कहा-"माँ तू मत रो, मैं बापको खूब मारूँगा।"

इससे पार्वती सब भूल गई, उसने बच्चेको गोदमें उठा लिया और कहा- "अच्छा इनको मार।" बालक उतर पड़ा और अपने छोटेसे हाथोंको बापकी पीठ पर यह कह कर मारने लगा कि 'देख यह मारा' और फिर उसी समय गला पकड़कर उनका मुखचुम्बन करने लगा। पार्वती सिखाने लगी 'फिर मार' और बालक उसी समय "फिर मारता हूँ" कहकर अपने अमृतमय हाथोंसे पिताकी पीठमें फिर मारने लगा। इस पवित्र सुखमें न जाने कितना समय बीत गया। रामेश्वर रुपयोंको इकट्ठाकरके खाटपर रख कर चले गये और पार्वती बालकके साथमें अपना जी बहलाती रही।

उधर रामेश्वरने नायबके पास जाकर कहा- "नायबसाहब, मेरा चालान करनेमें अब अधिक देर मत करो। देर होनेसे जानेमें बाधा आ पड़ेगी। यदि एक बार स्त्रीकी कात-रता और देखना पड़ेगी तो मेरी समझ जाती रहेगी, इस लिए जो कुछ भी करना हो, कर डालो; मैं अभीतक पक्का बना हुआ हूँ।" नायबने घबड़ाकर दारोगाके पास संवाद भेजा। थोड़ी ही देरमें सिपाहियोंने आकर रामेश्वरको घेर लिया और वे उनको जिलेकी ओर ले चले।

अब रामेश्वरको स्मरण आया कि ओह! मैं जेलखानेको जा रहा हूँ! उस जेलखानेको!- जहाँ ब्राह्मणों और स्त्रियोंके हत्यारे और पापी लोग रक्खे जाते हैं; जहाँ डकैत, राहजन और ठग आपसमें बन्धु बनते हैं-उसी जेलको! जहाँ कि मनुष्य जानवर बनाकर कोल्हूसे बाँध दिये जाते हैं-उसी जेलखानेको! जहाँ कि बिना जाने पहिचाने ब्राह्मण और मुसल्मान दोनों एक पंक्तिमें खाते हैं; और भंगी, डोम एक ही खाट पर सोते हैं उसी जेलको! जहाँ न्याय नहीं होता है बल्कि बेतोंसे ठोका पीटी ही हुआ करती है-उसी जेलको! किस अपराधमें? अपराध है तो केवल यह है कि भोजन नहीं जुटता है-स्त्री और पुत्रका बिना अन्न भूखों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरना आँखों - नहीं देखा जाता है—बस यही अपराध है।

इतनेहीमें आकाशको चीरती हुई पुष्पाच्छादित वृक्षों, लताओं, पत्रों और बस्तीवाले स्थानोंको कँपाती हुई एक तीव्र, करुणाजनक, और मर्मभेदी रोनेकी आवाज रामेश्वरके कानोंमें आकर पड़ी। घूमकर देखने पर हाँफती हुई और दौड़ती आती हुई पार्वती दिखाई पड़ी। वह रोकर यह कह रही थी- "जरा ठहरो, तुमको देख तो लूँ।" अब रामेश्वरसे सँभला नहीं गया; वह घूमकर खड़ा होगया और दौड़कर ब्राह्मणीके पास पहुँचनेकी चेष्टा करने लगा, पर सिपाहियोंने उसको जाने नहीं दिया और धक्का देकर वे उसे आगेको ले चले। इतनेहीमें देखते देखते गाँवके कुछ लोगोंने आकर पार्वतीको पकड़ लिया। पार्वती धूलमें गिरकर चीत्कार करने लगी; उसके बाल धूलमें मैले होगये। अब रामेश्वरको आँखोंसे यह कुछ दीख नहीं पड़ रहा था, क्योंकि वह बराबर दूर होता जा रहा था। केवल बीच बीचमें पत्नीके रोनेकी ध्वनि कानमें आपड़ती थी जिससे कि उसको समुद्र चढ़ता हुआ और संसार रोता हुआ जान पड़ता था।

दूसरा परिच्छेद।

पुलिसके सिपाहियोंके रामेश्वरको लेजाने बाद दारोगा और नायब दोनों भोजन करके एक जगह बैठे और बातचीत करने लगे। इतनेहीमें एक दासीने आकर संवाद दिया कि रामेश्वरकी स्त्री कुछ कुछ शान्त हुई है और जान पड़ता है कि अब वह पतिवियोगकी यन्त्रणाको सह लेगी। वह बालकको सुलाकर लेट रही है—धीरे धीरे रोती भी जाती है।

नायबने कहा "आज उसके पास जिस स्त्रीके रखनेकी बात हुई थी वह क्या अब भी नहीं पहुँची है?" दासीने उत्तर दिया, "वह वहाँ ही है और मैं भी वहीं थी; अभी वहींसे आई हूँ।"

जब दासी यह बातें करके चली गई तब दारोगाने कहा, "जो कुछ सुननेमें आया है उससे समझ पड़ता है कि आसामी भाग जानेकी ताकमें है और यदि भाग नहीं पाया तो कमसे कम मजिस्ट्रेटके सामने इकरार तो नहीं करेगा।" नायबने कहा, "तब क्या करना चाहिए?" दारोगा बोला, "यदि आसामी अपराध स्वीकार नहीं करेगा तो कोई प्रमाण देना पड़ेगा। आसामीके घरसे चोरीका माल निकालना पड़ेगा और इस कामको करनेके लिए माल वहाँ पहलेसे ही रख आना होगा। तुम इसी समय एक लोटा लेजाकर उसकी स्त्रीको राजी करके स्वयं रख आओ।" नायबने कहा, "अब तो रात होगई, कल सबेरे ही इस कार्यको कर डालूँगा।" दारोगाने कहा, "आलस्य करनेमें लाभ नहीं है। यदि सबेरे लोग देख लेंगे तो सब चौपट होजायगा। इस लिए देर न करो, जाओ।" नायबको हार मान कर जाना ही पड़ा।

रामेश्वरके भाग्यकी जंजीरने उसे सब ओरसे बाँध डाला था। अँधेरी रातमें रामेश्वर सिपाहियोंके हाथसे छूटकर निकल भागा। कहीं कोई पहिचान न ले, इस भयसे वह छिपकर मकानके पासके एक पेड़की आड़में खड़ा हो गया और चारों ओर देखने लगा। इसी समय पूर्वकी ओरसे कोई मनुष्य आया। रामेश्वरने उसे सिरसे पैर तक देखकर पहचान लिया कि यह नायब है। एकबार उसके जीमें आया कि दौड़कर इसके पैर पकड़ लूँ और रुपये फेर दूँ। स्त्रीको सुख देनेहीके लिए मैंने यह काम किया था और यदि उसीको कष्ट हुआ तो फिर रुपये किस कामके? वह यह सोचता ही रहा कि नायब उसके मकान पर जाकर खड़ा हो गया। उस समय भी पार्वती बहुत धीरे धीरे रो रही थी। उस घरमें जो स्त्रियाँ थीं, उन्होंने कहा— 'अजी! सो जाओ, नहीं तो बीमार हो जाओगी।' यह सुनकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पार्वती और भी अधिक रोने लगी । नायबने बाहरसे रोनेके शब्दको सुनकर कहा–" ब्राह्मणी बाई, जरा किवाड़ खोल दो । मैं तुम्हारे पतिकी खबर लेकर आया हूँ । " जहाँपर पेड़की आड़में छिपेहुए रामेश्वर खड़े थे वहाँतक इन बातोंका कोई शब्द नहीं पहुँचता था । पार्वतीके धीरे धीरे रोनेकी आवाज भी वहाँतक नहीं जाती थी । नायबकी बात सुनते ही भलाई बुराईका विचार किये विना ही पार्वतीने मकानका द्वार खोल दिया । नायबने भीतर जाकर कहा कि तुमसे बहुतसी बातें कहना है, इसलिए पहले द्वार बंद कर लो तो अच्छा है ; नहीं तो कोई सुन लेगा । रामेश्वरने दूरसे ही खड़े खड़े देखा कि नायबने मकानके द्वारपर पहुँचकर किवाड़ खटखटाये और पार्वतीको अस्फुट स्वरमें पुकार कर दो एक बातें कहीं । इससे उसका स्वास जल्दी जल्दी चलने लगा । आगे उसने देखा कि पार्वतीने शीघ्र ही किवाड़ खोल दिये और नायबके घरमें धँसते ही द्वार फिर बन्द हो गया । रामेश्वरने सोचा कि अब मुझे और क्या समझना बाकी रह गया ? नायबने इसीके लिए कौशलसे मुझको दारोगाके हाथमें फँसाया था । अच्छा इसका बदला लूँगा । यह कहकर वह मकानके द्वारपर आकर खड़ा हो गया । वहाँसे उन दोनोंकी बातचीत सुन पड़ती थी । पहले तो उसने सोचा कि सुनना चाहिए क्या बातें हो रही हैं; किन्तु फिर तत्क्षण ही अपने ऊपर क्रुद्ध होकर किवाड़ोंमें लात मारी । घरके भीतर निस्तब्धता हो गई; तब मर्मवेदनासे रुके हुए कण्ठसे उसने कहा–, " जिसके लिए तू रो रही थी, वह आया था; किन्तु तेरा यार घरमें है इस लिए अब वह जाता है । " पार्वती पतिकी आवाज समझकर आनन्दसे फूली नहीं समाई, पागलसी होकर बाहर निकल आई और पुकारने लगी । पर रामेश्वरने उसपर ध्यान नहीं दिया, वह बिना कुछ कहे ही चल दिया । द्वार खोलने पर जब पार्वतीने पतिको देखा और पुकारनेका उत्तर न पाया, तब वह रोने लगी ।

रामेश्वर सोचने लगा कि मैं अब न किसी और-को कष्ट दूँगा और न स्वयं ही कष्ट उठा-ऊँगा–इस घृणित पृथिवीको ही त्याग दूँगा । यही सिद्धान्त करके वह चल पड़ा । दोपहरको जो रोना मर्मभेदीसा जान पड़ा था, वही अब पैशाचिक समझ पड़ने लगा ।

कुछ दूर जानेपर रामेश्वरने देखा कि सिपाही लौटे हुए आरहे हैं । उनके पास जाकर उसने कहा–" लो, हमको बाँध लो, हम लौटकर आ गये।" रामेश्वरकी सूरत देखकर सब कोई डरे, उनका साहस न हुआ कि हम इसे बाँध लें । रामेश्वरने कहा कि " घरके उन लोगोंको देखनेकी बड़ी इच्छा हुई थी, इसीसे चला गया था । अब चलो, डरनेकी कोई बात नहीं है । मैंने अपने आपही अपनेको पकड़ा-वाया था, तभी तो तुम्हारे दारोगा मेरा चाला-न कर सके थे; नहीं तो उनकी कुछ भी नहीं चलती । मैंने उस दिन खून किया था, किन्तु किसीने भी मुझको इसलिए पकड़नेकी चेष्टा नहीं की कि मैं पकड़ा नहीं जा सकूँगा । "

यह सुनकर जमादारने बड़े आग्रहके साथ पूछा "कि क्या उस दिनका खून तुमहीने किया था ? " रामेश्वरने उत्तर दिया, " हाँ, वह खून मेरा ही किया हुआ था । " जमादारने फिर पूछा कि " तुम क्या अदालतमें उसको स्वीकार कर सकते हो ? " रामेश्वरने कहा, " हाँ, अवश्य स्वीकार कर सकता हूँ;मुझे डर ही किसका है ।" इसके बाद उससे किसीने कुछ भी पूछताछ नहीं की; उसे लेकर सब चुपचाप चल दिये ।

दूसरे दिन अपराधी मजिस्ट्रेटके सामने ले जाकर खड़ा किया गया । उसे गौरसे देख कर मजिस्ट्रेट साहबने पूछा " क्या तुम उस खूनके मामलेके इकरारी आसामी हो ? " ' हाँ ' कह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर रामेश्वरने सलाम किया। उस समय उसकी मानसिक पीड़ा बहुत ही अधिक हो गई थी। उसने अपने लिये इसी कारणसे हत्यारा बनाया था कि जैसे बने तैसे इस जीवनको त्याग देना ही भला है। जमादारने इस सम्बन्धका आवश्यक प्रमाण जुटा दिया और रामेश्वर दौरा सुपुर्द कर दिया गया। वहाँ उसको जन्म भरके लिए काले पानीका दण्ड दिया गया। निजामत अदालतने इस दंडकी आज्ञाको कम कर दिया। उन दिनोंमें पिनल कोड (दंडसंग्रह) नहीं बना था। रामेश्वर बीस वर्षको काले पानी भेज दिया गया।

उधर पार्वती अपने पतिके शब्दको एक बार सुननेके पीछे फिर उत्तर न पाकर पगलीसी होकर उनको ढूँढ़नेके लिए वन वन भटकती फिरने लगी। उसको उसके पति कहीं भी नहीं मिले। वह कितनी ही रोई किन्तु उसको किसीने भी नहीं चुपाया। अन्तमें पद्मानदीकी धारमें खड़ी होकर वह कुछ सोचने लगी। सोचते ही सोचते एक साथ उसको ध्यान आया कि जब पति गये थे, तब उनकी बातमें एक शब्द था—एक बहुत ही निष्ठुर और भयंकर वाक्य था। उस समय आनन्दमें पार्वतीने कुछ कान नहीं दिया था, उस समय उस बातका अर्थ वह नहीं समझ पाई थी। अब उसे उस बातका अर्थ समझमें आया—अब समझमें आया कि वे क्यों चले गये! अब उसे सूझा कि मेरा भाग्य फूट गया—अब संसारमें पतिका साक्षात् नहीं होगा। उस समय उसको आकाश, नक्षत्र और जल सर्वत्र अँधेरा सूझने लगा। नदीके जलमें एक शब्द हुआ, जलमें तरंग उठी और फिर जल मिल गया, अंतमें फिर स्तब्धता होगई। पार्वती जहाँ खड़ी थी वहाँ नहीं रही; वह पानीमें डूब गई।

तृतीय परिच्छेद।

इस घोर नाद करनेवाले समुद्रकी वज्र जैसी भारी लहरोंको सुनते सुनते बीस वर्ष! रेतेसे पूर्ण किनारेके पासके नारियलके वृक्षोंकी छोटीसी छायामें कुदाल हाथमें लिये हुए विश्राम करते करते बीस वर्ष! इस समुद्र-प्रान्तके फेनके ऊपरके धुएँमें आनन्ददुलारेके मुस्कुराते हुए मुखको खोजते हुए बीस वर्ष! ओफ! अपने आप कालेपानी जानेवाले रामेश्वरने सोचा था कि मैं मर जाऊँगा, किन्तु वह मर नहीं पाया—उसे बीस वर्षकी यन्त्रणा भोगनेको जाना पड़ा। हम लोग मनमें विचारते हैं कि यह करेंगे और वह करेंगे; किन्तु एक और कोई है जो वैसा होने नहीं देता। हमलोगोंका काम दिखाई पड़ता है और उसका काम अदृष्ट है।

जिस समय विश्वासघातिनी पार्वतीकी बातको मनमें लाकर रामेश्वरने मरना चाहा था, उस समय उसे आनन्ददुलारेकी याद नहीं आई थी; किन्तु इस देशसे निकाले गये लोगोंके रहनेके स्थानमें आनन्ददुलारेका स्वाभाविक और सरल मुस्कुराहटवाला चेहरा, उसकी तोतली बातें और तरह तरहके खेल दिनरात याद आने लगे। जब समुद्र धीरे धीरे शब्द करता था तब रामेश्वर सोचता था कि आनन्ददुलारे बोल रहा है। जब दूरपर अच्छी तरह न दिखाई पड़नेवाली कोई लहर उठ कर नाचती थी, तब रामेश्वर समझता था कि आनन्ददुलारे नाचता है। रामेश्वरने तो समझा था कि बीसवर्ष नहीं जीऊँगा; किन्तु हुआ यह कि वह जीता रहा और अवधि पूरी होनेपर स्वदेशको लौट आया। भातीपुर लौटने पर उसने देखा कि न वह झोपड़ी है और न उसकी स्त्री ही है। आनन्ददुलारेको भी कोई नहीं जानता— कोई भी उनका पता नहीं बतला सकता। रामेश्वर! ऐं, रामेश्वर कौन? रामेश्वरको कोई नहीं पहचानता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रामेश्वर अपने लड़केके लिए कितने ही दिनोंतक पागलोंके सदृश घूमता फिरता रहा । एक दिन वह बाजारके रास्तेमें जा बैठा और सोचने लगा, संभव है कि आज मेरा लड़का हाट करनेको निकल आवे । युवावस्थाके जितने पथिक उधरसे निकलते थे रामेश्वर उन सबको अतृप्त दृष्टिसे देखता जाता था । अचानक एक स्त्रीको देखते ही रामेश्वर घबड़ा गया । देखनेमें वह स्त्री वेश्या जान पड़ती थी । उसके आकारको देखकर रामेश्वरने समझा, पार्वती है । उस समय पार्वती २० वर्षकी थी, रामेश्वरको गये बीस वर्ष हो गये, इससे अब उसके ४० वर्षकी अवस्था होनेके दिन हैं—यह स्त्री भी इतनी ही अवस्था की है । जिसको बीस वर्षकी अवस्था हो जानेके पीछे फिर न देखा हो, वह चालीस वर्षकी होनेपर सहजमें नहीं पहचानी जा सकती। जिस पार्वतीको छोड़कर रामेश्वर गया था, यह वह पार्वती नहीं है; किन्तु रामेश्वरने सोचा कि यह जो आकृतिका भेद है, सो अवस्थाके कारणसे हो गया है । वेश्या लाल वस्त्र पहने और गलेमें बनैले सूखे फूलोंकी माला डाले हुए, तमाखू खाती हुई, एक मुसल्मानसे बातें कर रही थी । रामेश्वरने उसके पास जाकर गंभीर स्वरसे पूछा—" मेरा लड़का कहाँ है ? " वेश्याने आकाशकी ओर मुख करके कहा,—" तेरा लड़का कौन ? "

रामेश्वर—आनन्ददुलारे !

वेश्या—तू मर क्यों नहीं जाता ? क्या मरनेके लिए रस्सी नहीं मिलती ?

रामेश्वर—रस्सी शीघ्र मिल जायगी । इस समय तू यह तो बतला दे कि आनन्ददुलारेको कहाँ भेज आई है ?

वेश्या—चूल्हेमें भेज आई हूँ । उसको नदीके घाट पर पहुँचा आई हूँ । उसके चेचक निकली थी। वह गया, अब तू भी जा ।

रामेश्वरसे यह सहा नहीं गया। उसने वेश्याकी छातीमें जोरसे एक लात मारी और अपनी रास्ता धर ली । इसका उसको कुछ भी पता नहीं था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ । कालेपानीमें वह केवल अपने लड़केके मुखहीका ध्यान करता रहता था और बैठे बैठे सोचा करता था कि उस मुखको अब कब देखूँगा । बस यह आशा ही उसको संसारसे जोड़नेवाली एक गाँठ थी । अब यह गाँठ भी छूट गई ।

आगे उसको राहमें एक स्त्री मिली जो कि एक सुन्दर बच्चेको गोदमें लिये थी । रामेश्वरने उसके गालपर एक जोरका तमाचा मारा और बच्चेको छीनकर पृथ्वी पर खड़ा कर दिया । स्त्री बड़े जोरसे रोने लगी । रामेश्वरने कहा "तू राक्षसी जातिकी है; बच्चेको मार डालेगी । इसे छोड़ दे । "

रामेश्वरने गली गली और बन बन भटकते हुए सारा दिन बिता दिया । जब रात हुई तो उसे बड़ी भूख लगी । सामने एक दूकान थी और दूकानवाला टट्टी दे कर सो रहा था। रामेश्वर टट्टी तोड़कर घुस पड़ा और सामने जो कुछ मिला खाने लगा। दूकानदारने उठकर गाली देना आरंभ किया । इस पर रामेश्वरने उसे गला पकड़कर दूकानके बाहर निकाल दिया । दूकानदार दौड़ता हुआ गया और चौकीसे एक बरकंदाजको बुला लाया । रामेश्वरने बरकंदाजकी लाठी छीनकर उसीके सिरमें जमाई जिससे कि उसका सिर फट गया ! शीघ्र ही यह खबर फैल गई कि एक प्रसिद्ध डाँकू कालेपानीसे लौट कर देशको लूटे डालता है और जिसे पाता ह उसीको मारता है । पुलिस चौकन्नी होगई और मजिष्ट्रेटने उसके नामका दोसौ रुपये इनामकी गिरफ्तारीका इश्तहार निकाल दिया । रामेश्वरने कुछ दिनोंतक तो इसी तरह लूट मार करते हुए छिपेछिपे दिन बिताये और लोगोंने उसका पीछा करके उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंगली पशुओंकी भाँति इधर उधर घुमाया। इसके बाद जितने भी बदमाश और डाँकू थे वे सब उसका प्रताप सुनकर उसके पास सब ओर-से आकर इकट्ठे होने लगे। अब रामेश्वरने डकैतोंका सरदार बनकर मनुष्यजाति पर घोर अत्याचार करना आरंभ कर दिया। उसे कभी कोई पकड़ नहीं सका। केवल एक बार वह पकड़ा जाता, पर बच गया। एक दिन वह अपने डाँकुओंके दलके साथ बहुत दूर पर डाँका डालने गया था। जहाँ डाँका डाला गया, वहाँके लोग सचेत और बलवान् थे। वे डाँकुओंसे भिड़ पड़े। रामेश्वरको चोट आगई, वह बेहोश हो गया। उसके संगियोंने उसको वहाँसे उठा ले आकर एक दूसरे गाँवके पास वनमें छोड़ दिया। दूसरे दिन सबेरे गाँवके लोगोंने उसे देखा जिससे कि वे जीमें डरे और पुलिसको सूचना देने जाने लगे। इतनेहीमें पासके नगरके एक डाक्टर उस गाँवके किसी धनी मनुष्यकी चिकित्सा करनेके लिए वहाँ आगये। उन्होंने कहा,—" यह शीघ्र ही मरजानेवाला है—मैं चिकित्सा करके इसको बचा लूँगा। पर यदि तुम इसको पुलिसमें लेजाओगे, तो यह मरजायगा—इसलिए पुलिसको अच्छे होनेके बाद सूचना देना। "

लोगोंने डाक्टरकी बात मान ली। डाक्टर चिकित्सा करने लगे और उसके प्राण बच गये। वह अच्छा हो ही रहा था, उठनेकी शक्ति ही आ पाई थी कि पुलिसके डरसे डाक्टरके यहाँ-से भाग गया।

चतुर्थ परिच्छेद।

रामूसर्दारके डरसे देश काँपने लगा; किन्तु वह आनन्ददुलारेके शोकको नहीं भुला सका। जिस घटनाका हाल ऊपर लिखा गया है उसके चार वर्ष पीछे रामू या रामेश्वर एक दिन अपनी डकैती सेनाके साथ चला जा रहा था। आधीरातका समय था। नदीके जलपर चन्द्रमाकी किरणें काँप रही थीं। नदीके किनारे किनारे एक पाल्की धीरे धीरे जा रही थी। पाल्कीके भीतर एक बाबू लेटे हुए थे। घरवाली, लड़की, ईंटोंका पजाबा, नया बाग, नये बागके केवला मालीकी दुरंगी दाढ़ी और चपटी नाक इस तरहकी अनेक बातें थीं, जिनका बाबू विचार कर रहे थे। उनकी विचारपरम्परा चल ही रही थी कि इतनेहीमें एकाएक पाल्की पर एक जोरका धक्का लगा और वह कुछ ही दूर चल कर पृथ्वीपर आरही। बाबूने पाल्कीसे मुँह बाहर निकाला, यह देखते ही वे काँप उठे कि चन्द्रमाकी किरणोंसे पचीस तीस तलवारें चमक रही हैं और जिन लोगोंके हाथोंमें वे तलवारें हैं, वे सब चुपचाप पैर रखतेहुए आगेको बढ़ते आते हैं। बाबू सब समझ गये। डाँकुओंने पाल्कीके पास आकर बाबूको बाहर निकाल लिया। इतनेहीमें एक डाँकूने बड़े जोरसे घूमाकर एक चाबुक चलाया, पर रामेश्वरने हाथ फैलाकर उस कोड़ेको बीचहीमें पकड़ लिया और बाबूको बचा लिया। उसने सारे डाँकुओंसे कहा,—"तुम लोग जरा ठहरो, जान पड़ता है कि इनको मैंने कहीं देखा है, इन्हें अच्छी तरह देख लूँ।" जिसने चाबुक चलाया था, उसने खिसियाकर कहा,—" तुमने तो सबहीको देखा है! सब तुम्हारे कुटुम्बी और नातेदार ही तो हैं। अच्छा तुम अलग हो जाओ, हम लोग बाबूको पहचाने लेते हैं। " इस पर रामेश्वरने दर्पसे तल-वार घुमाकर कहा—"या तो सब दूर हो जाओ, नहीं तो जिसमें साहस हो वह सामने हथियार लेकर आ जावे। " यह बात सुनते ही सब हट कर खड़े हो गये। इसके बाद रामेश्वरने बाबूसे पूछा कि " क्या आप डाक्टर हैं?" बाबूने उत्तर दिया कि " हाँ, मैं डाक्टर हूँ, मुझे बचा देओ, मैं तुम्हारा जन्मभर ऋणी रहूँगा।" रामेश्वरने कहा कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"डरनेकी कोई बात नहीं है, मैं ही आपका ऋणी हूँ।" बाबूसे यह कहकर उसने और डाँकुओंको बुलाकर उनसे कुछ कह दिया और बाबूको लूटनेमें उसकी सलाह न देखकर अन्य डाँकू जहाँ-को जानेवाले थे वहींको चल दिये।

डाक्टर बाबूने डाँकूसे पूछा कि तुमने मुझे कैसे पहचाना और किस लिए मेरी रक्षा की, यह जाननेके लिए मैं बहुत ही उत्कण्ठित हो रहा हूँ। डाँकूने कहा कि "बहुत दिन हुए तब मैं घायल होकर एक जंगलमें पड़ा था। वहाँसे आपने मुझे उठवा मँगाया था और मेरे प्राण बचाये थे। मुझे आपने गाँववालोंके हाथसे बचाया था और पुलिसके हाथ नहीं पड़ने दिया था। मैं सदाके लिए आपके हाथ बिक चुका हूँ। अच्छा चलिए, मैं आपको घाटीके उस पार पहुँचाकर चला आऊँगा।" डाँकूकी ऐसी कृतज्ञता देखकर डाक्टर साहबने कहा, "तुम्हारा स्वभाव तो महात्माओंके जैसा है, तुमने इस डाँकूपनकी वृत्तिको क्यों कर रक्खा है?"

रामेश्वर एक लंबी साँस ले कर चुप हो रहा। यह देखकर डाक्टरसाहबने समझ लिया कि यह मनुष्य कोई बड़ा दुःख पाकर डाँकू हो बैठा है और चेष्टा करनेसे यह कुपथसे हटाया जा सकता है। उन्होंने सोचा कि इसने मेरी प्राणरक्षा रक्षा की है, इसलिए इसके उद्धारका उपाय करना मेरा कर्त्तव्य है। उन्होंने रामेश्वरसे पूछा "तुम कौन हो? तुम डाँकू कैसे हो बैठे? तुम्हारा हाल जाननेको बड़ी उत्कंठा है। यदि-कोई हर्ज न हो तो अपना हाल कहकर चित्तको शान्त करो। तुमने हमारा प्राण बचाया है, इस-लिए हमारे हाथसे तुमको कोई हानि नहीं पहुँच सकती।" डाँकूने कहा—"आपने भी एक वार मेरी प्राणरक्षा की थी। अब यदि आपके हाथसे उस जीवनमें कोई विघ्न भी हो तो भी कोई हरज नहीं है।" यह कहकर उसने अपना पुराना वृत्तान्त कहना आरंभ किया। अन्तमें आँसुओं-को पोंछतेहुए वह डाक्टर साहबसे कहने लगा, "आज यदि कहीं मेरा पुत्र जीता होता और मुझे देखनेको मिल जाता तो मैं सब कुछ पा लेता।" यह कहकर वह स्तब्ध हो रहा, उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। डाक्टरसाहब भी उसके साथ रोने लगे। कुछ देर पीछे आँसू पोंछकर डाक्टर बाबू कहने लगे, "मैं उस भाती ग्रामको जानता हूँ। मैं वहाँ कुछ दिनोंके लिए चिकित्सा करनेको गया था। आपकी पहलेकी सब बातें मैंने वहाँ नायब तथा और और लोगों-से सुनी थीं। आपका भाग्य बड़ा खोटा है। इसीसे आप भारी भूलमें पड़कर सबको त्यागकर काले पानी चले गये थे।"

रामेश्वरने विस्मित होकर पूछा, "सो कैसे?" डाक्टर साहबने कहा, "आपने बाजारके रास्ते में जिस वेश्याको देखा था और पार्वती जाना था, वह पार्वती नहीं थी।"

रामेश्वरने कहा कि "वह चाहे पार्वती हो या न हो, मेरे लिए दोनों बातें एक ही सी हैं। क्योंकि वह पापिन भी कहीं वेश्या बनी हुई समय काटती होगी।"

डाक्टरने कहा "नहीं, वह आपके शोकमें पद्मानदीमें कूद पड़ी थी।" रामेश्वरने इस बातको अश्रद्धासे सुनकर हँस दिया।

चाहे जैसे ही क्यों न हो किन्तु डाक्टर साहब सारा सच्चा वृत्तान्त जानते थे। उन्होंने नायब और दारोगाकी सलाहसे लेकर पार्वतीके पद्मामें डूबने तकका सारा हाल कह सुनाया। उसे सुनकर रामेश्वरने अपने यज्ञोपवीतको हाथसे बाहर खींचकर और उसे डाक्टर साहबके हाथसे छुआकर कहा—"मुझे धोखा न देना, शपथपूर्वक कहना कि क्या ये सब बातें सच्ची हैं? यदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या कहिएगा तो आपको ब्रह्महत्याका पाप होगा। क्या ये सब बातें सच्ची हैं?"

डाक्टर साहबने कहा कि "हाँ, ये सब बातें सच हैं।" तब रामेश्वर चंद्रमाकी चाँदनीसे चमकती हुई और कोमल फूलोंसे सुशोभित उस नदीके तटकी भूमिपर धीरेसे बैठ गया और उसने दोनों हाथोंसे अपने मुखको ढाँप लिया। धीरे धीरे उसका शरीर काँपने लगा और क्षणभरमें जमीन पर पड़कर वह ऊँचे स्वरसे 'पार्वती-पार्वती,' कहता हुआ रोने लगा। उसकी असह्य यंत्रणा देखकर डाक्टरने उसको धीरज बँधाया, हाथ पकड़ कर उठाया; और कहा—"आप रोवें नहीं; मैं इस दुःखके समय आपको एक अच्छा संवाद दूँगा, आपका पुत्र मरा नहीं है।"

रामेश्वरने बिजलीकी जैसी तेजीसे खड़े होकर पूछा—"क्या मेरा दुलारे जीता है? मुझे जल्दी बतलाओ कि वह कहाँ है?" "आपका पुत्र आपके चरणोंके पास ही है," यह कहकर डाक्टरसाहब रामेश्वरके पैरोंमें लोटकर आँसू बहाने लगे। पहले तो रामेश्वर कुछ भी नहीं समझा, किन्तु धीरे धीरे समझ गया। दोनों हाथोंसे अपने बेटेका मुख उठाकर वह देखने लगा, किन्तु आँखोंके आँसुओंने उसको कुछ भी देखने नहीं दिया। तब पुत्रके सिरको छातीसे लगाकर वह रोतेरोते कहने लगा,—"हाँ, सचमुच ही यह मेरा आनन्ददुलारे है!" कुछ देर पीछे पुत्रने पिताकी छातीसे सिर हटाकर कहा—"आप इस पाल्कीमें बैठकर घरको चलें, वहाँ मैं आपको अपने पाले जाने और लिखने पढ़नेका हाल विस्तारपूर्वक सुनाऊँगा।"

रामेश्वरने सोचा कि यदि मैं इस समय पुत्रके साथ जाऊँगा तो पुत्रको पैदल जाना होगा। इस लिए उसने कहा, "तुम पहले चलो और अपने घरका पता मुझे बतलाये जाओ; कल प्रातःकाल ही मै वहाँ पहुँच जाऊँगा।" आनन्द दुलारेने बहुत कुछ आग्रह किया, किन्तु रामेश्वरने एक नहीं सुनी, इस लिए उनहीको आगे जाना पड़ा। रामेश्वर उसी नदीके तटपर बैठ कर साध्वी पार्वतीके लिए रोने लगा।

दूसरे दिन सबेरे पुत्रके घर पहुँचकर रामेश्वरने उसको फिर गले लगाया। इतनेहीमें आधा घूँघट डालेहुए एक स्त्री आई और रामेश्वरके पैरोंमें पड़कर ऊँचे स्वरसे रोने लगी। शब्द सुनते ही रामेश्वर चौंक पड़ा— ऐं! यह शब्द किसका है? जब दोनों हाथोंसे उसको उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि वह पार्वती ही है।

रामेश्वरने पुत्रकी ओरको मुख करके कहा—"यह क्या बात है? मुझसे तो तुमने कहा था कि यह पद्माके जलमें डूब गई थी।"

आनन्ददुलारेने कहा—"मैंने सच ही कहा था। माँ पद्मामें कूद पड़ी थी, किन्तु मरी नहीं थी। जालवालोंने निकाल कर बचा लिया था।"

तीनों आनन्दके आँसू बहाने लगे और पुरानी सुखदुखकी बातें कह—कहकर सुनाने लगे

काम करनेवालोंके लिए।

(ले०—बाबू दयाचन्द गोयलीय बी. ए.।

चाहे तुम्हारा काम कोई सा हो, कैसा ही हो, तुम्हें चाहिए कि तनिक भी उससे भयभीत मत होओ और न इस कारण उसे छोड़ ही बैठो। चाहे तुम कितने ही दुःखमें होओ, चाहे लोग तुम्हारा कितना ही विरोध करते हों, तथापि तुम उसे दृढ़तासे किये जाओ और अपने अभीष्ट स्थानपर पहुँचनेके लिए नित्य प्रति आगे बढ़ते जाओ। इसका कभी स्वप्नमें भी ख्याल मत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करो कि लोग तुम्हारे विरुद्ध हैं या तुमसे रुष्ट हैं। यदि तुम विचार करके देखोगे तो शायद ही तुम्हें कोई ऐसा आदमी मिलेगा जो इरादा करके तुम्हें हानि पहुँचाता होगा। तुम्हें कभी कभी प्रायः ऐसा ख्याल होता है कि तमाम दुनिया तुम्हारे रास्तेमें रुकावटें डाल रही है, परन्तु यदि दृष्टि पसार कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि दुनिया जानबूझकर तुम्हारे रास्तेमें विघ्न नहीं डाल रही है, किंतु बात असलमें यह है कि दुनिया अपने मार्ग पर चल रही है और वह मार्ग है भी तुमसे बिल्कुल भिन्न; परन्तु कभी कभी वह अपनी धुनमें बेजाने तुम्हें कुचल देती है। पर वह कभी तुम्हें हानि पहुँचानेकी इच्छासे ऐसा नहीं करती और न कभी उसके मनमें ऐसा विचार ही आता है। यह दुनिया एक घुड़दौड़का मैदान है। इसमें हर एक व्यक्ति अपने अपने अभीष्ट पर पहुँचनेके लिए दौड़ा चला जा रहा है। उसे केवल अपनी धुन है। रास्तेमें कौन आ जाता है, इसकी उसे सुध नहीं। अतएव इससे तुम हतोत्साह और भयभीत मत हो जाओ। यदि तुम देखो कि इस दुनियामें जिसे तुम प्रायः कृतघ्न और निर्दय समझते हो, बहुतसे आदमी तुम्हारे विरुद्ध हैं, तो साथ ही इसी दुनियामें तुम्हें बहुतसे आदमी ऐसे भी मिलेंगे जो तुम्हें प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं और तुमसे सहानुभूति रखते हैं। उनकी सहायता तुम्हारे लिए बड़ी बहुमूल्य है। इसी तरह तुम्हें संसारमें अच्छाई और बुराई दोनों मिलेंगी और यदि तुम दृढ़तापूर्वक अपने कामको किये जाओगे, तो तुम्हें एक दिन अवश्य सफलता होगी। दृढ़ता सब गुणोंकी खानि है। सफलताकी कुंजी है। संसारमें जो लोगोंको इतनी असफलतायें होती हैं, उनमें १०० पीछे ९० का कारण दृढ़ताकी कमी है। यद्यपि बहुतोंमें योग्यता होतीहै और योग्यताको काममें लानेका संकल्प भी होता है; परन्तु दृढ़ता नहीं होती। एक काममें जी नहीं लगता। चंचल मन जगह जगह दौड़ा फिरता है। जो शक्ति एक काममें लगती, वह अब दश कामोंमें बट जाती है और इसी कारणसे सफलता नहीं होती है। दृढ़तासे किसी कामके करते रहनेसे कठिनसे कठिन काम भी सुगम हो जाता है। लोहेके पहाड़ भी मोमके समान कोमल हो जाते हैं। छोटेसे छोटा नाला भी दृढ़तासे बराबर बहते रहकर अपने लिए गहरा मार्ग बना लेता है। फिर मनुष्य दृढ़तासे यदि सफलता प्राप्त करले, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?—(कार्लाइल।)

नवयुवकोंको उपदेश।

बालविवाहके कुप्रभाव।

लखनऊमें सप्तम भारतीय आर्यकुमारसम्मेलनके समापति प्रोफे० बालकृष्ण एम० ए० ने कहा:—

सज्जनो, व्यायामके अभावका कुप्रभाव उठती जवानीके कारण कभी कभी हमें ज्ञात नहीं होता किंतु इतना स्पष्ट है कि यौवनका वह सौन्दर्य नहीं होता जितना कि व्यायामकी अवस्थामें सम्भव है और फिर गृहस्थीमें प्रवेश करते ही क्या रोगोंका तारतम्य हमें और हमारे परिवारोंको हैरान नहीं कर देता? जवानीमें शरीरोंको घुन लग जाता है और क्या इसमें संदेह है कि निर्बल शरीर हमें पापों और कुकर्मोंकी ओर ले जाता है? उसमें संयमकी शक्ति नहीं होती। इंद्रियनिग्रह उससे कोसों दूर भागता है। पवित्रात्मा उसके सामने दासकी भाँति झुक जाती है और मनुष्यकी सारी प्रकृतिको वह ऐसा परिवर्तन कर देता है कि वह सूरत इन्सान किन्तु शरीर शैतान बन जाता है। राक्षसी वा आसुरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वभावसे बचने के लिए, आत्माकी दृढतार्थ और मनकी मलीनताके दूरीकरणार्थ बली शरीरोंका होना आवश्यक है। स्वस्थ मन स्वस्थ शरीरमें ही हो सकता है—यह लोकोक्ति प्रायः ठीक होती है। बस शरीर, मन और आत्मा इन तीनों रत्नोंकी रक्षार्थ आपको व्यायामकी ओर ध्यान देना चाहिए। पर इससे भी आवश्यक कारण सावधान होनेके लिए मौजूद है। हमारे निर्बल रोगी शरीर संसार-यात्राके कष्ट क्लेश दुःख विपत्तियोंको न सहार कर शीघ्र ही मृत्यु-लोकमें प्रवासित होते हैं। इस पृथ्वीपर कोई सभ्य देश ऐसा नहीं जिसमें जीवनकाल इतना अल्प हो जितना पुण्यभूमि वीरजननी भारत-भूमिमें है। देखिए।—

जन्मपर जीवनाशाकी पत्री।

देश	पुत्र	पुत्री
न्यूजीलैंड	५४.४	५७.३
स्वीडन	५०.९	५३.६
नारवे	५०.४	५४.१
डेन्मार्क	५०.२	५३.२
हालैण्ड	४६.२	४९.०
फ्रान्स	४५.७	४९.१
बैल्जियम	४५.३	४८.८
स्काटलैंड	४४.७	४७.४
इंग्लैण्ड	४४.१	४७.८
इटली	४२.८	४३.१
प्रशिया	४२.१	४५.८

सज्जनो! आप क्या आशा रखते हैं? जगद्गुरु भारत जिसमें जन्म लेना सौभाग्य समझा जाता रहा है, जो एक अद्भुत सभ्यताके शिखर पर पहुँच चुका है, उसके पुत्र पुत्रियोंकी जीवनाशाकी मात्रा क्या है? इसमें जन्म लेनेवाले पुत्रोंके जीनेकी आशा २३.६ वर्ष है और पुत्रियोंकी २४ वर्ष! इस प्रकार जहाँ यूरोपीय देशोंमें न्यूनतम जीवनकाल ४३ वर्ष है, वहाँ मातृभूमि भारतमें केवल २४ है। आर्यकुमारो! बड़ी विचित्र घटना तो यह है कि सभ्य देशोंमें सभ्यताकी वृद्धिके कारण रोग, मृत्यु, दरिद्रता बालकोंकी मरण-संख्यामें कमी और जीवनाशाकी उन्नति होती है। परन्तु २० वीं शताब्दीकी अपूर्व सभ्यतामें रहते हुए हमारा कितना अद्भुत सौभाग्य है कि हममें रोग, मृत्यु, दरिद्रताकी वृद्धि हो रही है, जीवनाशा प्रतिवर्ष कम होती जाती है और बालकोंके मरनेकी संख्या अत्यन्त हृदयविदारक है। ये उद्विग्न मनसे निकले हुए शब्द नहीं है, इन्हें मैं अपना उत्तरदातृत्व समझते हुए कह रहा हूँ—यतः आप कोई असत्य भ्रमयुक्त विचार यहाँसे न ले जायँ, मैं सरकारकी गणना-रिपोर्टोंसे आपके सन्मुख कुछ गणनायें रखता हूँ।

जीवनयात्राकी भयंकरता।

अब यदि हम अपने बालकोंकी जीवन शक्तिका मुकाबला सभ्य देशोंके बालकोंके साथ करें, तो हमें वास्तविक दशाका ज्ञान हो सकता है। इस संसारमें हम यात्री हैं और यात्रा-स्थान यद्यपि अत्यन्त सुन्दर है पर साथ ही बहुत छोटा है—उसके पूर्व एक अज्ञात अनन्त यात्रा हम कर आये होते हैं और एक अज्ञात अनन्त यात्राकी सम्भावना सामने खड़ी होती है। यह यात्रा इन दो यात्राओंको मिलानेवाला एक पुल है जिसके १०० भाग हैं—उस पुलके नीचे कालकी भयंकर नदी अत्यन्त वेगसे बह रही है। प्रत्येक भागके सफरमें कुछ यात्री रोग निर्बलता क्षुधाके कारण हतोत्साह हो जाते हैं, उनका शरीर थरथराता है और असंख्य लाशोंको बहते देखकर वे भीतात्मा नदीमें गिर जाते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि बली साहसी हृष्टपुष्ट शरीर इस यात्रामें कामयाब हो सकते हैं। निर्बलेन्द्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नरनारी कालके विकराल गालमें पड़कर इस यात्रासे चिरकालके लिए वञ्चित हो जाते हैं। यदि भिन्न देशोंके १०० बालक इस यात्राको एक साथ आरम्भ करें तो हम देखना चाहते हैं कि उनमेंसे कौन बाजी ले जाता है कि उनमेंसे ५० बालक किस आयु तक पहुँचकर कालकी नदीमें गिरेंगे और शेष कितने वीर कामयाबीसे आगे बढ़े चले जावेंगे।

१०० बालक ५० किस आयुमें रह जाते हैं ?

	पुरुष	स्त्री
भारत	१०	१२
बंगाल	८	८॥
पंजाब	९	१०
सं० प्रा०	८॥	९
बम्बई	१०	११¾
मद्रास	१४॥	१९॥
वर्मा	२९	३१

अर्थात् उत्तरीय भारतवर्षमें सिन्धुसे बङ्ग देश और हिमालयसे विन्ध्याचल तक जो विशेष तौर पर आर्योंकी भूमि समझी जाती है उसमें ९ वर्षोंमें ही ५० बालक यमराजकी भेंट हो जाते हैं और जिन देशोंमें आर्योंका कम वास है जैसे बम्बई, मद्रास और वर्मा, वहाँ १०, १४॥ और २९ वर्षोंमें पुरुष आधे होजाते हैं। क्या इस आर्यावर्त्तका यही आर्यत्व है ? क्या यही श्रेष्ठता, सदाचार, पवित्रता, धर्मानुराग, शारीरिक बल और ब्रह्मचर्य है कि सब जातियोंके मुकाबलेमें भारतीय आर्य अधम हो गये है ?

शारीरिक निर्बलता।

हमारे शरीरोंकी शोकजनक निर्बलताका एक अन्य हृदयविदारक उदाहरण भी लीजिए। जहाँ भारतमें सुन्दर बालकोंकी कमी है वहाँ वृद्ध नरनारी भी यहाँ बहुत ही कम दिखाई देते हैं। यदि हम स्वीडन और भारतका मुकाबला करें और देखें कि पुरुषोंमेंसे भिन्न भिन्न आयु पर दोनों देशोंमें कितने नरनारी जीवित हैं तो निम्न चित्र सत्य दशाका प्रकाशक होगा—

स्वीडन और भारतका मुकाबला।

	४५ वर्ष	५५	६५	७५	८५
स्वीडन	६४५	५७०	४५६	२७३	६७
भारत	२५२	१६३	८६	२६	२

अर्थात् ४५ वें वर्षमें एक हजार पुरुषोंमेंसे स्वीडनमें ६४५ और भारतमें केवल २५२ रहते हैं। १०० मेंसे ¾ बालक जीवन-यात्राके संकटोंसे मरचुके होते हैं और शेष रहते हैं उनकी भी शीघ्र मृत्यु होती है।

हमारी भक्ति।

[ले०—पण्डित सुखराम चौबे (गुणाकर)।]

उनमें भक्ति महान, हमारी।
सहज प्रसन्न वदन है जिनका,
तन है तेजनिधान ॥ हमारी० ॥ १ ॥
पुष्ट बलिष्ट साहसी हैं जो,
कर्म-वीर व्रतवान।
सभ्य वेष वर भाव जिन्होंका,
भाषण सुधा-समान ॥ २ ॥
सरल उदार सदय संतोषी,
क्षमाशील सज्ञान।
कहे हुएको पलट न जानें,
जौं लों तनमें प्रान ॥ ३ ॥
मिलें सबोंसे उरसे उर ला,
तजें घृणित अभिमान।
रहे लक्ष्य परहित पर जिनका,
जिन्हें स्व-हित इच्छा न ॥ ४ ॥
भाषा भूमि भूप भगवतके,
सच्चे भक्त जहाँन।
कहे ' गुणाकर ' जिन्हे हृदयसे,
दें सज्जन सम्मान ॥ ५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितं मनोहारि च दुर्लभ वचः ।

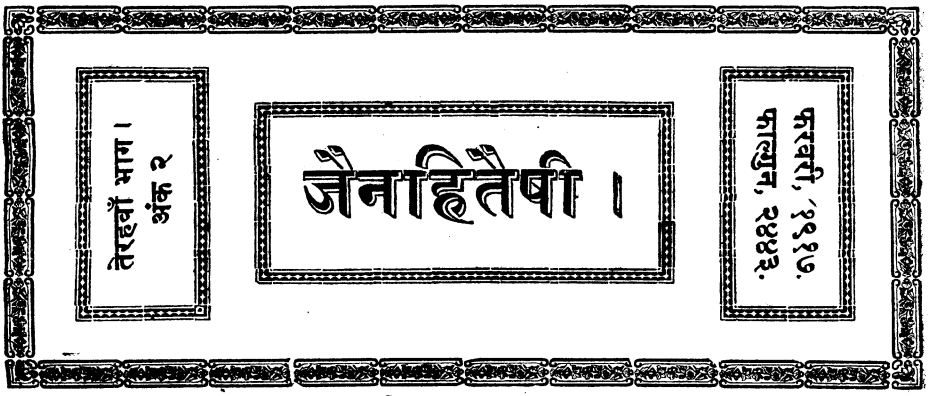

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

भद्रबाहु-संहिता ।

ग्रन्थ-परीक्षा-लेखमालाका चतुर्थ लेख ।

ले० श्रीयुत **बाबू जुगलकिशोरजी** मुख्तार ।

(३)

इस ग्रंथमें निमित्त और ज्योतिष आदि संबंधी फलादेशका जो कुछ वर्णन है यदि उस सब पर बारीकीके साथ-सूक्ष्म-दृष्टिसे-विचार किया जाय और उसे सिद्धान्तसे मीलान करके दिखलाया जाय, तो इसमें संदेह नहीं, कि विरुद्ध कथनोंके ढेरके ढेर लग जायँ । परन्तु जैन-समाज अभी इतने बारीक तथा सूक्ष्म विचारोंको सुनने और समझनेके लिए तैयार नहीं है, और न एक ऐसे ग्रंथके लिए इतना अधिक प्रयास और परिश्रम करनेकी कोई जरूरत है, जो पिछले लेखों द्वारा बहुत स्पष्ट शब्दोंमें विक्रम संवत् १६५७ और १६६५ के मध्यवर्ती समयका बना हुआ ही नहीं बल्कि इधर उधरके प्रकरणोंका एक बेढंगा संग्रह भी सिद्ध किया जा चुका है । इस लिए आज इस लेखमें, फलादेश-सम्बंधी सूक्ष्म विचारोंको छोड़कर, बहुत मोटेरूपसे विरुद्ध कथनोंका दिग्दर्शन कराया जाता है । जिससे और भी जैनियोंकी कुछ थोड़ी बहुत आँखें खुलें, उनका साम्प्रदायिक मोह टूटे और उनकी अँधी श्रधा दूर होकर उनमें सदसद्विवेकवती बुद्धिका विकाश हो सके:—

पूर्वापर विरुद्ध ।

(१) पहले खंडके तीसरे अध्यायमें, दंडके स्वरूपका वर्णन करते हुए, लिखा है कि:—

" हा-मा-धिक्कारभेदश्च वाग्दंडः प्रथमो मतः ।
द्वितीयो धनदंडश्च देहदंडस्तृतीयकः ॥ २४२ ॥
तुरीयो ज्ञातिदंडश्च देयाः कृत्यानुसारतः ।
दोषानुसारतश्चैव चतुर्वर्णेभ्य एव च ॥ २४३ ॥
आसश्रीआदिदेवेन प्रथमो दंड उद्धृतः ।
वासुपूज्यो द्वितीयं च तृतीयं षोडशस्तथा ॥२४४॥
तुरीयं वर्धमानस्तु प्रोक्तवानद्य पंचमे ।
काले दोषानुसारेण दीयंते सर्वभूमिपैः ॥ २४५ ॥

अर्थात्—दंड चार प्रकारका होता है । पहला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाग्दंड, जिसके हा, मा, और धिक्कार ऐसे तीन भेद हैं; दूसरा धनदंड, तीसरा देहदंड (वध-बन्धादिरूप) और चौथा ज्ञातिदंड (जातिच्युतादिरूप) । ये सब दंड अपराधों और कृत्योंके अनुसार चारों ही वर्णोंके लिए प्रयुक्त किये जानेके योग्य हैं । इनमेंसे पहले दंडके प्रणेता भगवान् श्रीआदिनाथ (ऋषभदेव), दूसरेके भगवान् वासुपूज्य, तीसरेके १६ वें तीर्थंकर श्रीशांतिनाथ और चौथे दंडके प्रणेता श्रीवर्धमान स्वामी हुए हैं । आजकल पाँचवें कालमें संपूर्ण राजाओंके द्वारा ये सभी दंड अपराधोंके अनुसार प्रयुक्त किये जाते हैं। इस कथनसे ऐसा सूचित होता है कि, तीसरे कालके अन्तसे प्रारंभ होकर, चतुर्थ कालमें यह चार प्रकारका दंडविधान उपर्युक्त अलग अलग तीर्थंकरोंके द्वारा संसारमें प्रवर्तित हुआ है। परन्तु वास्तवमें ऐसा हुआ या नहीं, यह अभी निर्णयाधीन है और उस पर विचार करनेका इस समय अवसर नहीं है । यहाँ पर मैं सिर्फ इतना बतला देना जरूरी समझता हूँ कि दंडप्रणयन-संबन्धी यह सब कथन ऐतिहासिक दृष्टिसे कुछ सत्य प्रतीत नहीं होता। श्रीगुणभद्राचार्यकृत महापुराण-(उत्तरपुराण) में या उससे पहलेके बने हुए किसी माननीय प्राचीन जैनग्रंथमें भी इसका कोई उल्लेख नहीं है। हाँ, भगवज्जिनसेन प्रणीत आदिपुराणमें इतना कथन जरूर मिलता है कि ऋषभदेवने हा-मा-धिक्कार लक्षणवाला वह वाचिक दंड प्रवर्तित किया था जिसको उनसे पहलेके कुलकर (मनु) जारी कर चुके थे; और इस लिए जो उनके अवतारसे पहले ही भूमंडल पर प्रचलित था। साथ ही, उक्त ग्रंथमें यह भी लिखा हुआ मिलता है कि ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्रवर्तीने वध-बन्धादि लक्षणवाले शारीरिक दंडकी भी योजना की थी *। जिससे पौराणिक दृष्टिकी अपेक्षा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तीसरे शारीरिक दंडका प्रणयन शान्तिनाथसे बहुत पहले प्रायः ऋषभदेवके समयमें ही हो चुका था। यहाँ पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आदिपुराणका यह सब कथन संहिताके 'केवल काल' नामक ३४ × वें अध्यायमें भी पाया जाता है । परन्तु इन सब बातोंको छोड़िए, और संहिताके इस निम्न वाक्य पर ध्यान दीजिए, जिसमें उक्त कथनसे आगे अपराधोंके चार विभाग करके प्रत्येकके दंड विधानका नियम बतलाते हुए लिखा है कि—'व्यवहारमें वाग्दंड, चोरीके काममें धनदंड, बालहत्यादिकमें देहदंड और धर्मके लोपमें ज्ञातिदंडका प्रयोग होना चाहिए ।' यथाः—

" व्यवहारे तु प्रथमो द्वितीयः स्तैन्यकर्मणि ।
तृतीयो बालहत्यादौ धर्मलोपेऽन्तिमः स्मृतः ॥२४७॥

दंडविधानका यह नियम जगत्का शासन करनेके लिए कहाँ तक समुचित और उपयोगी है, इस विचारको छोड़कर, जिस समय हम इस निमयको सामने रखते हुए इसी खंडके अगले दंडविधान-संबंधी अध्यायोंका पाठ करते हैं उस समय मालूम होता है कि ग्रंथकर्ता महाशयने स्थान स्थान पर स्वयं ही इस नियमका उल्लंघन किया है । और इस लिए उनका यह संपूर्ण

---

* यथाः—
'हामाकारौ च दंडोऽन्यैः पंचभिः सम्प्रवर्तितः ।
पंचभिस्तु ततः शेषैर्हामाधिक्कारलक्षणः ॥ ३–२१५ ॥
शारीरं दंडनं चैव वध-बन्धादिलक्षणम् ।
नृणां प्रबलदोषेण भरतेन नियोजितम् ॥—२१६ ॥

+ जिसका एक पद्य इस प्रकार हैः— " हामाधिग्नीतिमार्गोक्तोऽस्य पुत्रो भरतोऽग्रजः । चक्री कुलकरो जातो वध-बन्धादिदंडभृत् ॥ १२० ॥ "

१ इस अध्यायकी शब्दरचनासे मालूम होता है कि वह प्रायः आदिपुराणपरसे उसे देखकर बनाया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दंड-विषयक कथन पूर्वापर-विरोध-दोषसे दूषित है। साथ ही, श्रुतकेवली जैसे विद्वानोंकी कीर्तिको कलंकित करनेवाला है। उदाहरणके तौर पर यहाँ उसके कुछ नमूने दिखलाये जाते हैं:—

" कूपाद्रज्जुं घटं वस्त्रं यो हरेत्तैन्यकर्मणा ।
कशाविंशतिभिस्ताड्यः पुनर्ग्रामाद्विवासयेत्। ७-१२।

इस पद्यमें कुएँ परसे रस्सी, घड़ा तथा वस्त्र चुरानेवालेके लिए २० चाबुकसे ताड़ित करने और फिर ग्रामसे निकाल देनेकी सजा तजवीज की गई है। पाठक सोचें, यह सजा पहले नियमके कितनी विरुद्ध है और साथ ही कितनी अधिक सख्त है! उक्त नियमानुसार चोरीके इस अपराधमें धनदंड (जुर्माना) का विधान होना चाहिए था, देहदंड या निर्वासनका नहीं।

" कुलीनानां नराणां च हरणे बालकन्ययोः ।
तथानुपमरत्नानां चौरो बंदिग्रहं विशेत् ॥ ७-१६ ॥
येन यज्ञोपवीतादिकृते सूत्राणि यो हरेत् ।
संस्कृतानि नृपस्तस्य मासैकं बंधके न्यसेत् ॥ २४ ॥

इन दोनों पद्योंमें चोरके लिए बंदिग्रह (जेलखाना) की सजा बतलाई गई है। पहले पद्यमें यह सजा कुलीन मनुष्यों, बालक-बालिकाओं और उत्तम रत्नोंको चुरानेके अपराधमें तजवीज की गई है। दूसरे पद्यमें लिखा है कि जो यज्ञोपवीत (जनेऊ) आदिके लिए संस्कृत किये हुए सूतके डोरोंको चुराता है, राजाको चाहिए कि उसे एक महीने तक कैदमें रक्खे। चोरीके काममें धनदंडका विधान न करके यह दंड तजवीज करना भी उपयुक्त नियमके विरुद्ध है।

" केशान् ग्रीवां च वृषणं क्रोधाद्गृह्णाति यः शठः ।
दंड्यते स्वर्णनिष्केण प्राणिघातामिलोलुपः।६-२०।
त्वग्भेत्ता तु शतैर्दंड्यः ब्राह्मणोऽसक्प्रच्यावने ।
शतद्वयेन दंड्यः स्यात्तुर्यैर्मासापकर्षकः ॥-२१ ॥

इन दोनों पद्योंमें प्राणिघातकी इच्छासे क्रोधमें आकर दूसरेके केश, गर्दन और अंडकोश पकड़नेवाले व्यक्तिको, तथा त्वचाका भेद करनेवाले, रक्तपात करनेवाले और मांस उखाड़नेवाले ब्राह्मणको शारीरिक दंडका विधान न करके धन दंडका विधान किया गया है। यह भी उपर्युक्त नियमके विरुद्ध है। इसके आगे तीन पद्योंमें, उद्यानको जाते हुए किसी वृक्षकी छाल, दंड, पत्र या पुष्पादिकको तोड़ डालने अथवा नष्ट कर डालनेके अपराधमें धनदंडका विधान न करके **'प्रवास्यो वृक्षभेदकः'** इस पदके द्वारा वृक्ष तोड़ डालनेवालेके लिए देशसे निकाल देनेकी सजा तजवीज की है। यह सजा उपर्युक्त नियमसे कहाँ तक सम्बंध रखती है, इसे पाठक स्वयं विचार सकते हैं।

" वैश्यः शूद्रोऽथवा काष्ठधातुनिर्मित, आसने ।
क्षत्रियद्विजयोर्मोहाद्दर्पाच्चोपविशेत्तदा ॥ ६-१७ ॥
कशाविंशतिभिर्वैश्यः पंचाशद्भिश्च ताड्यते ।
शूद्रः पुनस्तु सता-(?) मासनं कोऽपि न श्रयेत्॥-१८॥
दृष्ट्वा महान्तं यो दर्पान्निष्ठीवति हसेच्च वा ।
चतुर्वर्णेषु यः कश्चिद्दंड्यते दश राजतैः ॥-१९ ॥ "

इन पद्योंमेंसे पहले दो पद्योंमें लिखा है कि 'यदि क्षत्रिय तथा ब्राह्मणके आसन पर कोई वैश्य अथवा शूद्र बैठ जाय तो वैश्यको २० और शूद्रको ५० चाबुककी सजा देनी चाहिए! तीसरे पद्यमें किसी भी वर्णके उस व्यक्तिके लिए धनदंडका विधान किया गया है जो किसी महान् पुरुषको देखकर हँसता है अथवा घृणा-प्रकाश करने रूप थूकता है। उपर्युक्त नियमानुसार इन दोनों प्रकारके कृत्योंके लिए यदि कोई दंडविधान हो सकता था तो वह सिर्फ वाग्दंड था। क्योंकि आसन पर बैठने और हँसने आदि कृत्योंका चोरी आदि अपराधोंमें समावेश नहीं हो सकता। परन्तु यहाँ पर ऐसा विधान नहीं किया गया; इस लिए यह कथन भी पूर्वापर-विरोध-दोषसे दूषित है।'

" क्रूरः सारथिरेव स्याद्युग्यस्था दंडभागिनः ।
भूपः पणशतं लात्वा हानिरीशं च दापयेत्॥ ६-३५।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस पद्यमें, मूर्ख गाड़ीवानके कारण गाड़ीसे किसीको हानि पहुँचने पर, गाड़ीमें बैठे हुए उन स्त्री-पुरुषोंको भी धनदंडका पात्र ठहराया है जो बेचारे उस गाड़ीके स्वामी नहीं है और न जिनको उक्त गाड़ीवानके मूर्ख या कुशल होनेका कोई ज्ञान है। समझमें नहीं आता कि उक्त नियमके अनुसार गाड़ीमें बैठे हुए ऐसे मुसाफिरोंको कौनसे अपराधका अपराधी माना जाय? अस्तु; इस प्रकारके विरुद्ध कथनोंसे इस ग्रंथके कई अध्याय भरे हुए हैं। मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताको इधर उधरसे वाक्योंको उठाकर रखनेमें आगे पीछेके कथनोंका कुछ भी ध्यान नहीं रहा; और इससे उसका यह संपूर्ण दंड-विषयक कथन कुछ अच्छा व्यापक और सिलसिले वार भी नहीं बन सका।

(२) दूसरे खंडके 'उत्पात' नामक १४ वें अध्यायमें लिखा है कि 'यदि बाजे बिना बजाये हुए स्वयं बजने लगें और विकृत रूपको धारण करें तो कहना चाहिए कि **छठे महीने राजा बद्ध होगा** (बंदिगृहमें पड़ेगा) और अनेक प्रकारके भय उत्पन्न होंगे। यथाः—

" अनाहतानि तूर्याणि नदन्ति विकृतिं यथा।
षष्ठे मासे नृपो बद्धो भयानि च तदा दिशेत् ॥१६५॥

परंतु तीसरे खंडके ' ऋषिपुत्रिका ' नामक चौथे अध्यायमें इसी उत्पातका फल **पाँचवें महीने राजाकी मृत्यु होना** लिखा है। यथाः-

" अह णंदितूरसंखा वज्जंति अणाहया विफुट्टंति।
अह पंचमम्मि मासे णरवइमरणं च णायव्वं ॥९३॥ *

इससे साफ प्रगट है कि ये दोनों पद्य पूर्वापर-विरोधको लिये हुए हैं और इस लिए इनका निर्माण किसी केवली द्वारा नहीं हुआ। साथ ही, इससे यह भी सूचित होता है कि ये दोनों पद्य ही नहीं बल्कि संभवतः ये दोनों अध्याय ही भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा रचे गये हैं।

(३) भद्रबाहुसंहिताके ' चंद्रचार ' नामक २३ वें अध्यायमें लिखा है कि ' श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण वर्णका चंद्रमा यथाक्रम अपने वर्णवालेको (क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको) सुखका देनेवाला और विपरीत वर्णके लिए भयकारी होता है। यथाः—

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च कृष्णश्चापि यथाक्रमं ॥
सवर्णे सुखदश्चन्द्रो विपरीतं भयावहः ॥ १६ ॥

परन्तु तीसरे खंडके उसी ' ऋषिपुत्रिका ' नामके चौथे अध्यायमें यह बतलाया है कि 'समानवर्णका चंद्रमा समान वर्णवालेको भय और पीड़ाका देनेवाला होता है ' 'कृष्णचंद्रमा शूद्रोंका विनाश करता है।' यथाः—

" समवण्णो समवण्णं भयं च पीडं तहा णिवेदेहि।
लक्खारसप्पयासो कुणदि भयं सव्वदेसेसु ॥ ३६ ॥
किण्हो सुद्दविणासइ.....चंदो ॥ ३८ ॥

चंद्रफलादेश-सम्बंधी यह कथन पहले कथनके बिल्कुल विरुद्ध है—**वह सुख होना कहता है तो यह दुःख होना बतलाता है**—समझमें नहीं आता कि ऐसी हालतमें कौन बुद्धिमान् इन कथनोंको केवली या श्रुतकेवलीके वाक्य मानेगा? वास्तवमें ऐसे पूर्वापर-विरुद्ध कथन किसी भी केवलीके वचन नहीं हो सकते। अस्तु। ये तो हुए पूर्वापर-विरुद्ध कथनोंके नमूने। अब आगे दूसरे प्रकारके विरुद्ध कथनोंको लीजिए।

मिथ्या क्रियायें।

(४) संहिताके द्वितीय खंड-विषयक अध्याय नं० २७ में लिखा है कि ' **प्रीति** ' और ' **सुप्रीति** ' ये दो क्रियायें पुत्रके जन्म होने पर करनी चाहिए। साथ ही, जन्मसे पहले

---

* संस्कृतच्छायाः—
' अथ नंदितूरशंखा नदन्ति अनाहताः स्फुटंति।
अथ पंचमे मासे नरपतिमरणं च ज्ञातव्यं ॥ ९३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'पुंसवन' और 'सीमन्त' नामकी दूसरी दो क्रियाओंके करनेका भी विधान किया है। यथाः—

" गर्भस्य त्रितये मासे व्यक्ते पुंसवनं भवेत् ।
गर्भे व्यक्ते तृतीये चेच्चतुर्थे मासि कारयेत् ॥ १३९ ॥
अथ षष्ठाष्टमे मासि सीमन्तविधिरुच्यते ।
केशमध्ये तु गर्भिण्याः सीमा सीमन्तमुच्यते ॥१४२॥
पुत्रस्य जन्मसंजातौ प्रीतिसुप्रीतिके क्रिये ।
प्रियोद्भवश्च सोत्साहः कर्तव्यो जातकर्मणि ॥ १४९ ॥

परन्तु भगवज्जिनसेनप्रणीत आदिपुराणमें गर्भाधानसे निर्वाण पर्यंत ५३ क्रियाओंका वर्णन करते हुए, जिनमें उक्त 'पुंसवन' और 'सीमन्त' नामकी क्रियायें नहीं, हैं, लिखा है कि 'प्रीति' क्रिया गर्भसे तीसरे महीने और सुप्रीति क्रिया पाँचवे महीने करनी चाहिए। साथ ही, यह भी लिखा है कि उक्त ५३ क्रियाओंसे भिन्न जो, दूसरे लोगोंकी मानी हुई, गर्भसे मरण तककी क्रियायें हैं वे सम्यक् क्रियायें न होकर मिथ्या क्रियायें समझनी चाहिए। यथाः—

" गर्भाधानात्परं मासे तृतीये संप्रवर्त्तते ।
प्रीतिर्नामि क्रिया प्रीतैर्याऽनुष्ठेया द्विजन्मभिः॥३८-७७
आधानात्पंचमे मासि क्रिया सुप्रीतिरिष्यते ।
या सुप्रीतैः प्रयोक्तव्या परमोपासकव्रतैः ॥—८० ॥
क्रियां गर्भादिका यास्ता निर्वाणान्ताः पुरोदिताः ।
आधानादिस्मशानान्ता न ताः सम्यक्क्रिया
मताः ३९–२५ ॥

इससे साफ जाहिर है कि संहिताका उक्त कथन आदिपुराणके कथनसे विरुद्ध है। और उसकी 'पुंसवन' तथा 'सीमंत' नामकी दोनों क्रियायें भगवज्जिनसेनके वचनानुसार मिथ्या क्रियायें हैं। वास्तवमें ये दोनों क्रियायें हिन्दू धर्मकी क्रियायें (संस्कार) हैं। हिन्दुओंके धर्मग्रंथोंमें इनका विस्तारके साथ वर्णन पाया जाता है। पुंसवन सम्बंधी क्रियाका अभिप्राय उनके यहाँ यह माना जाता है कि इसके कारण गर्भिणीके गर्भसे लड़का पैदा होता है। परन्तु जैन सिद्धान्तके अनुसार, इस प्रकारके संस्कारसे, गर्भमें आई हुई लड़कीका लड़का नहीं बन सकता। इस लिए जैनधर्मसे इस संस्कारका कुछ सम्बंध नहीं है।

दंडमें मुनि-भोजन-विधान।

(५) इस संहिताके प्रथम खंडमें 'प्रायश्चित्त' नामका एक अध्याय है, जिसके दो भाग हैं—पहला पद्यभाग और दूसरा गद्यभाग पद्यभागमें, व्यभिचारका दंड-विधान करते हुए, एक स्थान पर ये चार पद्य दिये हैं:—

"माता मातानुजा ज्येष्ठा लिंगिनी भगिनी स्नुषा ।
चाण्डाली भ्रातृपत्नी च मातुली गोत्रजाथवा ॥ २८ ॥
सकृद्भ्रान्त्याथ दर्पाद्वा सेविता दुर्जनेरिता ।
प्रायश्चित्तोपवासाः स्युस्त्रिंशत्तच्छीर्षमुंडनम् ॥ २९ ॥
तीर्थयात्राश्च पंचैव महाभिषेकपूर्वकम् ॥
कृत्वा नित्यार्चनायाश्च क्षेत्रं घंटां वितीर्य च ॥३०॥
भोजयेन्मुनिमुख्यानां संघं द्विशतसंमितं ।
वस्त्राभरणताम्बूलभोजनैः श्रावकान्भजेत् ॥ ३१ ॥

इन पद्योंमें लिखा है कि यदि एक वार भ्रमसे अथवा जान बूझकर अपनी माता, माताकी छोटी बड़ी बहिन, लिंगिनी (आर्यिकादिक), बहिन, पुत्रवधू, चांडाली, भाईकी स्त्री, मामी अथवा अपने गोत्रकी किसी दूसरी स्त्रीका सेवन हो जाय तो उसके प्रायश्चित्तमें तीस उपवास करने चाहिए, उस स्त्रीका सिर मूँड़ना चाहिए, महाभिषेक पूर्वक पाँच तीर्थयात्रायें करनी चाहिए, नित्यपूजनके लिए भूमि तथा घंटा वितरण करना चाहिए। और यह सब कर चुकनेके बाद, **प्रधान मुनियोंके दोसे संख्या प्रमाण संघको भोजन खिलाना चाहिए।** साथ ही, श्रावकोंको वस्त्राभूषण, ताम्बूल और भोजनसे संतुष्ट करना चाहिए। इस दंडविधानमें, अन्य

१ गर्भवतीके केशोंकी रचना-विशेष माँग उपाड़ना –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बातोंको छोड़कर, दोसो मुनियोंको भोजन करानेकी बात बड़ी ही विलक्षण है। जैनियोंके चरणानुयोग तथा प्राचीन यत्याचार विषयक ग्रंथोंसे इसका जरा भी मेल नहीं है। जिन जैन मुनियोंके विषयमें लिखा है कि वे उद्गमादिक छ्यालीस दोषों तथा ३२ अंतरायोंको टालकर शुद्ध आहार लेते हैं, किसीका निमंत्रण स्वीकार नहीं करते और यह मालूम हो जाने पर, कि भोजन उनके उद्देश्यसे तैयार किया गया है, दातारके घरसे वापिस चले जाते हैं उनके लिए दंड स्वरूपमें प्रस्तुत किया हुआ और खास उन्हींके उद्देश्यसे तैयार किया हुआ इस प्रकारका भोजन कभी विधेय नहीं हो सकता। इस लिए दंडविधानका यह नियम जैनधर्मकी नीतिके विरुद्ध है। साथ ही, इसका अनुष्ठान भी प्रायः अशक्य जान पड़ता है। बहुत संभव है कि इस दंडविधानमें उस समयके भट्टारकोंका, जो अपने आपको मुनिमुख्य मानते थे और जिनका थोड़ा बहुत परिचय इस लेखमें आगे चलकर दिया जायगा, कुछ स्वार्थ छिपा हुआ हो। परन्तु कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि, यह कथन जैनधर्मकी दृष्टिसे विरुद्ध अवश्य है। जैन धर्मके प्रायश्चित्त ग्रंथोंमें **श्रीनन्दनन्द्याचार्य**के शिष्य **गुरुदासाचार्य**का बनाया हुआ 'प्रायश्चित्तसमुच्चय' नामका एक प्राचीन ग्रंथ है। इस ग्रंथकी चूलिकामें उक्त प्रकारके अपराधका प्रायश्चित्त सिर्फ ३२ उपवास प्रमाण लिखा है। यथाः—

"सुतामातृभगिन्यादिचाण्डालीरभिगम्य च।
अश्नुवीतोपवासानां द्वात्रिंशतमसंशयम् ॥ १५० ॥

इससे मालूम होता है कि संहिताके उपर्युक्त दंड-विधानमें उपवासोंको छोड़कर शेष मुंडन, तीर्थयात्रा, महाभिषेक, पूजनके लिए भूम्यादि अर्पण और मुनिभोजनादिका संपूर्ण विधान सिर्फ दो उपवासोंके स्थानमें प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, दंडक्षेत्र विस्तृत करनेके लिए इसमें कुछ अधिकार वृद्धि भी पाई जाती है। पाठक देखें और सोचें कि, यह सब कथन प्रायश्चित्तसमुच्चयके कथनसे कितना असंगत और विरुद्ध है। इस प्रकारका और भी बहुतसा कथन इस अध्यायमें पाया जाता है।

पद्यमें कुछ और गद्यमें कुछ।

(६) साथ ही, इस अध्यायमें कुछ दंडविधान ऐसा भी देखनेमें आता है जो पद्यमें कुछ है तो गद्यमें कुछ और है। अर्थात् एक ही अपराधके लिए दोनों भागोंमें भिन्न भिन्न प्रकारका दंड प्रयोग किया गया है। और जो इस बातको भी सूचित करता है कि ये दोनों भाग किसी एक व्यक्तिके बनाये हुए नहीं हैं। इस प्रकारके कथनोंका एक नमूना इस प्रकार है:—

"गर्वान्मांसं च मद्यं च क्षौद्रं सेवितवानसौ।
एकशः क्षपणं तस्य विंशत्यभ्यधिकं शतम् ॥ २२ ॥
प्रमादादुपवासाः स्युर्विंशतिर्दोषहानये।"

इस डेढ़ पद्यमें गर्वसे मद्य, मांस और मद्य नामक तीन मकारोंके सेवनका प्रायश्चित्त **१२१** उपवास प्रमाण और प्रमादसे उनके सेवनका प्रायश्चित्त सिर्फ २० उपवास प्रमाण लिखा है। अब गद्य भागको देखिए:—

"मकारत्रयसेवितस्य प्रायश्चित्तं क्रियते-उपवासा द्वादश १२, अभिषेकाः पंचाशत् ५०, आहारदानानि पंचशत् ५०, कलशाभिषेक एकः १, पुष्पसहस्रचतुर्विंशतिः २४०००, तीर्थयात्रा द्वे २, गंधं पलचतुष्टयं ४, संघपूजा, गद्याण? त्रय सुवर्ण ३, वीटिका शतमेकं, कायोत्सर्गाश्चतुर्विंशतिः। यदि प्रमादतः मकारत्रयसेविता, उपवासषट्कं ६, एकभक्ताष्टकं, पंचविंशत्याहारदानानि २५, पंचविंशतिरभिषेकाः २५, पुष्पसहस्राणि पंच ५०००, गंधं पलद्वयं २, पूजा द्वादश १२, ताम्बूलवीटक-पंचाशत ५०, कायोत्सर्गा द्वादश १२॥"

यह कथन पहले कथनसे कितना विलक्षण है, इसे बतलानेकी जरूरत नहीं है। पाठक एक नजर डालते ही स्वयं मालूम कर सकते हैं। हाँ **प्रायश्चित्त-समुच्चयका** इस विषयमें क्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विधान है ? यह बतला देना जरूरी है। और वह इस प्रकार है:—

" रेतोमूत्रपुरीषाणि मद्यमांसमधूनि च।
अभक्ष्यं भक्षयेत्षष्ठं दर्पतश्च द्विषट् क्षमाः ॥ १४७॥

इसमें दर्पसे मद्य, मांस और मधुके सेवनका प्रायश्चित्त बारह उपवास प्रमाण बतलाया है और प्रमादसे उनका सेवन होनेमें 'षष्ठ' नामका प्रायश्चित्त तजवीज किया है, जो तीन उपवास प्रमाण होता है।

सबके लिए एक ही दंड।

(७) उक्त 'प्रायश्चित्त' नामके अध्यायमें ब्रह्महत्या, गोहत्या, स्त्रीहत्या, बालहत्या और सामान्य मनुष्यहत्या, इन सब हत्याओंमेंसे प्रत्येक हत्या करनेवालेके लिए एक ही प्रकारका दंड तजवीज किया गया है। यथा:—

'ब्रह्महत्या-गोहत्या-स्त्रीहत्या-बालहत्या-सामान्य-मनुष्यहत्यादि,-करणे प्रायश्चित्तं उपवासाः त्रिंशत् ३०, एकभक्तानि पंचाशत् ५०, कलशाभिषेकौ द्वौ।

परन्तु जैनधर्मकी दृष्टिसे इन सभी अपराधोंके अपराधी एक ही दंडके पात्र नहीं हो सकते। प्रायश्चित्तसमुच्चयकी चूलिकामें भी गोहत्यासे स्त्रीहत्या, स्त्रीहत्यासे बालहत्या, बालहत्यासे श्रावक-हत्या और श्रावकहत्यासे साधुहत्याका प्रायश्चित्त उत्तरोत्तर अधिक बतलाया है। यथा:—

" साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां घातने क्रमात्।
यावद्वादश मासाः स्यात्षष्ठमर्धार्धहानियुक् ॥ ११ ॥+

ऐसी हालतमें संहिताका सबके लिए उपर्युक्त एक ही प्रकारका दंड-विधान करना जैनधर्मकी दृष्टिके अनुकूल प्रतीत नहीं होता।

प्रायश्चित्त या अन्याय।

(८) इसी प्रायश्चित्ताध्यायमें गृहस्थोंके लिए बहुतसा ऐसा दंड-विधान भी पाया जाता है जो आकस्मिक घटनाओंसे होनेवाली मृत्युओंसे सम्बंध रखता है। जैसे साँप बिच्छू आदिसे डसा जाना, व्याघ्र आदिसे भक्षित होना, वृक्ष या मकान परसे गिरजाना, मार्गमें जाते हुए ठोकर खाकर गिर पड़ना, वज्रपातका होना, सींगवाले पशुका सींग लग जाना और स्त्रीके प्रसवका होना आदि। इन सब कारणोंमेंसे किसी भी कारणसे जो आकस्मिक मृत्यु होती है उसके लिए यह दंड-विधान किया गया है:—

" प्रायश्चित्तं—उपवासाः ५, एकभक्तानि विंशतिः २०, कलशाभिषेकद्वयं २, पंचामृताभिषेकाः ५, लघ्वभिषेकाः पंचविंशतिः, आहारदानानि चत्वारिंशत्, गावौ द्वे २, गंधपला १०, पुष्पसहस्र १०००, संघ-पूजा-गद्याण (?) द्वयं, तीर्थयात्रा-कायोत्सर्गाः ६, वीटिका ताम्बूल ५०।"

परन्तु इस दंडका पात्र कौन है ? किसको इसका अनुष्ठान करना होगा ? यह सब यहाँ कुछ भी नहीं बतलाया गया। जो शख्स मर चुका है उसके लिए तो यह दंड-विधान हो नहीं सकता। इस लिए जरूर है कि मृतकके किसी कुटुम्बीके लिए यह सब दंड तजवीज किया गया है। परन्तु उस बेचारेने कोई अपराध नहीं किया और न मृतकका ही इसमें कोई अपराध था। बिना अपराधके दंड देना सरासर अन्याय है। इस लिए कहना पड़ता है कि यह प्रायश्चित्त नहीं बल्कि अन्याय और अधर्म है; श्रुतकेवली जैसे विद्वानोंका यह कर्म नहीं हो सकता। जरूर इसमें किसीका स्वार्थ छिपा हुआ है। गंध, फूल और पानोंके बीड़ों आदिको छोड़कर यहाँ पाठकोंके सन्मुख दो

× इस पद्यमें मुनियों द्वारा ऐसी हत्या हो जाने पर उनके लिए प्रायश्चित्तका विधान किया है। श्रावकोंके लिए इससे कमती प्रायश्चित्त है। परन्तु वह भी उत्तरोत्तर इसी क्रमको लिये हुए है। जैसा कि उक्त चूलिकाके इस पद्यसे प्रगट है:—

" श्रमणच्छेदनं यच्च श्रावकानां तदेव हि।
द्वयोरपि त्रयाणां च षण्णामर्धार्धहानितः ॥ १३७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाय भी उपस्थित हैं। ये भी दंडमें किसीको दान स्वरूप भेंट की जायँगीं । यद्यपि जैनधर्ममें गौ-दानकी कोई महिमा नहीं है और न उसके देनेसे किसी पापकी कोई शांतिका होना माना जाता है । प्रत्युत अनेक जैनग्रंथोंमें इस दानको निषिद्ध जरूर लिखा है *। तो भी **उमास्वामि-श्रावकाचार** जैसे जाली ग्रंथोंमें जिनमंदिरके लिए गौ-दान करनेका विधान जरूर पाया जाता है, जिससे अर्हद्भट्टारकके लिए रोजाना शुद्ध पंचामृत तैयार हो सके *। आश्चर्य नहीं कि ऐसे ही किसी आशयसे प्रेरित होकर, उसकी पूर्तिके लिए, उपर्युक्त दंड-विधानमें तथा इसी ग्रंथके अंतर्गत और भी बहुतसे दंडप्रयोगोंमें गो-दानका विधान किया गया हो। अस्तु इसी प्रकार इस अध्यायमें कुछ दंड-विधान ऐसा भी देखनेम आता है जिसमें '**अपराधी कोई और दंड किसीको**' अथवा '**खता किसीकी सजा किसीको**' इस दुर्नीतिका अनुसरण किया गया है । जैसे आत्महत्या (खुदकुशी) का दंड आत्मघातीके किसी कुटुम्बीको, इत्यादि ।

संकीर्ण हृदयोद्गार ।

(९) अब इस प्रायश्चित्ताध्यायसे दो चार नमूने ऐसे भी दिखलाये जाते हैं, जो जैनधर्मकी उदारनीतिके विरुद्ध हैं । यथाः—

१–" अस्नातान्न स्पृशेत्सर्वान् स्नातानपि च शूद्रकान् ।
कुलालमालिकादिवाकीर्त्तिचक्रिकुविंदकान् ॥ ४५ ॥
२–मातंगश्वपचादीनां छायापतनमात्रतः ।
तदा जलाशयं गत्वा सचेलस्नानमाचरेत् ॥ ५६ ॥
३–उच्छिष्टास्पृश्यकाकादिविण्मूत्रस्पर्शसंशये ।
अस्पृश्यमृष्टसूपादिकटादिस्पर्शने द्विजः ॥ ८२ ॥
४–शुद्धे वारिणि पूर्वोक्तयंत्रमंत्रैः सचेलकः ।
कुर्यात्स्नानत्रयं दंतजिह्वाघर्षणपूर्वकम् ॥ ८३ ॥
५–मिथ्यादृशां गृहे पात्रे भुंक्ते वा शूद्रसद्मनि ।
तदोपवासाः पंच स्युर्जाप्यं तु द्विसहस्रकम् ॥ ८६ ॥

इन पद्योंमेंसे पहले पद्यमें लिखा है कि, चारों वर्णोंमेंसे किसी भी वर्णका–अथवा मनुष्य मात्रमेंसे कोई भी–क्यों न हो यदि उसने स्नान नहीं किया है तो उसे छूना नहीं चाहिए । और शूद्रोंको–कुम्हार, माली, नाई, तेली तथा जुलाहोंको–यदि वे स्नान भी किये हुए हों तो भी नहीं छूना चाहिए । ये सब लोग अस्पृश्य हैं । दूसरे पद्यमें यह बतलाया है कि यदि किसी मातंग-श्वपचादिककी अर्थात् भील, चांडाल, म्लेच्छ, भंगी, और चमार आदिककी छाया भी शरीर पर पड़ जाय तो तुरन्त जलाशयको जाकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिए ! तीसरे और चौथे पद्यमें यहाँ तक आज्ञा की है कि, यदि किसी उच्छिष्ट पदार्थसे, अस्पृश्य मनुष्यादिकसे, काकादिकसे अर्थात् कौआ, कुत्ता, गधा, ऊँट, पालतू सूअर नामके जानवरोंसे और मलमूत्रसे छूजानेका संदेह भी हो जाय अथवा किसी ऐसे छाज-छलनी वगैरहका तथा चटाई-आसनादिकका स्पर्श हो जाय जिसमें कोई अस्पृश्य पदार्थ लगा हुआ हो तो इन दोनों ही अवस्थाओंमें दाँतों तथा जीभको रगड़कर यंत्रमंत्रोंके साथ शुद्धजलमें तीन वार

---

* जैसा कि निम्न वाक्योंसे प्रगट हैः—" यया जीवा हि हन्यन्ते पुच्छशृंगखुरादिभिः ॥ ९–५४ ॥
यस्यां च दुह्यमानायां तर्णकः पीड्यते तरं ।
तां गां वितरता श्रेयो लभ्यते न मनागपि ॥-५५॥"
–इति अमितगत्युपासकाचारः ।

१ यह ग्रंथ परीक्षा द्वारा जाली सिद्ध किया जा चुका है । देखो जैनहितैषी दसवाँ भाग अंक १–२ ।

* यथाः—
"–पुष्पं देयं महाभक्त्या न तु दुष्टजनैर्धृतम् ॥२-१२९॥
पयोर्थं गौ जलार्थं वा कूंप पुष्पसुहेतवे ।
वाटिकां संप्रकुर्वेश्च नाति दोषधरो भवेत् ॥-१३०॥"

१'आदि' शब्दसे श्वान (कुत्ता) आदिका जो ग्रहण किया गया है वह इससे पहलेके " स्पृष्टे विण्मूत्रकाकश्च खरोष्ट्र ग्रामशूकरे 'इस वाक्यके आधारपर किया गया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्रसहित स्नान करना चाहिए!! और पाँचवें पद्यमें इससे भी बढ़कर यह आदेश है कि यदि मिथ्यादृष्टियों अर्थात् अजैनोंके घर पर अपने पात्रोंमें तथा अपने ही घर पर उनके पात्रोंमें भोजन हो जाय अथवा शूद्रके घर पर बैठकर—चाहे वह सम्यग्दृष्टि और व्रतिक जैनी ही क्यों न हो-कुछ खालिया जाय तो इस पापकी शांतिके लिए तुरन्त दो हजार संख्या प्रमाण जाप्यके साथ पाँच उपवास करने चाहिए!!! पाठको, देखा, कैसा धार्मिक उपदेश है! घृणा और द्वेषके भावोंसे कितना अलग है! परोपकारमय जीवन बिताने तथा जगत्का शासन, रक्षण और पालन करनेके लिए कितना अनुकूल है! सार्वजनिक प्रेम और वात्सल्यभाव इससे कितना प्रवाहित होता है। और साथ ही, जैनधर्मके उस उदार उद्देश्यसे इसका कितना सम्बंध है जिसका चित्र जैनग्रंथोंमें, जैनतीर्थंकरोंकी 'समवसरण' नामकी सभाका नकशा खींचकर दिखलाया जाता है!! कहा जाता है कि जैनतीर्थंकरोंकी सभामें ऊँच-नीचके भेदभावको छोड़कर, सब मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी तक भी शामिल होते थे। और वहाँ पहुँचते ही वे आपसमें ऐसे हिलामिल जाते थे कि अपने अपने जातिविरोध तकको भी भुला देते थे। सर्प निर्भय होकर नकुलके पास खेलता था और बिल्ली प्रेमसे चूहेका आलिंगन करती थी। कितना ऊँचा आदर्श और कितना विश्व-प्रेममय-भाव है! कहाँ यह आदर्श? और कहाँ संहिताका उपर्युक्त विधान? इससे स्पष्ट है कि संहिताका यह सब कथन जैनधर्मकी शिक्षा न होकर उससे बहिर्भूत है। जैनतीर्थंकरोंका कदापि ऐसा अनुदार शासन नहीं हो सकता। और न जैनसिद्धान्तोंसे इसका कोई मेल है। इस लिए कहना होगा कि उपर्युक्त प्रकारका संपूर्ण कथन दूसरे धर्मोंसे उधार लेकर रक्खा गया है। और यह किसी ऐसे संकीर्ण हृदय व्यक्तिका हृदयोद्गार है जिसने शुद्धि और अशुद्धिके तत्त्वको ही नहीं समझा *। निःसन्देह जबसे, कुछ महात्माओंकी कृपासे, जैनधर्मके साहित्यमें इस प्रकारके अनुदार विचारोंका प्रवेश हुआ है तबसे जैनधर्मको बहुत बड़ा धक्का पहुँचा है और उसकी सारी प्रगति रुक गई। वास्तवमें ऐसे अनुदार विचारोंके अनुकूल चलनेवाले संसारमें कभी कोई उन्नति नहीं कर सकते और न उच्च तथा महान् बन सकते हैं।

पिण्डदान और तर्पण।

(१०) पहले खंडके 'दायभाग' नामक ९ वें अध्यायमें लिखा है कि 'दायग्रहण और पिंडदानमें दोहिते पोतोंकी बराबर हैं'। साथ ही, दूसरे स्थान पर पुत्रोंका विभाग करते हुए, जैनागमके अनुसार छह प्रकारके पुत्रोंको दाय ग्रहण और पिंडदानके अधिकारी बतलाये हैं। यथाः—

दाये वा पिंडदाने च पौत्रैः दौहित्रकाः समाः॥२५॥
औरसो दत्तको मुख्यौ क्रीतसौतसहोदराः।
तथैवोपनतश्चैव इमे गौणा जिनागमे॥
दायादाः पिंडदाश्चैव इतरे नाधिकारिणः॥ ८४॥

इस कथनसे ग्रंथकर्ताने यह सूचित किया है कि पितरोंके लिए पिंडदानका करना भी जैनियों द्वारा मान्य है और यह जैनधर्मकी क्रिया है। परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। यह सब हिन्दू धर्मकी कल्पना है। हिन्दुओंके यहाँ इस पिंड दानके करनेसे पितरोंकी सद्गति आदि अनेक फल माने गये हैं और उनके लिए वे गया आदिक तीर्थों पर भी पिंड देने जाते हैं। जिसका जैनधर्मसे कुछ सम्बंध नहीं है। जैनसिद्धान्तके अनुसार न तो वह पिंड उन पितरोंको पहुँचता है

* लेखकका विचार है कि **शुद्धि-तत्त्व-मीमांसा** नामका एक विस्तृत लेख लिखा जाय और उसके द्वारा इस विषय पर प्रकाश डाला जाय। अवसर मिलने पर उसके लिए प्रयत्न किया जायगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और न उसके द्वारा उनकी सद्गति आदि कोई दूसरा कल्याण हो सकता है। इस लिए संहिताका यह कथन जैनधर्मके विरुद्ध है। इसी प्रकार कुल-देवताओंका तर्पण-विषयक कथन भी जैन-धर्मके विरुद्ध है, जिसे ग्रंथकर्ताने इसी खंडके पहले अध्यायमें दिया है। यथाः—

" वामहस्तपयःपात्राज्जलमन्नकरांजलौ।
कृत्वान्नममृतीकृत्य तर्पयेत्कुलदेवताः ॥ ९७ ॥
' ॐ ह्रीं ॐ वँ हूँ पयः इदमन्नममृतं भवतु स्वाहा।
अन्नेन घृतसिक्तेन नमस्कारेण वै भुवि।
त्रिस्त्र एवाहुतीर्दद्याद्भोजनादौ तु दक्षिणे ॥ ९८ ॥

यह कथन भोजन-समयका है—भोजनके लिए गोबरका चतुष्कोणादि मंडल बनाकर बैठनेके बादका यह विधान है—इसमें लिखा है ' कि भोजनसे पहले, बायें हाथके जलपात्रसे अंजलिमें जल लेकर और उपर्युक्त मंत्र पढ़कर, अन्नका अमृतीकरण करे। और फिर उस घृतामिश्रित अन्नसे कुल-देवताओंका इस प्रकारसे तर्पण करे कि उस अन्नसे तीन आहुतियें दक्षिणकी ओर पृथ्वी पर छोड़े।' इसके बाद ' आपोऽशनका विधान है। अस्तु; यह सब कथन भी हिन्दूधर्मका कथन है और उन्हींके धर्मग्रंथोंसे लिया गया मालूम होता है। जैनसिद्धान्तके अनुसार तर्पणका अन्नजल पितरों तथा देवताओंको नहीं पहुँच सकता और न उससे उनकी कोई तृप्ति होती है। हिन्दूधर्ममें तर्पणका कैसा सिद्धान्त है? कैसी कैसी विचित्र कल्पनायें हैं? जैनधर्मके सिद्धान्तोंसे उनका कहाँतक मेल है? वे कितनी असंगत और विभिन्न हैं? और किस प्रकारसे कुछ कपट-वेषधारी निर्बल आत्माओंने उन्हें जैनसमाजमें प्रचालित करना चाहा है? इन सब बातोंका कुछ विशेष परिचय पानेके लिए पाठकोंको ' **जिनसेन-त्रिवर्णाचार**' की परीक्षाका लेख देखना चाहिए[१]!

१ यह लेख जैनहितैषीकी १० वें वर्षकी फायलमें छपा है।

दन्तधावनका फल नरक।

(११) संहिताके पहले अध्यायमें, दन्तधावनका वर्णन करते हुए, एक पद्य इस प्रकारसे दिया है:—

" सहस्रांशावनुदिते यः कुर्याद्दन्तधावनम्।
स पापी नरकं याति सर्वजीवदयातिगः ॥ ३८ ॥

इसमें लिखा है कि ' जो मनुष्य सूर्योदयसे पहले दन्तधावन करता है वह पापी है, सर्व जीवोंके प्रति निर्दयी है और नरक जायगा।' परन्तु उसने पापका कौनसा विशेष कार्य किया? कैसे सर्व जीवोंके प्रति उसका निर्दयत्व प्रमाणित हुआ? और जैनधर्मके किस सिद्धान्तके अनुसार उसे नरक जाना होगा? इन सब बातोंका उक्त पद्यसे कुछ भी बोध नहीं होता। आगे पीछेके पद्य भी इस विषयमें मौन हैं और कुछ उत्तर नहीं देते। जैनसिद्धान्तोंको बहुत कुछ टटोला गया। कर्मफिलासोफीका बहुतेरा मथन किया गया। परन्तु ऐसा कोई सिद्धान्त—कर्म प्रवृत्तिका कोई नियम—मेरे देखनेमें नहीं आया जिससे बेचारे प्रातःकाल उठकर दन्तधावन करनेवालेको नरक भेजा जाय। हाँ, इस ढूँढ़ खोजमें, स्मृतिरत्नाकरसे, हिन्दूधर्मका एक वाक्य जरूर मिला है, जिसमें उपवासके दिन दन्तधावन करनेवालेको नरककी कड़ी सजा दी गई है। और इतने पर भी संतोष नहीं किया गया बल्कि उसे चारों युगोंमें व्याघ्रका शिकार भी बनाया गया है। यथाः—

" उपवासदिने राजन् दन्तधावनकृन्नरः।
स घोरं नरकं याति व्याघ्रभक्षश्चतुर्युगम् ॥

—इति नारदः।

बहुत संभव है कि ग्रंथकर्ताने हिन्दूधर्मके किसी ऐसे ही वाक्यका अनुसरण किया हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा जरूरत बिना जरूरत उसे कुछ परिवर्तन करके रक्खा हो। परन्तु कुछ भी हो इसमें संदेह नहीं कि संहिताका उक्त वाक्य सैद्धान्तिक दृष्टिसे जैनधर्मके बिल्कुल विरुद्ध है।

अद्भुत न्याय।

(१२) पहले खंडके तीसरे अध्यायमें एक स्थान पर ये दो पद्य पाये जाते हैं:—

दंडोऽदंड्येषु देयस्तु यशोघ्नो दुरितःकरः।
परत्र नरकं याति दाता भूपः कुटुम्बयुक् ॥ २४८ ॥
अदंड्यदंडनं राजा कुर्वन्दंड्यानदंडयन्।
लोके निन्दामवाप्नोति परत्र नरकं व्रजेत् ॥ २४९ ॥

इन दोनों पद्योंमें निरपराधीको दंड देनेवाले राजाको और दूसरे पद्यमें अपराधीको छोड़ देनेवाले—क्षमा कर देनेवाले—राजाको भी नरकका पात्र ठहराया है। लिखा है कि इस लोकमें उसकी निन्दा होती है—जो प्रायः सत्य है—और मरकर परलोकमें वह नरक गतिको जाता है नरक गतिका यह फर्मान इस विषयका कोई फाइनल आर्डर (अन्तिम फैसला) हो सकता है या नहीं ? अथवा यों कहिए कि वह नियमसे नरक गति जायगा या नहीं ? यह बात अभी विवादास्पद है। जैनसिद्धान्तकी दृष्टिसे यदि किसी निरपराधीको दंड मिल जाय अथवा कोई अपराधी दंडसे छूट जाय या छोड़ दिया जाय तो सिर्फ इतने कृत्यसे ही कोई राजा नरकका पात्र नहीं बन जाता। उसके लिए और भी अनेक बातोंकी जरूरत रहती है। परन्तु मनुका ऐसा विधान जरूर पाया जाता है। यथाः—

" अदंड्यान्दंडयन् राजा दंड्यांश्चैवाप्यदंडयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ ८-१२८ ॥

यह पद्य ऊपरके दूसरे पद्य नं २४९ से बहुत कुछ मिलता जुलता है; और दोनोंका विषय भी एक है। आश्चर्य नहीं कि ऊपरका वह पद्य इसी पद्य परसे बनाया गया हो। परंतु इन सब प्रासंगिक बातोंको छोड़िए, और खास पहले पद्य नं. २४८ के ' **कुटुम्बयुक्** ' पद पर ध्यान दीजिए, जिसका अर्थ होता है कि वह राजा **कुटुम्ब-सहित** नरक जाता है। क्यों ? कुटुम्बियोंने क्या कोई अपराध किया है जिसके लिए उन्हें नरक भेजा जाय ? चाहे उन बेचारोंको राजाके कृत्योंकी खबर तक भी न हो, वे उसके उन कार्योंमें सहायक और अनुमोदक भी न हों और चाहे राजाके उस आचरणको बुरा ही समझते हों; परन्तु फिर भी उन सबको नरक जाना होगा ! यह कहाँका न्याय और इन्साफ है !! जैनधर्मकी कर्मफिलासोफीके अनुसार कुटुम्बका प्रत्येक व्यक्ति अपने ही कृत्योंका उत्तरदायी और अपने ही उपार्जन किये हुए कर्मोंके फलका भोक्ता है। ऐसी हालतमें ऊपरका सिद्धान्त कदापि जैनधर्मका सिद्धान्त नहीं हो सकता। अस्तु; इसी प्रकारका एक कथन दायभाग नामके अध्यायमें भी पाया जाता है। यथाः—

" दत्तं चतुर्विधं द्रव्यं नैव गृह्णंति चोत्तमाः।
अन्यथा सकुटुम्बास्ते प्रयान्ति नरकं ततः ॥ ७१ ॥

इसमें लिखा है कि ' उत्तम पुरुष दिये हुए चार प्रकारके द्रव्यको वापिस नहीं लेते। और यदि ऐसा करते हैं तो वे उसके कारण कुटुम्ब-सहित नरकमें जाते हैं।' ऐसे अटकलपच्चू और अव्यवस्थित वाक्य कदापि केवली या श्रुतकेवली-के वचन नहीं हो सकते। उनके वाक्य बहुत ही जँचे और तुले होने चाहिए। परन्तु ग्रंथकर्ता इन्हें ' **उपासकाध्ययन** ' से उद्धृत करके लिखना बयान करता है, जो द्वादशांगश्रुतका सातवाँ अंग कहलाता है ! पाठक सोचें, कि ग्रंथ-कर्ता महाशय कितने सत्यवक्ता है !

कन्याओं पर आपत्ति।

(१३) दूसरे खंडके ' लक्षण ' नामक ३७ वें अध्यायमें, स्त्रियोंके कुलक्षणोंका वर्णन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए, लिखा है कि ' जिस कन्याका नाम किसी नदी-देवी-कुल-आम्नाय-तीर्थ या वृक्षके नाम पर होवे उसका मुख नहीं देखना चाहिए। यथाः—

" नदीदेवीकुलाम्नायतीर्थवृक्षसुनामतः
एतन्नामा च या कन्या तन्मुखं नावलोकयेत्॥१२०॥"

यह वचन कितना निष्ठुर है ! कितना धर्म शून्य है ! और इसके द्वारा कन्याओं पर कितनी आपत्ति डालनेका आयोजन किया गया है, इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं । समझमें नहीं आता कि किस आधार पर यह आज्ञा प्रचारित की गई है ? और लक्षण-शास्त्रसे इस कथनका क्या सम्बंध है ? क्या पैदा होते समय कन्याके मस्तकादिक किसी अंग विशेष पर उसका कोई नाम खुदा हुआ होता है जिससे अशुभ या शुभ नामके कारण वह भयंकरी समझली जाय ? और लोगोंको उससे अपना मुँह छिपाने, आँखें बन्द करने या उसे कहीं प्रवासित करनेकी जरूरत पैदा हो ? जब ऐसा कुछ भी न होकर स्वयं मातापिताओंके द्वारा अपनी इच्छानुसार कन्याओंका नाम रक्खा जाता है तो फिर उसमें उन बेचारी अबलाओंका क्या दोष है जिससे वे अदर्शनीय और अनवलोकनीय समझी जायँ ? जिन पाठकोंको उस कपटी साधुका उपाख्यान याद है, जिसने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए—अपनी पाशविक इच्छाको पूरा करनेके अभिप्रायसे—एक सर्वांग सुन्दरी कन्याको कुलक्षणा और अदर्शनीया कह कर उसे उसके पिता द्वारा मंजूषेमें बन्द कराकर नदीमें बहाया था, वे इस बातका अनुभव कर सकते हैं कि समय समय पर इस प्रकारके निराधार और निर्हेतुक वचन ऐसे ही स्वार्थसाधुओं द्वारा भूमंडल पर प्रचारित हुए हैं। मनुष्योंको विवेकसे काम लेना चाहिए और किसीके कहने सुनने या धोखेमें नहीं आना चाहिए।

कूटोपदेश और मायाजाल।

(१४) तीसरे खंडके ' प्रतिष्ठा-क्रम ' नामक दूसरे अध्यायमें, गुरुके उपदेशानुसार कार्य करनेका विधान करते हुए, लिखा है कि:—

" यो न मन्येत तद्वाक्यं सो मन्येत न चार्हतम् ।
जैनधर्मबहिर्भूतः प्राप्नुयान्नारकीं गतिं ॥ ८८ ॥ "

अर्थात्—जो गुरुके वचनको नहीं मानता वह अर्हन्तके वचनोंको नहीं मानता । उसे जैनधर्मसे बहिर्भूत समझना चाहिए और वह मरकर नरक गतिको प्राप्त होगा । नरक गतिका यह फर्मान भी बड़ा ही विलक्षण है ! इसके अनुसार जो लोग जैनधर्मसे बहिर्भूत है अर्थात् अजैनी हैं उन सबको नरक जाना पड़ेगा ! साथ ही, जो जैनी हैं और जैनगुरुके—पदवीधारी गुरुके—उलटे सीधे सभी वचनोंको नहीं मानते—किसीको मान लेते हैं और किसीको अमान्य कर देते हैं—उन सबको भी नरक जाना होगा ! कैसा कूटोपदेश है ! स्वार्थ-रक्षाकी कैसी विचित्र युक्ति है ! समाजमें कितनी अन्धश्रद्धा फैलानेवाला है ! धर्मगुरुओं—स्वार्थसाधुओं—कपट वेष धारियोंके अन्याय और अत्याचारका कितना उत्पादक और पोषक है। साथ ही, जैनियोंके तत्त्वार्थसूत्रमें दिये हुए नरकायुके कारण विषयक सूत्रसे—' **बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः** ' इस वाक्यसे—इसका कहाँ तक सम्बंध है? इन सब बातोंको विज्ञ-पाठक विचार सकते हैं । समझमें नहीं आता कि जैनगुरुके किसी वचनको न माननेसे ही किस प्रकार कोई जैनी अर्हन्तके वचनोंको माननेवाला नहीं रहता ? क्या सभी जैनगुरु पूर्णज्ञानी और वीतराग होते हैं ! क्या उनमें कोई स्वार्थसाधु, कपट-वेषधारी, निर्बलात्मा और कदाचारी नहीं होता ? और क्या जिन गुरुओंके कृत्योंकी यह समालोचना (परीक्षा) हो रही है वे जैनगुरु नहीं थे ? यदि ऐसा कोई नियम नहीं है बल्कि वे अल्पज्ञानी, रागी, द्वेषी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि सभी कुछ होते हैं। और जिनके कृत्योंकी यह समालोचना हो रही है वे भी जैनगुरु कह लाते थे तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि जो **गुरुके वचनको नहीं मानता वह अर्हन्तके वचनोंको भी नहीं मानता? और उसे जैनधर्मसे बाहिर्भूत-खारिज-अजैनी समझना चाहिए?** मालूम होता है कि यह सब भोले जीवोंको ठगनेके लिए कपटी साधुओंका मायाजाल है। उनके कार्योंमें कोई बाधा न डाल सके उनकी काली कृतियों पर-उनके अत्याचार-दुराचारों पर-कोई आक्षेप न कर सके और समाजमें उनकी उलटी सीधी सभी बातें प्रचलित हो जायँ, इन्हीं सब बातोंके लिए यह बँध बाँधा गया है। आगे साफ लिख दिया है कि 'तदाज्ञाकारको मर्त्यो न दुष्यति विधौ पुनः'—**गुरुकी आज्ञासे काम करनेवालेको कोई दोष नहीं लगता।** कितना बड़ा आश्वासन है। ऐसे ही मिथ्या आश्वासनके द्वारा जैनसमाजमें मिथ्यात्वका प्रचार हुआ है। अनेक प्रकारकी पूजायें- देवी-देवताओंकी उपासनायें- जारी हुई हैं, जिनका बहुतसा कथन इस ग्रंथमें भी पाया जाता है। इसी प्रतिष्ठाध्यायमें अनेक ऐसे कृत्योंकी सूचना की गई है जो जैनधर्मके विरुद्ध हैं- जैनसिद्धान्तसे जिनका कोई सम्बंध नहीं है -और जिनका सर्व साधारणके सन्मुख स्वतंत्र विवेचन प्रगट किये जानेकी जरूरत है। यहाँ इस अध्यायके सम्बंधमें सिर्फ इतना और बतलाया जाता है कि, इसमें मुनिको- साधारण मुनिको नहीं बल्कि गणि और गच्छाधिपतिको—प्रतिष्ठाका अधिकारी बतलाया है। उसके द्वारा प्रतिष्ठित किये हुए बिम्बादिकके पूजन-सेवनका उपदेश दिया है। और यहाँ तक लिख दिया है कि जो प्रतिष्ठा ऐसे महामुनि द्वारा न हुई हो उसे सम्यक् तथा सातिशयवती प्रतिष्ठा ही न समझनी चाहिए। और इस लिए उक्त प्रतिष्ठामें प्रतिष्ठित हुई मूर्तियाँ अप्रतिष्ठित ही मानीजानी चाहिए। यथा:—

" सामायिकादिसंयुक्तः प्रभुः सूरिर्विचक्षणः।
देशमान्यो राजमान्यः गणी गच्छाधिपो भवेत् ॥९२॥
बिम्बं प्रतिष्ठाभिन्द्रत्वं तेन संस्कारितं भजेत्।
नोचेत्प्रतिष्ठा न भवेत्सम्यक्सातिशयान्विता ॥ ९३ ॥

परन्तु **इन्द्रनन्दि, वसुनन्दि** और **एकसंधि** आदि विद्वानोंने, पूजासारादि ग्रंथोंमें, महाव्रती मुनिके लिए प्रतिष्ठाचार्य होनेका सख्त निषेध किया है। और अणुव्रतीके लिए-चाहे वह स्वदारसंतोषी हो या ब्रह्मचारी-उसका विधान किया है। ऐसी हालतमें, **जैनी लोग कौनसे गुरुकी बात मानें**, यह बड़ी कठिन समस्या है! जिस गुरुकी बातको वे नहीं मानेंगे उसीकी आज्ञा उल्लंघनके पाप द्वारा उन्हें नरक जाना पड़ेगा। इस लिए जैनियोंको सावधान होकर अपने बचनेका कोई उपाय करना चाहिए।

अजैन देवताओंकी पूजा।

(१५) भद्रबाहुसंहिताके तीसरे खंडमें- 'ऋषिपुत्रिका' नामके चौथे अध्यायमें,-देवताओंकी मूर्तियोंके फूटने टूटने आदिरूप उत्पातोंके फलका वर्णन करते हुए, '**अथान्यदेवतोत्पातमाह**' यह वाक्य देकर, लिखा है कि 'भंग होने पर-कुबेरकी प्रतिमा वैश्योंका, स्कंदकी प्रतिमा भोज्योंका, नंदिवृषभ (नादिया बैल) की प्रतिमा कायस्थोंका नाश करती है; इन्द्रकी प्रतिमा युद्धको उपस्थित करती है; कामदेवकी प्रतिमा भोगियोंका, कृष्णकी प्रतिमा सर्व लोकका, अर्हत-सिद्ध तथा बुद्ध देवकी प्रतिमायें साधुओंका नाश करती हैं; कात्यायनी-चंडिका-केशी-कालीकी मूर्तियाँ सर्व स्त्रियोंका, सावैती-दुर्गा-सरस्वती-त्रिपुराकी मूर्तियाँ बालकोंका, वराहीकी मूर्ति हाथियोंका घात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करती है; नागिनीकी मूर्ति स्त्रियोंके गर्भोंका और लक्ष्मी तथा शाकंभरी देवीकी मूर्तियाँ नगरोंका विनाश करती हैं। इसी प्रकार यदि शिवलिंग फूट जाय तो उससे मंत्रीका भेद होता है, उसमेंसे अग्निज्वाला निकलने पर देशका नाश समझना चाहिए; और चर्बी, तेल तथा रुधिरकी धारायें निकलने पर वे किसी प्रधान पुरुषके रोगका कारण होती हैं। यदि इन देवताओंकी भाक्तिभाव पूर्वक पूजा नहीं की जाती है तो ये सभी उत्पात तीन महीनेके भीतर अपना अपना रंग दिखलाते हैं अर्थात् फल देते हैं। ' इस कथनके आदि और अन्तकी दो दो गाथायें नमूनेके तौर पर इस प्रकार हैं:—

" वणियाणं च कुबेरो खंदो भोयाण णासणं कुणदि।
कायत्थाणं वसहो इंदो रण्णं णिवेदेदि ॥ ८२ ॥
भोगवदीण य कामो किण्हो पुण सव्वलोयणासयरो।
अरहंतसिद्धबुद्धा जदीण णासं पकुव्वंति ॥ ८३ ॥
" फुडिदो मंतियभेदं अग्गीजालेण देसणासयरो।
वसतेलरुहिरधारा कुणंति रोगं णरवरस्स ॥ ८७ ॥
मासेहिं तीयेहिं रूवं दंसंति अप्पणो सव्वे।
जदि णवि कीरदि पूजा देवाणं भत्तिरायेण ॥ ८८ ॥

इसके आगे उत्पातोंकी शांतिके लिए उक्त कुबेरादिक देवताओंके पूजनका विधान करते हुए लिखा है कि ' ऐसी उत्पातावस्थामें ये सब देव गंध, माल्य, दीप, धूप और अनेक प्रकारके बलिदानोंसे पूजा किये जाने पर संतुष्ट हो जाते हैं, शांतिको देते हैं और पुष्टिप्रदान करते हैं। ' साथ ही यह भी लिखा है कि, ' चूँ कि **अपमानित देवता मनुष्योंका नाश करते हैं और पूजित देवता उनकी सेवा करते हैं, इस लिए इन देवताओंकी नित्य ही पूजा करना श्रेष्ठ है।** इस पूजाके कारण न तो देवता किसीका नाश करते हैं, न रोगोंको उत्पन्न करते हैं और न किसीको दुःख या संताप देते हैं। बल्कि अति विरुद्ध देवता भी शांत हो जाते हैं। ' यथा:—

" मल्लेहिं गंधधूवेहिं पूजिदा बलिपयारदीवेहिं।
तूसंति तत्थ देवा संतिं पुट्ठिं णिवेदिंति ॥ ८९ ॥
अवमाणिया य णासं करंति तह पूजिदा य पूजंति।
देवाण णिच्चपूजा तम्हा पुण सोहणा भणिया ॥ ९० ॥
णय कुव्वंति विणासं णयरोगं णेव दुक्खसंतावं।
देवावि अइविरुद्धा हवंति पुण पुज्जिदा संता ॥ ९१ ॥

इसके बाद कुछ दूसरे प्रकारके उत्पातोंका वर्णन देकर, सर्व प्रकारके उत्पातोंकी शांतिके लिए अर्हन्त और सिद्धकी पूजाके साथ **हरि-हर ब्रह्मादिक देवोंके पूजनका भी विधान किया है।** साथ ही, ब्राह्मण देवताओंको दक्षिणा देने—सोना, गौ और भूमि प्रदान करने—तथा संपूर्ण ब्राह्मणों और श्रेष्ठ मुनियों आदिको भोजन खिलानेका भी उपदेश दिया है। और अन्तमें लिखा है कि उत्पात-शांतिके लिए यह विधि हमेशा करने योग्य है। यथा:—

" अरहंतसिद्धपूजा कायव्वा सुद्धभत्तीए ॥ ११० ॥
हरिहरविरंचिआईदेवाण य दहियदुद्धण्हवणंपि।
पच्छावलिं च सिरिखंडेण य लेवधूपदीवआदीहिं ॥ १११
जं किंचिवि उप्पादं अण्णं विग्घं च तत्थ णासेइ।
दक्खिणदेज्जसुवण्णं गावी भूमीउ विप्पदेवाणं ॥ ११२ ॥
भुंजावेज्जसुसव्वे बह्मे तवसीलसव्वलोयस्स।
णिस्साव्वय यइ सारय एस विहो सव्वकालस्स ॥ ११३ ॥

इस तरह पर, बहुत स्पष्ट शब्दोंमें, **अजैन देवताओंके पूजनका** यह विधान इस ग्रन्थमें पाया जाता है। और वह भी प्राकृत भाषामें, जिस भाषामें बने हुए ग्रंथको आजकलकी साधारण जैन-जनता कुछ प्राचीन और अधिक महत्त्वका समझा करती है। इस विधानमें सिर्फ उत्पातोंकी शांतिके लिए ही **हरि-हर-ब्रह्मादिक** देवताओंका पूजन करना नहीं बतलाया, बल्कि नित्य पूजन न किये जाने पर कहीं वे देवता अपनेको अपमानित न समझ बैठें और इस लिए कुपित होकर जैनियोंमें अनेक प्रकारके रोग, मरी तथा अन्य उपद्रव खड़े न करदें, इस भयसे उनका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नित्य पूजन करना भी ठहराया गया है। और उसे सुन्दर श्रेष्ठ पूजा—शोभना-पूजा—बयान किया है। आश्चर्य है कि इतने पर भी कुछ जैन विद्वान् इस ग्रंथको जैनग्रन्थ मानते हैं। जैनग्रंथ ही नहीं, बल्कि श्रुतकेवलीका वचन-स्वीकार करते हैं और जैनसमाजमें उसका प्रचार करना चाहते हैं! अन्धी श्रद्धाकी भी हद हो गई!! यहाँ पर मुझे उस मनुष्यकी अवस्था याद आती है जो अपने घरकी चिट्ठीमें किसी कौतुकी द्वारा यह लिखा हुआ देखकर, कि तुम्हारी स्त्री विधवा हो गई है फूट फूट कर रोने लगा था। और लोगोंके बहुत कुछ समझाने बुझाने पर उसने यह उत्तर दिया था कि 'यह तो मैं भी समझता हूँ कि मेरे जीवित रहते हुए मेरी स्त्री विधवा कैसे हो सकती है। परन्तु चिट्ठीमें ऐसा ही लिखा है और जो नौकर उस चिट्ठीको लाया है वह बड़ा विश्वासपात्र है, इस लिए वह जरूर विधवा हो गई है, इसमें कोई संदेह नहीं;' और यह कह कर फिर सिरमें दुहत्थड़ मारकर रोने लगा था। जैनियोंकी हालत भी आज कल कुछ ऐसी ही विचित्र मालूम होती है। किसी ग्रंथमें जैनसिद्धान्त, जैनधर्म और जैननीतिके प्रत्यक्ष विरुद्ध कथनोंको देखते हुए भी, 'यह ग्रंथ हमारे शास्त्र-भंडारसे निकला है और एक प्राचीन जैनाचार्यका उस पर नाम लिखा हुआ है, बस इतने परसे ही, बिना किसी जाँच और परीक्षाके, उस ग्रंथको मानने-मनानेके लिए तैयार हो जाते हैं, उसे साष्टांग प्रणाम करने लगते हैं और उस पर अमल भी शुरू कर देते हैं! यह नहीं सोचते कि जाली ग्रंथ भी हुआ करते हैं, वे शास्त्र-भंडारोंमें भी पहुँच जाया करते हैं और इस लिए हमें 'लकीरके फकीर न बनकर विवेकसे काम लेना चाहिए। पाठक सोचें, इस अंधेरका भी कहीं कुछ ठिकाना है! क्या जैनगुरुओंकी—चाहे वे दिगम्बर हों या श्वेताम्बर—ऐसी आज्ञायें भी जैनियोंके लिए माने जानेके योग्य हैं? क्या इन आज्ञाओंका पालन करनेसे जैनियोंको कोई दोष नहीं लगेगा? क्या उनका श्रद्धान और आचरण बिल्कुल निर्मल ही बना रहेगा? और क्या इनके उल्लंघनसे भी उन्हें नरक जाना होगा? ये सब बातें बड़ी ही चक्करमें डालनेवाली हैं। और इस लिए जैनियोंको बहुत सावधान होनेकी जरूरत हैं। यहाँ पाठकों पर यह भी प्रगट कर देना उचित है कि इस अध्यायके शुरूमें **भद्रबाहु मुनिका** नामोल्लेख पूर्वक यह प्रतिज्ञावाक्य भी दिया हुआ है:—

अह खलु तो रिसिपुत्तियणाम णिमित्तं सूप्पाज्झयणा।
पवक्खइस्सामि सयं सुभद्दबाहू मुणिवरोहं ॥ ३ ॥

इसमें लिखा है कि 'मैं भद्रबाहु मुनिवर निश्चयपूर्वक उत्पादाध्ययन नामके पूर्वसे स्वयं ही इस 'ऋषिपुत्रिका' नामके निमित्ताध्यायका वर्णन करूँगा।' इससे यह सूचित किया गया है कि यह अध्याय खास द्वादशांग वाणीसे निकला हुआ है—उसके 'उत्पाद' नामके एक पूर्वका अंग है—और उसे भद्रबाहु स्वामीने खास अपने आप ही रचा है— अपने किसी शिष्य या चेलेसे भी नहीं बनवाया—और इस लिए वह बड़ी ही पूज्य दृष्टिसे देखे जानेके योग्य है! निःसन्देह ऐसे ऐसे वाक्योंने सर्व साधारणको बहुत बड़े धोखेमे डाला है। यह सब कपटी साधुओंका कृत्य है, जिन्हें कूट बोलते हुए जरा भी लज्जा नहीं आती और जो अपने स्वार्थके सामने दूसरोंके हानि-लाभको कुछ नहीं समझते।

ग्रहादिकदेवता।

(१६) इसी प्रकारसे दूसरे अध्यायोंमें और खास कर तीसरे खंडके 'शांति' नामक दसवें अध्यायमें रोग, मरी, दुर्भिक्ष और उत्पातादिककी शांतिके लिए ग्रह-भूत-पिशाच-योगिनी-यक्षा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिक तथा सर्पादिक और भी बहुतसे देवताओंकी पूजाका विधान किया है, उन्हें शान्तिका कर्त्ता बतलाया हैं और उनसे तरह तरहकी प्रार्थनायें की गई हैं; जिन सबका कथन यहाँ कथन विस्तार भयसे छोडा जाता है। सिर्फ ग्रहोंके पूजन-सम्बंधमें दो श्लोक नमूनेके तौर पर उद्धृत किये जाते हैं जिनमें लिखा है कि 'ग्रहोंका पूजन करनेके बाद उन्हें बलि देनेसे, जिनेंद्रका अभिषेक करनेसे और जैन महामुनियोंके संघको दान देनेसे, नवग्रह तृप्त होते हैं और तृप्त होकर उन लोगों पर अनुग्रह करते हैं जो ग्रहोंसे पीड़ित हैं। साथ ही, अपने किये हुए रोगोंको दूर कर देते हैं। यथाः—

" पूजान्ते बलिदानेन जिनेन्द्राभिषवेण च।
महाश्रमणसंघस्य दानेन विहितेन च ॥ २०९ ॥

नवग्रहास्ते तृप्यंति ग्रहार्तांश्चानुगृह्णते।
शमयंति रोगांस्तान्स्वस्वरथान्स्वात्मनाकृतान् ॥२१०॥

इससे यह सूचित किया गया है कि सूर्यादिक नव देवता अपनी इच्छासे ही लोगोंको कष्ट देते हैं और उनके अंगोंमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं। जब वे पूजन और बलिदानादिकसे संतुष्ट हो जाते हैं तब स्वयं ही अपनी मायाको समेट लेते हैं और इच्छापूर्वक लोगों-पर अनुग्रह करने लगते हैं। दूसरे देवताओंके पूजन सम्बंधमें भी प्रायः इसी प्रकारका भाव व्यक्त किया गया है। इससे मालूम होता है कि **यह सब पूजन विधान जैनसिद्धान्तोंके विरुद्ध है, मिथ्यात्वादिकको पुष्ट करके जैनियोंको उनके आदर्शसे गिरानेवाला है** और, इस लिए कदापि इसे जैनधर्मकी शिक्षा नहीं कह सकते। **स्वामिकार्तिकेय** लिखते हैं कि 'जो मनुष्य ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी और यक्षोंको अपने रक्षक मानता है और इस लिए पूजनादिक द्वारा उनके शरणमें प्राप्त होता है, समझना चाहिए कि वह मूढ़ है और उसके तीव्र मिथ्यात्वका उदय है। यथाः—

" एवं पेच्छंतो विहु गहभूयपिसायजोइणीजक्खं
सरणं भण्णइ मूढो सुगाढमिच्छत्तभावादो ॥ २७ ॥

इसी प्रकारके और भी बहुतसे लेखोंसे, जो दूसरे ग्रंथोंमें पाये जाते हैं, स्पष्ट है कि **यह सब पूजन-विधान जैनधर्मकी शिक्षा न होकर दूसरे धर्मोंसे उधार लिया गया है।**

गुरुमंत्र या गुप्तमंत्र।

(१७) उधार लेनेका एक गुरुमंत्र या गुप्तमंत्र भी इस ग्रंथके अन्तिम अध्यायमें पाया जाता है और वह इस प्रकार हैः—

" शान्तिनाथमनुस्मृत्य येने केन प्रकाशितम्।
दुर्भिक्षमारीशान्त्यर्थं विदध्यात्सुविधानकम् ॥ २२५ ॥

इसमें लिखा है कि 'दुर्भिक्ष और मरी (उपलक्षणसे रोग तथा अन्य उत्पातादिक) की शांतिके लिए जिस किसी भी व्यक्तिने कोई अच्छा विधान प्रकाशित किया हो वह 'शांतिनाथको स्मरण करके—अर्थात् शांतिनाथकी पूजा उसके साथ जोड़ करके—जैनियोंको भी करलेना चाहिए।' इससे साफ तौर पर अजैन विधानोंको जैन बनानेकी खुली आज्ञा और विधि पाई जाती है। इसी मंत्रके आधार पर, मालूम होता है कि, ग्रंथकर्ताने यह सब पूजन-विधान दूसरे धर्मोंसे उधार लेकर यहाँ रक्खा है। शायद इसी मंत्रकी शिक्षासे शिक्षित होकर ही उसने दूसरे बहुतसे प्रकरणोंको भी, जिनका परिचय पहले लेखोंमें दिया गया है, अजैन ग्रंथोंसे उठाकर इस संहितामें शामिल किया हो। और इस तरह पर उन्हें भद्रबाहुके वचन प्रगट करके जैनके कथन बनाया हो। परन्तु कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि, यह मंत्र बहुत बड़े कामका मंत्र है। देखनेमें छोटा मालूम होने पर भी इसका प्रकाश दूर तक फैलता है और यह अनेक बड़े बड़े

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयों पर भी अपना प्रकाश डालता है। इस लिए इसे महामंत्र कहना चाहिए। नहीं मालूम इस महामंत्रके प्रभावसे समय समय पर कितनी कथायें, कितने व्रत, कितने नियम, कितने विधान, कितने स्तोत्र, कितनी प्रार्थनायें, कितने पूजा-पाठ, कितने मंत्र और कितने सिद्धान्त तक जैनसाहित्यमें प्रविष्ट हुए हैं, जिन सबकी जाँच और परीक्षा होनेकी जरूरत है। जाँचसे पाठकोंको मालूम होगा कि संसारमें धर्मोंकी पारस्परिक स्पर्धा और एक दूसरेकी देखा देखी आदि कारणोंसे कितने काम हो जाते हैं और फिर वे कैसे आप्तवाक्यका रूप धारण कर लेते हैं।

शान्ति-विधान और झूठा आश्वासन।

(१८) इस संहिताके तीसरे खंडमें–'शांति' नामक १० वें अध्यायमें–रोग मरी और शत्रुओं आदिकी शांतिके लिए एक शांति-विधानका वर्णन देकर लिखा है कि, 'जो कोई राष्ट्र, देश, पुर, ग्राम, खेट, कर्वट, पत्तन, मठ, घोष, संवाह, वेला, द्रोणमुखादिक तथा घर, सभा, देवमंदिर बावड़ी, नदी, कुआँ और तालाब इस शांतिहोमके साथ स्थापन किये जाते हैं वे सब निश्चयसे उस वक्त तक कायम रहेंगे जब तक कि आकाशमें चंद्रमा स्थित है। अर्थात् वे हमेशाके लिए, अमर हो जायँगे–उनका कभी नाश नहीं होगा। यथाः—

" राष्ट्रदेशपुरग्रामखेटकर्वटपत्तनं।
मठं च घोषसंवाहवेलाद्रोणमुखानि च ॥ ११५ ॥
इत्यादीनां गृहाणां च सभानां देववेश्मनाम्।
वापीकूपतटाकानां सन्नदीनां तथैव च ॥ ११६ ॥
शांतिहोमं पुरस्कृत्य स्थापयेद्धर्ममुत्तमं।
आचंद्रस्थायि तत्सर्वं भवत्येव कृते सति ॥ ११७ ॥

१ शायद इसी लिए ग्रंथकर्त्ताने, अपने अन्तिम वक्तव्यमें, इस संहिताका 'महामंत्रयुता' ऐसा विशेषण दिया हो?

इस कथनमें कितना अधिक आश्वासन और प्रलोभन भरा हुआ है, यह बतलानेकी यहाँ जरूरत नहीं है। परन्तु इतना जरूर कहना होगा कि यह सब कथन निरी गप्पके सिवाय और कुछ भी नहीं है। ऐसा कोई भी विधान नहीं हो सकता जिससे कोई कृत्रिम पदार्थ अपनी अवस्था विशेषमें हमेशाके लिए स्थित रह सके। नहीं मालूम कितने मंदिर, मकान, कुएँ बावड़ी, और नगर-ग्रामादिक इस शांति-विधानके साथ स्थापित हुए होंगे जिनका आज निशान भी नहीं है और जो मौजूद हैं उनका भी एक दिन निशान मिट जायगा। ऐसी हालतमें संहिताका उपर्युक्त कथन बिल्कुल असंभव मालूम होता है और उसके द्वारा लोगोंको व्यर्थका झूठा आश्वासन दिया गया है। श्रुतकेवली जैसे विद्वानोंका कदापि ऐसा निःसार और गौरवशून्य वचन नहीं हो सकता। अस्तु; जिस शांतिविधानका इतना बड़ा माहात्म्य वर्णन किया गया है और जिसके विषयमें लिखा है कि वह **अकालमृत्यु, शत्रु, रोग और अनेक प्रकारकी मरी** तकको दूर कर देनेवाला है उसका परिचय पानेके लिए पाठक जरूर उत्कंठित होंगे। इस लिए यहाँ संक्षेपमें उसका भी वर्णन दिया जाता है। और वह यह है कि 'इस शांतिविधानके मुख्य तीन अंग है–१ शांतिभट्टारकका महाभिषेक २ बलिदान और ३ होम। इन तीनों क्रियाओंके वर्णनमें होममंडप, होमकुंड, वेदी, गंधकुटी और स्नानमंडप आदिके आकार-विस्तार, शोभा-संस्कार तथा रचना विशेषका विस्तृत वर्णन देकर लिखा है कि गंधकुटीमें शांतिभट्टारकका, उसके सामने सरस्वतीका और दाहने बायें यक्ष-यक्षीका स्थापन किया जाय। और फिर, अभिषेकसे पहले, भगवान् शांतिनाथकी पूजा करना ठहराया है। इस पूजनमें जल-चंदनादिकके सिवाय लोटा, दर्पण,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छत्र, पालकी, ध्वजा, चँवर, रकेबी, कलश, व्यंजन, रत्न और स्वर्ण तथा मोतियोंकी मालाओं आदिसे भी पूजा करनेका विधान किया है। अर्थात ये चीजें भी, इस शांतिविधानमें, भगवानको अर्पण करनी चाहिए, ऐसा लिखा है। यथाः—

" भृंगारमुकुरच्छत्रपालिकाध्वजचामरैः ।
घंटैः पंचमहाशब्दकलशव्यंजनाचलैः ॥ ५६ ॥
सद्रंधचूर्णैर्मणिभिः स्वर्णमौक्तिकदामभिः ।
वेणुवीणादिवादित्रैः गीतैर्नृत्यैश्च मंगलैः ॥ ५७ ॥
भगवंतं समभ्यर्च्य शांतिभट्टारकं ततः ।
तत्पादाम्बुरुहोपान्ते शांतिधारां निपातयेत् ॥ ५८ ॥"

ऊपरके तीसरे पद्यमें यह भी बतलाया गया है कि पूजनके बाद शांतिनाथके चरण-कमलोंके निकट शांतिधारा छोड़नी चाहिए। यही इस प्रकरणमें अभिषेकका विधान है जिसको 'महाभिषेक' प्रगट किया है! इस अभिषेकके बाद 'शान्त्यष्टक' को और फिर 'पुण्याहमंत्र' को, जिसे 'शांतिमंत्र भी सूचित किया है और जो केवल आशीर्वादात्मक गद्य है, पढ़नेका विधान करके लिखा है कि 'गुरु प्रसन्नचित्त * होकर भगवान्के स्नानका वह जल (जिसे भगवानके शरीरने छुआ भी नहीं!) उस मनुष्यके ऊपर छिड़के जिसके लिए शांति-विधान किया गया है। साथ ही उस नगर तथा ग्रामके रहनेवाले दूसरे मनुष्यों, हाथी-घोड़ों, गाय-भैंसों, भेड़-बकरियों और ऊँट तथा गधों आदि अन्य प्राणियों पर भी उस जलके छिड़के जानेका विधान किया है।

इसके बाद एक सुन्दर नवयुवकको सफेद वस्त्र तथा पुष्पमालादिकसे सजाकर और उसके मस्तक पर 'सर्वाल्ह' नामके किसी यक्षकी मूर्ति विराजमान करके उसे गाजेबाजेके साथ चौराहों, राजद्वारों, महाद्वारों, देवमंदिरों अनाजके ढेरों या हाथियोंके स्तंभों, स्त्रियोंके निवासस्थानों, अश्वशालाओं, तीर्थों और तालाबों पर घुमाते हुए पाँच वर्णके नैवेद्यसे गंध-पुष्प-अक्षतके साथ जलधारा पूर्वक बलि देनेका विधान किया है। और साथ ही यह भी लिखा है कि पूजन, अभिषेक और बलिदान सम्बंधी यह सब अनुष्ठान दिनमें तीन बार करना चाहिए। इस बलिदानके पहले तीन पद्योंको छोड़कर, जो उस नवयुवककी सजावटसे सम्बंध रखते हैं, शेष पद्य इस प्रकार हैं:—

" कस्यचिच्चारुरूपस्य पुंसः सच्छात्रधारिणः ।
सर्वाल्हयक्षं सोष्णीषे मूर्द्धन्यारोपयेत्ततः ॥ ६९ ॥
तत्सहायो विनिर्गच्छेद्बलिदानाय मंत्रवित् ।
छत्रचामरसत्केतुशंखभेर्यादिसंपदा ॥ ७० ॥
चतुष्पथेषु ग्रामस्य पत्तनस्य पुरस्य च ।
राजद्वारे महाद्वार्षु देवतायतनेषु च ॥ ७१ ॥
स्तम्बेराणां च स्थानेषु तुरंगानां च धामसु ।
बहुसेव्येषु तीर्थेषु चरतां सरसामपि ॥ ७२ ॥
चरुणा पंचवर्णेन गंधपुष्पाक्षतैरपि ।
यथाविधिबलिं दद्याज्जलधारापुरःसरं ॥ ७३ ॥
अनुष्ठितो विधिर्योयं पूर्वाह्णेऽभिषवादिकः ।
मध्याह्ने च प्रदोषे च तं तथैव समाचरेत् ॥ ७४ ॥ "

इसके बाद अर्धरात्रिके समय खूब रोशनी करके, सुगंधित धूप जलाकर और आह्वान पूर्वक शांतिनाथका अनेक बहुमूल्य द्रव्योंसे पूजन तथा वही जलधारा छोड़नेरूप अभिषेक-विधान करके शांतिमंत्रसे होम करना, शान्त्यष्टक पढ़ना और फिर विसर्जन करना बतलाया है। इसके बाद फिर ये पद्य दिये हैं:—

"एवं संध्यात्रये चार्धरात्रौ च दिवसस्य यः ।
जिनस्नानादिहोमान्तो विधिः सम्यगनुष्ठितः ॥१०२॥

---

* गुरुकी प्रसन्नता सम्पादन करनेके लिए इसी अध्यायमें एक स्थान पर लिखा है कि जिस द्रव्यके देनेसे आचार्य प्रसन्नचित्त हो जाय वही उसको देना चाहिए। यथा—

'द्रव्येण येन दत्तेनाचार्यः सुप्रसन्नहृदयः स्यात् ।
महशान्त्यन्ते दद्यात्तत्तस्मै श्रद्धया साध्यः ॥ २१५ ॥ "

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं कृत्स्नमपि सोत्साहो बुधः सप्त दिनानि वा।
यद्वैकविंशतिं कुर्याद्यावदिष्टप्रसिद्धितः॥ १०३॥
साध्यः सप्त गुणोपेतः समस्तगुणशालिनः।
शांतिहोमदिनेष्वेषु सर्वेष्वप्यतिथीन् यतीन्॥ १०४॥
क्षीरेण सर्पिषा दध्ना सूपखंडसितागुडैः।
व्यंजनैर्विविधैर्भक्ष्यैः लड्डुकापूरिकादिभिः॥ १०५॥
स्वादुभिश्चोचमोचाम्रफनसादिफलैरपि।
उपेतं भोजयेन्मृष्टं शुद्धं शाल्यन्नमादरात्॥ १०६॥
क्षान्तिभ्यः श्रावकेभ्यश्च श्राविकाभ्यश्च सादरः।
वितरेदोदनं योग्यं विदद्याच्चाम्बरादिकं॥ १०७॥
कुमारांश्च कुमारीश्च चतुर्विंशतिसम्मितान्।
भोजयेदनुवर्तेत दीनानथजनानपि॥ १०८॥"

इनमें लिखा है कि:—'इस प्रकार तीनों संध्याओं और अर्धरात्रिके समयकी, स्नानसे लेकर होम पर्यंतकी, जो यह विधि कही गई है वह उत्साह पूर्वक **सात दिन तक या २१ दिन तक** अथवा **जब तक साध्यकी सिद्धि न हो तब तक** करनी चाहिए। और **इन संपूर्ण दिवसोंमें** शांति करानेवालेको चाहिए कि अतिथियों तथा मुनियोंको केला आम्रादि अनेक रसीले फलोंके सिवाय दूध, दही, घी, मिठाई तथा लड्डू, पूरी आदि खूब स्वादिष्ट और तर माल खिलावे। मुनि-आर्यिकाओं, श्रावक-श्राविकाओंको चावल वितरण करे तथा वस्त्रादिक देवे। और २४ कुमार-कुमारियोंको जिमानेके बाद दीनों तथा दूसरे मनुष्योंको भी भोजन करावे।' इस तरह पर यह सब शांतिहोमका विधान है जिसकी महिमाका ऊपर उल्लेख किया गया है। विपुल धन-साध्य होने पर भी ग्रंथकर्ताने छोटे छोटे कार्योंके लिए भी इसका प्रयोग करना बतलाया है। बल्कि यहाँ तक लिखा दिया है कि जो कोई भी अशुभ हो नहारका सूचक चिह्न दिखलाई दे उस सबकी शांतिके लिए यह विधान करना चाहिए। यथा:—

"यो यो भूदापको (?) हेतुरशुभस्य भविष्यतः।
शांतिहोममसुं कुर्यात्तत्र तत्र यथाविधि॥ ११४॥

इस शांतिविधानका इतना महत्त्व क्यों वर्णन किया गया? क्यों इसके अनुष्ठानकी इतनी अधिक प्रेरणा की गई? आडम्बरके सिवाय इसमें कोई वास्तविक गुण है भी या कि नहीं? इन सब बातोंको तो ग्रंथकर्ता महाशय या केवली भगवान् ही जानें! परन्तु सहृदय पाठकोंको, इस संपूर्ण कथनसे, इतना जरूर मालूम हो जायगा कि इस विधानमें, जैनधर्मकी शिक्षाके विरुद्ध कथनोंको छोड़कर, कपटी और लोभी गुरुओंकी स्वार्थ-साधनाका बहुत कुछ तत्त्व छिपा हुआ है।

आचार्यपद-प्रतिष्ठा।

(१९) इस ग्रंथके तीसरे खंड सम्बन्धी सातवें अध्यायमें, दीक्षा-लग्नका निरूपण करनेके बाद, आचार्य-पदकी प्रतिष्ठा-विधिका जो वर्णन दिया है उसका सार इस प्रकार है। फुट नोट्समें कुछ पद्योंका नमूना भी दिया जाता है:—

"जिस नगर या ग्राममें आचार्य पदकी प्रतिष्ठा-विधि की जाय वह सिर्फ निर्मल और साफ ही नहीं बल्कि राजाके संघसे भी युक्त होना चाहिए। इस विधानके लिए प्रासुक भूमि पर सौ हाथ परिमाणका एक क्षेत्र मण्डपके लिए ठीक करना चाहिए और उसमें दो वेदी बनानी चाहिये। पहली वेदीमें पाँच रंगोंके चूर्णसे 'गणधर-वलय' नामका मंडल बनाया जाय; और दूसरी वेदीमें शांतिमंडलकी महिमा करके चक्रको नाना प्रकारके घृत-दुग्धादि-मिश्रित भोजनोंसे संतुष्ट किया जाय। संतुष्ट करनेकी यह क्रिया उत्कृष्ट १२ दिन तक जारी रहनी चाहिए। और उस समय तक वहाँ प्रति दिन कोई योगीजन शास्त्र वाँचा करे। साथ ही

१ कायव्वं तत्थ पुणो गणहरवलयस्स पंचवण्णेण।
चुण्णेणय कायव्वं उद्धरणं चाह सोहिल्लं॥
२ दुइजम्मि संति मंडलमाहिमा काऊण पुप्फवूवेहिं।
णाणाविहभक्खेहिं य करिज्जपरिओसियं चक्कं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिषेकादि क्रियाओंका व्याख्यान और अनुष्ठान भी हुआ करे। जिस दिन आचार्य-पदकी प्रतिष्ठा की जाय उस दिन एकान्तमें सारस्वत युक्त आचारांगकी एक बार संघसहित और दूसरी बार, अपने वर्गसहित, पूजा करनी चाहिए। यदि वह मनुष्य (मुनि), जो आचार्य पद पर नियुक्त किया जाय, दूसरे गणधरका शिष्य हो तो उसका केशलोच और आलोचनापूर्वक नामकरण संस्कार भी होना चाहिए। बारह दिन तक दीनोंको दान बाँटा जाय और युवतीजन भक्तिपूर्वक मंगल गीत गावें। आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होनेवाले उस मनुष्यको चाहिए कि बारह दिन तक ऐसा कोई शब्द न कहे जिससे संघमें मत्सर-भाव उत्पन्न हो जाय (काम बन जाने पर पीछेसे भले ही कहले!)। मुनियोंके इस उत्सवमें नाचने-गानेका भी विधान किया गया है, जिसके लिए बारह पुरुषों और उनकी बारह स्त्रियोंको चाहिए कि वे खूब सजधज कर—इंद्र-इंद्राणियोंका रूप बनाकर—और अपने सिरों पर कलशे रखकर भावी आचार्यके सन्मुख नाचें, गावें और पाठ पढ़े। इसके बाद वे सब इंद्र-इंद्राणियाँ मंडलको नमस्कार करें और दक्षिण और्के मंगल द्रव्यको प्राप्त होकर तथा सात धान्योंको छूकर एक मंत्रका जाप्य करें। स्नानके लिए चाँदी-सोनेके रंगके चार कलशे पानी और अनेक ओषधियोंसे भरे हुए होने चाहिए। और चार ही सिंहासन होना चाहिए। सिंहासन सोना, रूपा, ताम्बा, काष्ठ और पाषाण, इनमेंसे चाहे किसी चीजके बने हुए हों सब आचार्य-प्रतिष्ठाके योग्य हैं; बल्कि यदि वे खूब अच्छी तरहसे सजे हुए और जड़ाऊ भी हों तो भी शुद्ध और ग्राह्य हैं। एक सिंहासनके नीचे आठ पँखड़ीका कमल भी चावलोंसे बनाना चाहिए। इसके बाद वह भावी आचार्य, यंत्रकी पूजा-प्रदक्षिणा करके; सिंहासन पर कलश डालकर और अपने गुरुसे पूछकर उस सिंहासन पर बैठे। बैठ जाने पर पूर्वाचार्योंके नाम लेकर स्तुति करे। इसके बाद एक इन्द्र उस आचार्यके सन्मुख बाँचनेके लिए सिद्धान्तादि शास्त्र रक्खे और फिर संपूर्ण संघ उसे वंदना करके इस बातकी घोषणा करे कि **'यह गुरु जिनेंद्रके समान हमारा स्वामी है। धर्मके लिए यह जो कुछ करायगा** (चाहे वह कैसा ही अनुचित कार्य क्यों न हो?) **उसको जो कोई मुनि-आर्यिका या श्रावक नहीं मानेगा वह संघसे बाहिर समझा जायगा।** इस घोषणाके बाद मोतियोंकी माला तथा उत्तम वस्त्रादिकसे शास्त्रकी और गुरुके चरणोंकी पूजा करनी चाहिए।

---

३ वासरबारस जावदु दीणजणाणं च दिज्जए दाणं
गायइ मंगलगीयं जुवइजणो भत्तिराएण ॥

४ जेण वयणेण संघो समच्छरो होइ तं पुणो वयणं।
बारसदिवसं जावदु वज्जियदव्वं अपमत्तेण ॥

५ बारस इंदा रम्मा तावदिया चेव तेसिमवलाओ।
ण्हाणादिसुद्धदेहा रत्तंभरमउडकतसोहा ॥
पुंडिक्खुदंडहत्था इंदाइंदायणीउ सिरकलसा।
आयरियस्स पुरत्था पढंति णाचंति गायंति ॥

६ कलसाइं चारि रूप्पय-हेमय-वण्णाइं तोयभरियाइं।
दिव्वोसहिजुत्ताइं पयण्हवणे होंति इत्थ जोगाइं ॥

७ सीहासणं पसत्थं भम्मारसुरूप्पकट्ठपाहणयं।
आयरियठवणजोगं विसेसदो भूसियं सुद्धं ॥

८ तस्सतले वरपउमं अट्ठदलं सालितंदुलेक्किण्णं।
मज्झे मायापत्ते तलपिंडं चारु सव्वत्थ ॥

९ पच्छा पुज्जिवि जंतं तिय पाहिण देहि सिंहपीठस्स।
कुंभिय पायाणो स गणं परिपुच्छिय विउसउतं पीठे ॥

१० तो वंदिऊण संघो विच्छा किरयाए चारुभावेण।
आघोसदि एस गुरू जिणुव्व अम्हाण सामीय ॥
जं कारदि एस गुरू धम्मत्थं तं जो ण मण्णोदि।
सो सवणो, अज्जा वा सावय वा संघवाहिरओ ॥

११ एवं संघोसित्ता मुत्तामालादिदिव्ववत्थेहिं।
पोत्थयपूयं किच्चा तदोपरं पायपूया य ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे दिन संघके सुखके लिए शांतिविधानपूर्वक (वही विधान जिसका पहले उल्लेख किया है)'महामह' नामका बड़ा पूजन करना चाहिए। इसके बाद बाहरसे आये हुए दूसरे आचार्योंको अपने अपने गणसहित इस नये आचार्यको (मंडलाचार्य या आचार्य चक्रवर्तीको!) वन्दना करके स्वदेशको चले जाना चाहिए। संघके किसी भी व्यक्तिको इस नव प्रतिष्ठित आचार्यकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए और न उससे नाराज ही होना चाहिए (चाहे वह कैसा ही निन्दनीय और नाराजीका काम क्यों न करे!)।" *

पाठक, देखा, कैसा विचित्र विधान है! स्वार्थ-साधनाका कैसा प्रबल अनुष्ठान है! जैन-धर्मकी शिक्षासे इसका कहाँ तक सम्बंध है! जैनमहामुनियोंकी—आरंभ और परिग्रहके त्यागी महाव्रतियोंकी—पैसा तक पास न रखनेवाले तपस्वियोंकी—कैसी मिट्टी पलीद की गई है!! क्या जैनियोंके आचारांग-सूत्रोंमें निर्ग्रंथ साधुओंके लिए ऐसे कृत्योंकी कोई विधि हो सकती है? कभी नहीं। जिन लोगोंको जैनधर्मके स्वरूपका कुछ भी परिचय है और जिन्होंने जैनधर्मके मूलाचार आदि यत्याचार विषयक ग्रंथोंका कुछ अध्ययन किया है वे ऊपरके इस विधि-विधानको देखकर एकदम कह उठेंगे कि 'यह कदापि जैनधर्मके निर्ग्रंथ आचार्योंकी प्रतिष्ठाविधि नहीं हो सकती'—निर्ग्रंथ मुनियोंका इस विधानसे कोई सम्बंध नहीं हो सकता—वास्तवमें यह सब उन महात्माओंकी लीला है जिन्हें हम आज कल आधुनिक भट्टारक, शिथिलाचारी साधु या श्रमणाभास आदि नामोंसे पुकारते हैं। ऐसे लोगोंने समाजमें अपना सिक्का चलानेके लिए, अपनेको तीर्थंकरके तुल्य पूज्य मनानेके लिए और अपनी स्वार्थसाधनाके लिए जैनधर्मकी कीर्तिको बहुत कुछ कलंकित और मलिन किया है; उसके वास्तविक स्वरूपको छिपाकर उस पर मनमाने तरह तरहके रंगोंके खोल चढ़ाये हैं; वही सब खोल बाह्य दृष्टिसे देखनेवाले साधारण जगत्को दिखलाई देते हैं और उन्हींको साधारण जनता जैनधर्मका वास्तविक रूप समझकर धोखा खा रही है। इसी लिए आज जैनसमाजमें भी घोर अंधकार फैला हुआ है, जिसके दूर करनेके लिए सातिशय प्रयत्नकी जरूरत है।

१२ तत्तो विदिए दिवसे महामहं संतिवायणाजुत्तं।
भूयवलिं गहसंति करिज्जए संघसोखत्थं॥
१३ सगसगगणेण जुत्ता,आयरिया जह कमेण वंदित्ता।
लहुवा जंति सदेसं परिकलिय सूरिसूरेण॥
१४ सो पठदि सव्वसत्थं दिक्खा विज्जाइ धम्म वद्दत्थं।
णहु णिंददि णहु रूसदि संघो सव्वो विसव्वत्थ॥

* जिस अध्यायका यह सब कथन है उसके आदि और अन्तमें दोनों ही जगह भद्रबाहुका नाम भी लगा हुआ है। शुरूके पद्यमें यह सूचित किया है कि 'गुप्तिगुप्त' नामके मुनिराजके प्रश्न पर भद्रबाहु स्वामीजीने इस अध्यायका प्रणयन किया है। और अन्तिम पद्यमें लिखा है कि 'इस प्रकार परमार्थके प्ररूपणमें महा तेजस्वी भद्रबाहु जिनके सहायक होते हैं वे धन्य हैं और पूरे पुण्याधिकारी हैं।' यथाः—

"सिरिभद्दबाहुसामिं णमसित्ता गुत्तिगुत्तमुणिणाहिं।
परिपुच्छियं पसत्थं अट्ठं पइट्ठावणं जइणो॥ ३॥
"इय भद्दबाहुसूरी परमत्थपरूवणे महातेओ।
जेसिं होइ समत्थो ते धण्णा पुण्णपुण्णा य॥ ८०॥"

दिगम्बर मुनियों पर कोप।

(२०) तीसरे खंडके इसी सातवें अध्यायमें दो पद्य इस प्रकारसे दिये हैंः—

"भरहे दूसमसमये संघकमं मेल्लिऊण जो मूढो।
परिवट्टइ दिगविरओ सो सवणो संघवाहिरओ॥ ५॥*

* इस पद्यकी संस्कृतटीका इस प्रकार दी हैः— 'भरते दुःषमसमये पंचमकाले संघक्रमं मेलयित्वा यो मूढः परिवर्तते परिभ्रमति चतुर्दिक्षु विरतः विरक्तः सन् दिगम्बरः सन् स्वेच्छया भ्रमति स श्रमणः संघबाह्यः।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

" पासत्थाणं सेवी पासत्थो पंचचेलपरिहीणो ।
विवरीयट्ठपवादी अवंदणिज्जो जई होई ॥ १४ ॥

पहले पद्यमें लिखा है कि ' भरतक्षेत्रका जो कोई मुनि इस दुःषम पंचम कालमें संघके क्रमको मिलाकर दिगम्बर हुआ भ्रमण करता है— अर्थात् यह समझकर कि चतुर्थ कालमें पूर्वजोंकी ऐसी ही दैगम्बरी वृत्ति रही है तदनुसार इस पंचम कालमें प्रवर्तता है—वह मूढ है और उसे संघसे बाहर तथा खारिज समझना चाहिए। और दूसरे पद्यमें यह बतलाया है कि वह यति भी अवंदनीय है जो पंच प्रकारके वस्त्रोंसे रहित है। अर्थात् उस दिगम्बर मुनिको भी अपूज्य ठहराया है जो खाल, छाल, रेशम, ऊन और कपास, इन पाँचों प्रकारके वस्त्रोंसे रहित होता है। इस तरह पर ग्रंथकर्तानें दिगम्बर मुनियों पर अपना कोप प्रगट किया है। मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताको आधुनिक भट्टारकों तथा दूसरे श्रमणाभासोंको तीर्थंकरकी मूर्ति बनाकर या जिनेंद्रके तुल्य मनाकर ही संतोष नहीं हुआ बल्कि उसे दिगम्बर मुनियोंका आस्तित्व भी असह्य तथा कष्टकर मालूम हुआ है और इस लिए उसने दिगम्बर मुनियोंको मूढ़,अपूज्य और संघबाह्य करार देकर उनके प्रति अपनी घृणाका प्रकाश किया है। इतने पर भी दिगम्बर जैनियोंकी अंधश्रद्धा और समझकी बलिहारी है कि वे ऐसे ग्रंथका भी प्रचार करनेके लिए उद्यत होगये! सच है, साम्प्रदायिक मोहकी भी बड़ी ही विचित्र लीला है!!

उपसंहार।

ग्रंथकी ऐसी हालत होते हुए, जिसमें अन्य बातोंको छोड़कर दिगम्बर मुनि भी अपूज्य और संघबाह्य ठहराये गये, यह कहनेमें कोई संकोच नहीं होता कि, यह ग्रंथ किसी दिगम्बर साधुका कृत्य नहीं है। परन्तु श्वेताम्बर साधुओंका भी यह कृत्य मालूम नहीं होता; क्योंकि इसमें बहुतसी बातें हिन्दूधर्मकी ऐसी पाई जाती हैं जिनका श्वेताम्बर धर्मसे भी कोई सम्बंध नहीं है। साथ ही, दूसरे खंडके दूसरे अध्यायमें '**दिग्वासा श्रमणोत्तमः**' इस पदके द्वारा भद्रबाहु श्रुतकेवलीको उत्कृष्ट दिगम्बर साधु बतलाया है। इस लिए कहना पड़ता है कि यह ग्रंथ सिर्फ ऐसे महात्माओंकी करतूत है जो दिगम्बर—श्वेताम्बर कुछ भी न होकर स्वार्थसाधना और ठगविद्याको ही अपना प्रधान धर्म समझते थे। ऐसे लोग दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें हुए हैं। श्वेताम्बरोंके यहाँ भी इस प्रकारके और बहुतसे जाली ग्रंथ पाये जाते हैं, जिन सबकी जाँच, परीक्षा और समालोचना होनेकी जरूरत है। श्वेताम्बर विद्वानोंको इसके लिए खास परिश्रम करना चाहिए; और जैनधर्म पर चढ़े हुए शैवाल (काई) को दूर करके महावीर भगवानका शुद्ध और वास्तविक शासन जगत्के सामने रखना चाहिए। ऐसा किये जाने पर विचार—स्वातंत्र्य फैलेगा। और उससे न सिर्फ जैनियोंकी बल्कि दूसरे लोगोंकी भी साम्प्रदायिक मोह-मुग्धता और अंधी श्रद्धा दूर होकर उनमें सदसद्विवेकवती बुद्धिका निकाश होगा। ऐसे ही सदुद्देश्योंसे प्रेरित होकर यह परीक्षा की गई है। आशा है कि इन परीक्षा-लेखोंसे जैन-अजैन विद्वान् तथा अन्य साधारण जन सभी लाभ उठावेंगे। अन्तमें जैन विद्वानोंसे मेरा निवेदन है कि, यदि सत्यके अनुरोधसे इन लेखोंमें कोई कटुक शब्द लिखा गया हो अथवा अपने पूर्व संस्कारोंके कारण उन्हें वह कटुक मालूम होता हो तो वे कृपया उसे '**अप्रिय पथ्य**' समझ कर या '**सत्यं मनोहारि च दुर्लभं वचः**' इस नीतिका अनुसरण करके क्षमा करें। इत्यलम्।

———

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरठकी जैनपाठशाला
और
प्रो० सेठीका वक्तव्य।

मेरठ छावनीमें एक जैनपाठशाला है। उसकी तीसरे वर्षकी १९१५-१६ की-रिपोर्ट, उपमंत्री बाबू कल्याणदासजी जैनी बी. ए. ने हमारे पास भेजी है। पाठशालामें १४१ विद्यार्थी दर्जरजिस्टर हैं जिनमें ३४ जैन और शेष अजैन हैं। लगभग १२५ विद्यार्थी प्रतिदिन हाजिर रहते हैं। कार्यकर्त्ता-ओंमें जैन और अजैन दोनों हैं। पढ़ाई सरकारी स्कूलोंके अनुसार होती है। जैनधर्मकी शिक्षा विशेष दी जाती है। अजैन विद्यार्थी भी जैनधर्मकी शिक्षा प्राप्त करते हैं। कक्षायें आठ हैं, जिनमें ४ डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी और शेष पाठशालाकी देखरेखमें चलती हैं। अँगरेजीकी मिडिल कक्षा इसी साल खोली गई है। १३) रुपये मासिक डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे, लगभग ४५) रु० मासिक फीससे और शेष ६७) रु० के लगभग मासिक चन्दे आदिसे प्राप्त हो जाता है। इस तरह बहुत ही थोड़े खर्चमें यह एक अच्छी संस्था चल रही है। यदि संस्थाके पास केवल पाँच हजार रुपयेका ही ध्रुवफण्ड हो और सहायता वर्तमानकी अपेक्षा कुछ अधिक मिलने लगे, तो यह हाईस्कूल बना दी जा सकती है, पर निरीक्षकोंकी सम्मतियोंसे मालूम होता है कि जैन भाइयोंका इस ओर बहुत ही कम ध्यान है। और तो क्या मेरठके शिक्षित जैन-वकील-बैरिस्टर आदि भी-इसके कार्यमें हाथ नहीं बँटाते। यदि वे अन्य अजैन महाशयोंके बराबर ही इस ओर ध्यान दें, तो बहुत उन्नति हो सकती है। प्रो० निहालकरणजी सेठीके लिखे अनुसार यह सचमुच ही बड़ी लज्जाकी बात है कि "अजैनोंमें तो इतने उदारचेता हैं कि वे जैनसंस्थाका कार्य करते हैं और स्वयं जैनोंमें इतना भी स्वार्थत्याग नहीं कि अपनी संस्थाकी कभी कभी खबर भी ले लिया करें।" इसे जैनसमाजका बड़ा भारी दुर्भाग्य समझना चाहिए कि उसके अधिकांश लोग तो शिक्षाके महत्त्वको ही नहीं समझते हैं और जो लोग समझते हैं-उच्च श्रेणीकी शिक्षा पाये हुए हैं-वे अपनी शिक्षासे दूसरोंको फायदा नहीं पहुँचाना चाहते-केवल अपने स्वार्थके ही लिए जीते हैं। यह दशा केवल मेरठकी ही नहीं है; सभी जगहके जैन शिक्षित समाज-सेवाके कार्यसे उदासीन दिखलाई देते हैं। यह बड़ी शोचनीय अवस्था है। इसे जितनी जल्दी हो, बदलनी चाहिए।

मेरठकी उक्त संस्था बहुत ही थोड़े खर्चमें बहुत उत्तमतासे चल रही है। यदि अन्यान्य नगरोंमें भी इसी ढंगकी पाठशालायें खोली जायँ, तो बहुत लाभ हो सकता है और ये धीरे धीरे बढ़ती हुई हाईस्कूल बन सकती हैं। इस तरह थोड़े ही समयमें जैनसमाजके कई हाई-स्कूल बन सकेंगे और वह दिन बहुत दूर नहीं रहेगा जब हम एक अच्छा जैन-कालेज स्थापित करनेके लिए समर्थ हो सकेंगे। केवल धर्मशिक्षाके ही लिए पाठशालायें खोलने और उनमें सौ सौ दो दो सौ रुपया मासिक खर्च करनेकी अपेक्षा इस ढंगकी पाठशालायें खोलना-जिनमें साधारण शिक्षाके साथ साथ धर्मशिक्षा भी दी जाय और जैन अजैन सबको लाभ हो-कहीं अच्छा है।

पाठशालाकी रिपोर्टके प्रारंभमें श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस सी. का जो वक्तव्य छपा है, वह बहुत महत्त्वका है। अत एव हम उसके मुख्य भागको यहाँ उद्धृत कर देते हैं और आशा करते हैं कि पाठक उस पर विचार करेंगे:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

" जैनसमाज न मालूम क्यों ऐसी संस्थाओंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता है। जब तक इस दृष्टिमें परिवर्त्तन न होगा तब तक सम्भव नहीं कि इन संस्थाओंमें अलीगढ़के मोहमडन कालिज और लाहौरके वैदिक कालिजकी भाँति बल आसके। कतिपय जैन और अजैन महाशय स्वार्थ त्यागकर, अनेक विघ्न-बाधाओंको सहकर चाहे इनका जीवन अटकाये रहें, किन्तु ये सर्वांग-सुन्दर हृष्ट-पुष्ट कदापि नहीं बन सकतीं।

" यद्यपि समय अब ऐसा नहीं है कि कोई भी मनुष्य चारों ओरकी जागृति और हल-चलको देखकर भी ऐसा कह सके कि इन संस्थाओंसे लाभ ही क्या है; किन्तु सुषुप्त जैनसमाज यदि ऐसा कहे तो कोई आश्चर्य नहीं कि इस उपेक्षाकी दृष्टिसे हमारी कोई हानि नहीं, यदि हम लोग अलीगढ़ और लाहौरके कालिजोंकीसी संस्थायें स्थापित न कर सके तो क्या? हमारा वाणिज्य-व्यवसाय इन संस्थाओंके बिना भी चल सकता है, हमारा धर्म ऐसा है कि बिना इन बातोंके भी हमारी मुक्ति अवश्य हो जायगी, इत्यादि इत्यादि।

" अतः इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। क्या अलीगढ़ और लाहौरसे मुसलमानों और आर्यसमाजियोंको कुछ लाभ नहीं पहुँचा? कौन नहीं जानता कि इन समाजोंका बल दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है? क्या अलीगढ़ कालिजके स्थापित होनेके पहले मुसलमानोंमें जातीयताके ऐसे ही चिह्न विद्यमान थे जैसे कि अब हैं? क्या उस समयमें और इस समयमें कोई अन्तर नहीं है? क्या आर्यसमाजने अपने विद्यालयोंहीके बलसे सहस्रों नवयुवकों और उत्साही वृद्धोंको अपनेमें नहीं मिला लिया है?

" इसके विपरीत जैनसमाजकी इस उपेक्षाका क्या फल हुआ है? जनसंख्या बराबर घटती जा रही है। १४ लाखसे १२ लाख केवल दस वर्षमें होगई है! यदि ऐसी ही दशा रही तो शायद ५०–६० वर्षमें ही यह जाति सदाके लिए लुप्त हो जाय। प्रश्न यह है कि तब इन बड़े बड़े विशाल मंदिरोंमें पूजा करनेवाला कौन बच रहेगा? श्रीजिनभगवानके बिम्बका प्रक्षालन कौन करेगा! कहते दुःख होता है कि इन प्रतिमाओं परसे गर्दा भी कौन झाड़ेगा? हमारा साहित्य बहुत बड़ा है; किन्तु पढ़नेवाला जैनी कौन बचेगा? यह केवल विचार ही नहीं हैं; प्रत्यक्ष इस समय भी हम देख सकते हैं कि सैकड़ों मंदिर ऐसे हैं जहाँ पर धनाढ्योंकी कृपासे नौकर लोग प्रक्षालन किया करते हैं; भक्तिसे पूजन करनेवाला कोई नहीं। ऐसे मन्दिरोंकी संख्या भी कम नहीं है कि जहाँ मनुष्य कदाचित् वर्षमें एक-दो बार ही जाते हों। जिन नगरोंमें सहस्रों जैन निवास करते थे, वहाँ अब इने गिने मनुष्य रहते हैं। क्या कोई कह सकता है कि ऐसी ही दशा भारतवर्षके किसी अन्य समाजकी भी है? क्या इतने पर भी अपने धर्मके प्रेमी सज्जनोंकी आँखें नहीं खुलेंगीं?

" जैनसमाज कोई भूखा समाज नहीं है। बड़े बड़े धनाढ्य इसमें विद्यमान हैं। वाणिज्य-व्यवसाय करनेवाले भी बहुत हैं। फिर क्या कारण है कि वह मृत्युके अधिक अधिक निकट आता जाता है? यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसका एक मात्र कारण यही ज्ञात होगा कि इस समाजने अपने यथार्थ धर्मको छोड़ दिया है। यह बात सुनकर बहुतोंको आश्चर्य होगा; किन्तु वास्तवमें बात यही है। जैनधर्मका मूल सिद्धान्त यही है कि " सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। " यह वाक्य जैनी प्रायः प्रतिदिन ही सुना करते हैं; किन्तु उनके आचरणसे ऐसा जान पड़ता है कि वे इस महामंत्रका अर्थ समझते ही नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'कल्याणका मार्ग वास्तविक ज्ञान, आत्माकी शक्तियोंमें विश्वास और इस ज्ञानके अनुसार आचरण करना है।' यह इसका शब्दार्थ हुआ। किन्तु इसमें जो यह भाव है कि इन तीन बातोंके बिना कल्याण हो ही नहीं सकता, यह कदाचित् लोग जानते ही नहीं। और शायद उन्हें यह भी नहीं मालूम है कि इस कल्याणका अर्थ केवल कर्म-बंधनसे मुक्ति ही नहीं है; किन्तु इसमें ऐहिक और पारलौकिक सभी सुख गर्भित है। कोई भी अच्छी बात इन तीनोंके बिना नहीं हो सकती। यदि यह समझ लिया जाता तो मालूम होता कि ज्ञानका कितना माहात्म्य जैनधर्ममें है। ज्ञानके बिना अन्य दो बातें भी नहीं हो सकतीं। और यह कहनेमें शास्त्रके मतानुसार बिल्कुल अत्युक्ति नहीं है कि अपने जन्म-जन्मान्तर तप और ध्यान करके बिता दीजिए, मंदिर बनवाने और पूजा आदि करनेमें लगे रहिए; किन्तु जब तक ज्ञान नहीं है वह सब तप कुतप, वह ध्यान गर्हित, और वह पूजा केवल ढकोसलेबाजी है। यदि किसी अध्यात्मके ग्रन्थको पढ़िए तो ज्ञात होगा कि ज्ञान ही आत्मा है। ज्ञानका प्राप्त करलेना ही मुक्ति है। जैनसमाज उस ही ज्ञानकी उपेक्षा करता है। फिर कहिए धर्म पालन कहाँ रहा? जिस धर्ममें विद्यादान सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया, उसके ही अनुयायी होकर विद्यालयोंके प्रति उपेक्षादृष्टि!

"यदि इस ज्ञानका प्रसार रहता तो सैकड़ों सहस्रों नवयुवक इस धर्मसे विमुख होकर अन्यधर्मावलंबी न बन जाते और यह ज्ञात रहे कि यह भी संख्याके ह्रासका एक बहुत बड़ा कारण है। यह कहनेसे काम न चलेगा कि इतने स्कूल और कालिज तो हैं। उनमें भी तो जैनबालक पढ़ते ही हैं। प्रथम तो इन स्कूलों और कालिजोंकी संख्या बहुत न्यून है, यहाँ तक कि बहुतसे विद्यार्थियोंको इनमें स्थान ही नहीं मिल सकता। दूसरे यह कि इन संस्थाओंको जैनधर्म और जैनसमाजकी उन्नतिसे क्या प्रयोजन? इनमें पढ़कर मनुष्य और सब बातें तो जान लेगा, किन्तु जैनधर्मसे तो वह अनभिज्ञ ही रहेगा। जैनसमाजकी क्या आवश्यकतायें हैं, इसका ज्ञान तो उसे न होगा। इसके बिना वह जैनसमाजकी क्या उन्नति करेगा? यदि मान भी लिया जाय कि सब कार्य हो सकता है, तब भी क्या जैनसमाजका कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। मान लीजिए कि एक मनुष्यको कोई भला आदमी रोज खानेको दे देता है। तब क्या उसका कर्तव्य नहीं है कि वह स्वयं अपने लिए कमानेका प्रयत्न करे? तब भी मानते कि जैनी इन सार्वजनिक संस्थाओंमें ही जी खोल कर सहायता करते होते, पर सो भी नहीं।

"यह सब लिखनेका साहस इस लिए किया है कि लेखकको जैनियोंकी वर्त्तमान दशा देख कर बहुत दुःख होता है। यदि आपको दुःख न होता हो, तो इन सब बातोंके पढ़नेमें जो कष्ट हुआ है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। यदि आप यही चाहते हों कि जैनियोंका वर्त्तमान दशामें ही रहना उचित है और ज्ञानकी वृद्धि उनके लिए हानिकारक है, तो डर है कि मेरी धृष्टताके लिए आप क्षमा भी प्रदान न करेंगे। किन्तु उस दशामें मुझे यह भी मानना पड़ेगा कि आपकी आंतरिक इच्छा यही है कि जैनसमाजमें एक भी मनुष्य जीवित न रहे और महावीर स्वामीके पवित्र नामको पूज्य दृष्टिसे देखनेवाला एक भी न बच रहे। किन्तु मुझे आशा है कि मेरा डर वृथा ही होगा। उन्नतिके आप चाहे कितने ही विरोधी हों, पर यह कभी नहीं चाह सकते। परन्तु उन्नतिके विरोधी भी आप क्यों होंगे? यदि जरा भी आप विचार करेंगे तो मेरी बातोंकी सत्यता प्रगट हो जायगी और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वही पूज्य महापुरुषोंका रक्त उबल पड़ेगा। यदि और कुछ नहीं तो ज्ञानके प्रसारको तो आप अपना एक आवश्यक कर्म समझने लगेंगे; आवश्यकता है तनिक निष्पक्ष विचारकी।

"कुछ ऐसे ही विचारोंकी परिणामस्वरूपा यह जैनपाठशाला है। इसके संचालकोंका सदा यही प्रयत्न रहा है कि इसके द्वारा बालकोंको समाज और धर्मके प्रति अपना कर्त्तव्य ज्ञात हो सके। अतः लौकिक विद्याओंके अतिरिक्त यहाँ पर धर्मशिक्षा भी सब छात्रोंको दी जाती है। यहाँ तक कि इसमें विधर्मीय बालक भी जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंको पढ़ते और सीखते हैं। जिस तिस प्रकार प्रयत्न करके तीन वर्षमें इस पाठशालामें मिडिल यानी ८ वीं कक्षा खोल दी गई है। और पढ़ाई सब सरकारी मदरसोंके समान होती है, धर्मशिक्षा विशेष है।

"कालिजोंके स्थापनसे पहले हाईस्कूलोंका स्थापन ही आवश्यक है और जहाँ तक हमें ज्ञात है, अभी तक जैनसमाजका कोई हाईस्कूल नहीं है। 'इस पाठशालाको बहुत सुगमतासे हाईस्कूलमें परिणत कर सकते हैं' ऐसा बहुतसे निरीक्षकोंने भी कहा है। अतः अब इस बातका प्रयत्न है कि शीघ्र ही इसमें मैट्रिक तककी कक्षायें खोल दी जावें।"

स्नान।

[ले०, बाबू श्यामलालजी जैन।]

स्नान करनेसे शरीर पवित्र हो जाता है अत एव स्नान करना चाहिए। वास्तवमें स्नान क्या वस्तु है और इसका करना कहाँ तक लाभदायक है, उसीका विचार इस लेखमें किया जायगा। स्नान कैसे करना चाहिए, इसका दिग्दर्शन कराना ही इस लेखका उद्देश्य है।

स्नान करनेके पश्चात् खुरखुरे कपड़ेसे शरीर मल कर साफ करनेसे बड़ा लाभ होता है। क्योंकि, ऐसा करनेसे शरीरमें चर्मज रोग पैदा नहीं होते। साधारणतया हम लोग भोजन करनेके पहले ११ या १२ बजे तक स्नान करते हैं। यह ठीक है। कुछ लोग बिल्कुल तड़के और कुछ लोग सूर्यके निकलनेके पहले ही स्नान कर लिया करते हैं। यह भी अच्छा है, किन्तु कोमलप्रकृतिके और दुर्बल मनुष्योंको तड़केका स्नान लाभदायक नहीं है। ऐसा करनेसे अनेक समय उन्हें हानि पहुँच जाया करती है। जहाँ शीतज्वरकी बीमारी ज्यादा होती है वहाँके रहने वालेको भी तड़केके स्नानसे बचना चाहिए। तड़के स्नान करनेमें एक और भी असुविधा है। वह यह कि काम करनेके पीछे स्नान न करनेसे मन और शरीर साफ नहीं मालूम पड़ता। यदि फिर एक दफा स्नान किया जाय तो दो बारका स्नान करना भी कई बार सह्य नहीं होता। इस कारण एक बार ही स्नान करना ठीक है।

अधिक ठंडे और अधिक गर्म पानीसे भी स्नान न करना चाहिए। ऐसा करनेसे शरीरकी शक्ति कम हो जाती है और दुर्बलता आ जाती है। ताजा पानी स्नानके लिए सबसे उत्तम है। नदीमें स्नान करनेसे बड़े लाभ हैं, किन्तु कमजोर आदमियोंको नहीं। उन्हें नदीमें स्नान न करना चाहिए, बल्कि अपने घर पर ही ताजे अथवा गुनगुने पानीसे स्नान करलेना चाहिए। नदीके अभावमें किसी बड़े जलाशयमें भी स्नान करना लाभदायक है। बहुत देर तक स्नान न करना चाहिए। क्यों कि, पानीमें अधिक समय तक रहनेसे सर्दी लग जाती है। इससे ज्वर और खाँसी पैदा होकर शरीर दुर्बल हो जाता है। ठंडी और तेज हवा चलते समय जाड़ेके दिनोंमें बंद घरमें स्नान करना चाहिए। ऐसा न करनेसे शरीरमें अनेक पीड़ाओंके हो जानेका डर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्नानके-विषयकी और भी कई बातें जान लेना आवश्यक है। बहुतोंका विश्वास है कि स्नान करना ही न चाहिए अथवा कभी कभी बहुत दिनोंके बाद करना चाहिए। वैज्ञानिकोंका कहना है कि चमड़ा हमारे मांसके पट्ठों और भीतरी यंत्रका आवरण है। बाहरी ठंड और गर्मीसे शरीरकी रक्षा चर्म द्वारा ही की जा सकती है। यही उसका प्रधान उपाय है। इस लिए चर्मशक्तिका नाश न होने देना चाहिए। इसके नाश होनेसे सारा शरीर रोगग्रस्त हो सकता है। स्नान करनेसे चर्मकी क्षमता नष्ट हो जानेका भय है, अत एव स्नान न करना चाहिए। रही सफाईकी बात सो अन्य उपायों द्वारा शरीर साफ रक्खा जा सकता हैं। हमारे देशके बंगालवासी कविराज स्नान करनेके बहुत विरुद्ध हैं। वे रोगीको स्नान करनेकी आज्ञा बड़ी कठिनाईसे देते हैं। कुछ कविराज तो स्वयं भी स्नान नहीं करते। पर स्नान करनेसे अपकार होता है, यह बात अभी तक सिद्धि नहीं हुई।

हम लोग ग्रीष्म-प्रधान देशमें रहते हैं। यहाँ स्नान करना अच्छा मालूम होता है। हमारे विचारमें यहाँ स्नान न करनेमें अनेक बुराइयाँ पैदा हो सकती हैं। स्नान न करनेसे अनेक बीमारियाँ पैदा होने का डर है। परंतु तो भी दुर्बल मनुष्योंको जो हाल ही रोगसे उठे हों, अधिक स्नान न करना चाहिए। ऐसे आदमियों-को चाहिए कि वे अपने स्नान करने अथवा न करनेके विषयमें किसी वैद्यसे निश्चय करा लेवें।

स्नानके विरुद्ध वैज्ञानिक और भी अनेक बातें कहते हैं। उनका कहना है कि हमारा चर्म बिजली और तापसे हमारे शरीरकी रक्षा करता है। क्योंकि चर्म बिजलीके तेज और तापको परिचालित नहीं होने देता। पानी बिजलीका परिचालक है, इस लिए पानी लगनेसे शरीरकी बिजलीसे रक्षा करनेकी क्षमता घट जाती है और इस प्रकार शरीरमें रहनेवाली बिजलीकी क्षमताका क्षय होता है। हमारी समझमें वैज्ञा-निकोंका सबके विषयमें यह कहना भूल है। क्योंकि हमने देखा है कि तन्दुरुस्त आदमीको स्नानसे कोई हानि नहीं पहुँचती। यदि पहुँचती भी होगी तो इतनी कम कि उसको हानि कहना ही मूर्खता है। हाँ, कमजोर आदमियोंको अधिक हानि पहुँच सकती है।

हमारे चर्मके नीचे छोटी छोटी ग्रंथियाँ हैं। उनमेंसे तैलकी भाँति एक चिकना पदार्थ निकल कर चर्मको चिकना रखता है। चर्मके चिकने रहनेसे ही शरीरके तापकी रक्षा होती है। यह चिकनाहट ही शरीरके तापकी रक्षा करता है। स्नान द्वारा इस क्षमताको नष्ट करनेसे शरीर गिरने लगता है और शरीरको ठंड मालूम होने लगती है। तैल मल कर स्नान करनेसे यह असुविधा बहुत कुछ दूर हो जाती है। इस लिए दैनिक स्नान करनेवालोंको तैलकी मालिश अवश्य करना चाहिए।

अनेक आदमी जल-वायु बदलनेके लिए समुद्र किनारेके नगरोंमें चले जाते हैं और समु-द्रमें स्नान किया करते हैं। समुद्रमें स्नान करने-से शरीर बलिष्ठ होता है और आराम मिलता है। इसका कारण यह है कि समुद्रके पानीमें बिजलीका तेज (Majnetic power) बहुत ज्यादा होता है। इस लिए समुद्रका पानी शरी-रको हानि न पहुँचा कर लाभ पहुँचाता है। गंगा और जमना नदीके पानीमें भी यही गुण है। प्रातःकाल ८ बजेसे १० बजे तक समुद्रमें स्नान करना चाहिए। समुद्रमें अधिक तैरना अथवा पानीमें रहना अच्छा नहीं है। ऐसा करनेसे स्नान करनेका फायदा नष्ट हो जाता है और शरीर कमजोर हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत तड़के स्नान करना सबके लिए अच्छा नहीं है। उससे सर्दी लग जाने और खाँसी हो जानेका डर रहता है। स्नान करनेका समय सबसे अच्छा ९ बजेसे १२ बजे तकका है।

आज-कल साबुन आदिका व्यवहार बहुत बढ़ गया है। हमारी समझमें स्नान करते समय उसका व्यवहार अच्छा नहीं। क्योंकि, उससे फायदा तो कुछ नहीं, उलटा नुकसान है। कारण, साबुनसे शरीरका ताप नष्ट हो जाता है। इस लिए सर्दी लग जानेका डर रहता है। तौलियासे शरीरको साफ करना ही अच्छा है। स्नान करनेके पश्चात् सूखे कपड़ेसे शरीरको ढक लेना बहुत लाभदायक है। इसी कारण हमारे देशके अधिकांश मनुष्य स्नानके पीछे आधी धोती ओढ़ लेते हैं। स्नान करनेसे शरीरका जो तेज उत्तेजित होता है, कपड़ेसे ढके जाने पर वह रक्षित हो जाता है। नहीं तो, ठंड लग जानेसे सर्दी हो जानेका संशय रहता है।

अनुरोध।

[ले०, श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय।]

(१)

आलस्य-सरमें व्यर्थ गिरकर दुःखको सहिए नहीं,
निजमूल मन्त्रोंको खलोंसे भूलकर कहिए नहीं।
अपने भरोसे कार्यका आरम्भ दृढ़ हो कीजिए,
निज देशका उद्धार कर जगमें सुयशको लीजिए॥
प्रणसे न अपने स्वप्नमें भी भीत हो हट जाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(२)

निज भीरुताको दूरकर दृढ़ता बढ़ाते जाइए,
निज उच्चताको और भी ऊँचे चढ़ाते जाइए।
निज रूपको पहिचानिए पर-पंचमें फँसिए नहीं,
परदेशको गुरु मानकर निज देशको हँसिए नहीं॥
निज पूर्वजोंके कीर्ति-कड़खे एक स्वरसे गाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(३)

जो दुर्गुणोंसे हैं भरे उनकी नकल मत कीजिए,
वे बक मरें पर ध्यान उनकी बात पर मत दीजिए।
परसे कभी अपना भला होता नहीं, सच मानिए,
जो आपके हैं बस उन्हें अपना हितैषी जानिए॥
वर विज्ञ होकर चापलूसोंसे न धोखा खाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(४)

जिससे समुन्नत देश हो उस मन्त्रको पढ़िए सदा,
चलकर कभी रुकिए नहीं कुछ साम्हने बढ़िए सदा।
जिस भाँति हो अपने चरितको गौरवान्वित कीजिए,
जगमें यशःसम्भूत-अमृतको सुखी हो पीजिए॥
गुणवान् होकरके स्वयं गुण औरको सिखलाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(५)

समझे हुएको और समझाना वृथा है, है सही,
पर क्या दिनेश्वरको दिवसमें दीप दिखलाते नहीं।
सन्ताप सहते हैं सुजन सन्तप्त जीवोंके लिए,
रखता सदा है छाँहमें तरु आश्रितोंको देखिए॥
निज शीश दुखियोंके लिए कुछ और दुःख उठाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(६)

गिरिए न मतके गर्तमें, डरिए नहीं संसारमें,
लोहा चबाना ही पड़ेगा, देशके उपकारमें।
है मृत्यु ही उसकी भली जिसका यहाँ अपयश हुआ,
सरवस उसीका खोगया जो मोहसे परवश हुआ॥
होकर कनौड़े आप ही अपना न नाम हँसाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(७)

दुष्कर्म करके जो स्वयं परको सिखाते धर्म है,
उनकी न चर्चा कीजिए, उनको नहीं कुछ शर्म है।
मनमें, वचनमें, कर्ममें मत भेद पड़ने दीजिए,
निज काज करिए, द्रोहियोंको खेद करने दीजिए॥
पढ़ नीति, प्रीति, प्रतीति अपनी आप और बढ़ाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(८)

हो जाव तत्पर और सत्वर फूट-घटको फोड़ दो,
निज बान्धवोंके कण्ठसे अपने गलेको जोड़ दो।
अति स्वार्थ-रत दुखदायियोंसे शीघ्र नाता तोड़ दो,
अति हानिकर हैं शीघ्र मादक वस्तुओंको छोड़ दो॥
कुछ काम दिखलाए बिना लम्बी न बात बनाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(९)

जो मन कहे, कहिए उसे, कहिए जिसे, करिए उसे,
है जन्म-भूका ऋण उचित भरना अभी भरिए उसे।
कुछ हाथ पैर हिलाइए क्या लाभ है बकवादसे,
ऋषि-वंश हो डरिए सदा संसारके अपवादसे॥
दुस्संगमें पड़ कर वृथा मत देशको बहकाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(१०)

क्या थे, हुए क्या, सोचिए हम कौन हैं तुम कौन हो?
कर्तव्य क्या है मानवोंका बोलिए क्यों मौन हो?
जैसे बने अपनी प्रतिष्ठाको बना रखिए सदा,
अपमान-कारक कर्मसे मनको मना रखिए सदा॥
निज स्वत्वके शुभ तत्त्वको सबके लिए समझाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(११)

क्या कोकिलोंसे बक भले हैं तनिक भी तो सोचिए,
क्या रंगमें रक्खा हुआ है कुछ कभी तो सोचिए।
तुमको नहीं क्या ज्ञान है अपने परायेका अभी,
जिनको न तत्त्व-ज्ञान हो कृतकार्य क्यों वे हों कभी॥
निज देशको पर-फेशनोंके जालमें न फँसाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(१२)

जिनमें बनी है एकता गणना उन्हींकी है यहाँ,
दुख, दैन्य फैले क्यों नहीं अति फूट फैली हो जहाँ।
अन्यायसे निज टेक पर मरिए न, अब भी मानिए
निज हाथ चौपट देशको करिए न, अब भी मानिए॥
लड़कर परस्परमें नहीं द्वेषाग्निको भड़काइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(१३)

सद्वंश हो तो हंसहीकी चालसे चलिए सदा,
पर गृध्रकी गतिसे न चलकर हाथको मलिए सदा।
बनिए विवेकी, देखिए नय-दृष्टिसे कुछ तो भला,
निज हाथ कुत्तोंके लिए मत काटिए अपना गला॥
पर वर्गके सुखके लिए निज वर्गको न सताइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(१४)

गिरते रहें यदि वारि-कण तो सर कभी भर जायगा,
उड़ते रहें यदि वारि कणतो सूख भी सर जायगा।
जो आपके हैं नित्य वे जा मिल रहे हैं औरसे,
सत्ता न अपनी जाय मिट रहिए सदा उस तौरसे॥
जिस भाँति हो उस भाँति ही सबको सदा अपनाइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

(१५)

बन ब्रह्मचारी आप नित संयम नियमको कीजिए,
पुरुषार्थ अपनेमें अलौकिक युक्तिसे भर लीजिए।
फिर क्षेत्रमें भी कार्यके ऐसे उतरिए प्रीतिसे,
ठोकर न पैरोंमें लगे यों कार्य करिए नीतिसे॥
अति धीरतासे सिद्धि मिलती है, नहीं घबराइए।
हे कर्मवीरो! धर्मसे निज कर्मको दिखलाइए॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन-भारतकी गति ।

[लेखक,—बाबू भगवानदासजी केला ।]

भारतवर्षमें ईसाईयों तथा इतर अल्पसंख्यक जातियोंको छोड़ प्रधानतया दो जातियाँ निवास करती हैं—हिन्दू और मुसलमान । इनमेंसे मुसलमानोंकी आभ्यंतरिक स्थितिका हमें विशेष बोध नहीं; परन्तु यह निर्विवाद है कि हिन्दू जातिकी दशा बड़ी विलक्षण है । इसके जनसमुदायमें अनेक मतोंका प्रचार है और जब ये लोग भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी होनेके कारण अपने तईं पृथक् जातिका समझने लगते हैं अथवा कुछ ऐसी कार्यप्रणाली अंगीकार कर लेते हैं, जिससे दूसरे आदमी इनके भिन्न जातिके होनेका अनुमान करने लगते हैं, तो हिन्दू-शरीरमें एक रोमाञ्चकारी घटना हो जाती है, हिन्दू जातिके उन्नतिके पथमें एक कदम पीछे हटनेकी सम्भावना होती है, और दर्शकोंके लिए एक कौतुक खड़ा हो जाता है । इस लिए बड़ी आवश्यकता है कि हिन्दू जातिके अंतर्गत भिन्न भिन्न धर्म्मावलम्बी समाजोंके विचार-प्रवाह और कार्य्यशैली पर अच्छी तरह ध्यान रक्खा जाय ।

आज हमें जैनसमाज पर ही एक दृष्टि डालना अभीष्ट है । इसमें संदेह नहीं कि इस समाजके द्वारा भारतका बहुत उपकार हुआ है, और इसकी महिमाके गीत सुदूर देशोंमें गाये गये हैं । जैन-फिलासफीने विदेशी जिज्ञासुओंका ध्यान ज्ञानवृद्ध भारतकी ओर आकर्षित किया है । जैनमंदिरोंकी कला और चित्रकारीने यहाँकी भवन-निर्माणविद्याके संरक्षणमें हाथ बँटाया है तथा इनके अहिंसा धर्मकी विजय-घोषणा मांसाहारी भू-खंड भी कान लगाकर सुन रहा है ।

साथ ही यह भी संतोषकी बात है कि जैनसमाज अपनी प्राचीन महत्ताके आधार पर ही अपना अस्तित्व नहीं रखता । उसने समयानुकूल सुधार और उन्नतिका यथेष्ट स्वागत करना भी स्वीकार कर लिया है तभी तो स्थान स्थान पर जैन-औषधालय, जैन-विद्यालय, जैन-छात्रालय, जैन-पुस्तकालय, अनाथालय आदि संस्थाओंके खुलनेके सुसमाचार मिलते रहते हैं । यह ठीक है कि अभी बहुत काम करना शेष है और उद्योगकी बहुत आवश्यकता पड़ेगी—तीर्थोंके झगड़े, श्वेताम्बरी दिगम्बरियोंके वाद-विवाद, सट्टेका जोर शोर आदि अनेक अनिष्टकारी शत्रुओंसे विकट संग्राम लड़ना पड़ेगा, परन्तु जब एक बार हिम्मत करके अखाड़ेमें आन उतरे हैं तो धीरे धीरे सफलता अवश्य होगी और हो भी रही है ।

इस प्रकारके प्रगतिकालमें बहुत सावधान रहनेकी अवश्यकता है, ऐसा न हो कि उतावलेपनसे चलनेमें हम कोई ऐसा मार्ग पकड़ लें कि फिर उलटे पाँवों लौटना पड़े । यह बहुत विचारणीय विषय है । अपनी अल्प योग्यतानुसार जो बात हमे खटकती है उसे बड़े विनीत भावसे निवेदन किये देते हैं । हमने बहुत कुछ सुना है और थोड़ा बहुत देखा भी है कि जैन भाइयोंकी दृष्टि-सीमा साधारणतया संकुचित हो गई है और जैन-क्षेत्रसे बाहरकी दुनियाकी ओर वे बहुत कम ध्यान देते हैं । निस्संदेह ऐसा कहते समय हम उन महानुभावोंकी शुभ नामावली नहीं भूलते जिनके सार्वजनिक कार्य भारत-सन्तानोंके लिए आदर्श रूप हो गये हैं ।

जैसे स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द रायचन्दकी ओरसे प्रतिवर्ष कलकत्ता यूनीवर्सिटीके किसी एक छात्रको मिलनेवाली दस हजार रुपयेकी वृत्ति, सर वसनजी त्रीकमजी जे. पी. का बम्बईके सायन्स इन्स्टिटचूटको दिया हुआ तीन लाख रुपयेका दान, स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचन्दजीकी 'हीराबाग' नामकी आदर्श धर्मशाला, व्याख्यान-मन्दिर और औषधालय,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जबलपुरके सिंगई भोलानाथ कस्तूरचन्दजीका वहाँके हितकारिणी हाईस्कूलको दिया हुआ २५ हजार रुपयोंका दान आदि। परन्तु बुरा माननेकी बात नहीं; पाठक तनिक विचार देखें, कि उपर्युक्त कार्य जैन-भारतकी रिपोर्टमें कितना स्थान घेरते हैं। निदान सत्यके नाते यह मानना ही पड़ेगा कि जैन बन्धुओंका भारतके सार्वजनिक कामोंमें बहुत थोड़ा—प्रायः नहींके बराबर—भाग है। वे यदि उन्नतिके स्वप्न देखते हैं तो केवल जैन-समाजके भीतर और उन्नति करना चाहते हैं तो जैन क्षेत्रके अन्दर। मानों, वे एक ऐसी चार दीवारीमें सुरक्षित विराजमान हैं, जिसमें बाहरकी वायु प्रवेश ही नहीं कर पायगी और उसकी सुगंध या दुर्गन्धकी पहुँच ही उन तक न होगी। जैनभाई समझते हैं कि बाहरके सुधार बिगाड़से उनका कुछ बनता बिगड़ता नहीं। उन्हें तीन लोकसे न्यारी केवल अपनी ही जैन 'मथुरा' की चिन्ता है। कैसी दयाजनक स्थिति है कि यदि ये महाशय किसी कर्मवीर या देशभक्तको अभिमान करने योग्य समझ सकते हैं, तो वह जैन ही होना चाहिए। हिन्दू जातिमें अन्य अनेक प्रशंसा पात्रोंका होना न होना इनके लिए बराबर है। केवल धार्मिक बातोंमें ही नहीं, अन्य विषयोंमें भी ये अपनेको सबसे अलग रखना चाहते हैं। यदि ये काव्यों या नाटकोंके आनन्दामृतका पान करना चाहते हैं तो कालीदास, भवभूति प्रभृतिके प्रकृति-प्रेमियोंके द्वार इनके लिए बंद हैं। क्यो? बस इसी लिए कि उन्होंने जैनधर्मकी दीक्षा नहीं ली थी। इसी प्रकार यदि ये महाशय वैद्यकशास्त्र अध्ययन करना चाहेंगे, तो सम्भवतः चरक-सुश्रुतके ग्रन्थ तो 'जैन नहीं' की छाप होनेसे इनके पाठ्यक्रममें ही स्थान न पावेंगे। सुनते हैं इनकी संस्थाओंमें इतिहास तो पढ़ाया ही नहीं जाता है। क्योंकि जैनइतिहास अभी तक कोई लिखा ही नहीं गया। जब ऐसे ऐसे कामोंमें ही इनकी उदारता इस प्रकार सीमाबद्ध होने लगी है, तब अन्य स्वार्थ-त्यागके कामोंमें वह कितना स्थान पायेगी, इस बातकी कल्पना पाठक ही करलें।

जैन भाइयो! अपने आदर्श, विचार, शिक्षा और उदारताको यों संकुचित रखनेसे कब तक गुजारा होगा? सुनते नहीं यह बीसवीं शताब्दि जोरोंसे कह रही है—"उठो, सुधरो, नहीं तो तुम्हारा कल्याण नहीं!! जैनभारत, सोच समझ और देख तेरी गति किधरको है! तेरा धर्म एक स्वतंत्र धर्म है, तो क्या वह तुझे हिन्दू शरीरके साथ हिल-मिलकर कार्य सम्पादन करनेका निषेध करता है? नहीं—होशमें आ, निद्रा त्याग और अपने उत्तरदायित्वको पहिचान।"

पतितोंकी पुकार।

[ले०, बाबू मोतीलालजी जैन बी. ए.।]

निशि-दिन हम क्या यों दुःख पाते रहेंगे?
हत दिवस हमारे क्या कभी भी फिरेंगे?
यह दुख हमसे तो यों सहा है न जाता,
अहह! यह हमारा है कलेजा जलाता॥ १॥

क्षण क्षण कटता है आपदामें हमारा,
अतिशय बहती है नेत्रसे वारिधारा।
निशि-दिवस हमें तो काटने दौड़ते हैं,
बस हम अपनी तो मृत्यु ही चाहते हैं॥ २॥

नर अधम हमारे तुल्य कोई न होगा,
पद-दलित भला यों धूलि-सा कौन होगा?
हम सब अपनी जो वेदनायें सुना दें,
हम सच कहते हैं पत्थरोंको रुला दें॥ ३॥

कुछ सुख हमने तो जन्म लेके न पाया,
बहु दुख हमने है व्यग्र हो हो उठाया।
प्रति पल हमको है हो रहा कष्ट भारी,
अब कुगति भला क्या और होगी हमारी!॥४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लघुतर हमसे है दृष्टि कोई न आता,
बढ़कर हमसे है श्वान भी मान पाता।
मनुज-तन हमें हा! क्या मिला है वृथा ही!
गति पलट गई है कालकी सर्वथा ही?॥ ५॥
सकल जगत सूना-सा हमें है दिखाता,
निज प्रिय हमको है दृष्टि कोई न आता।
न तनिक हमको है प्रेम आशा किसीसे,
कल हृदय हमारा है न पाता इसीसे॥ ६॥
रज-सम हमको जो तुच्छ ही जानते हैं,
बहुविध अपनेको उच्च जो मानते हैं।
विनय उन कुलीनोंसे यही है हमारी:
अतिशय उनकी है नीति अन्यायकारी॥ ७॥
अब ग्रसित दुखोंसे देश क्यों है हमारा?
अब न बह रही क्यों शान्ति-पीयूष-धारा?
अब निज धनकी क्यों वृद्धि होती नहीं है?
असफल पतितोंकी आह होती कहीं है?॥ ८॥
बस अब प्रभुसे है प्रार्थना यों हमारी,
कुमति इन कुलीनोंकी हटे भ्रान्तिकारी।
तज मद जिससे ये बन्धुको बन्धु मानें,
पर-हित-रत हो ये प्रेमकी रीति जानें॥ ९॥
बस सुधि अब भी जो ये हमारी न लेंगे,
कर पतित जनोंके जो नहीं ये गहेंगे।
हम दुखित जनोंकी आहकी अग्नि द्वारा,
अहह! जल उठेगा शीघ्र ही देश सारा॥१०॥

('सरस्वती' से उद्धृत।)

पुस्तक-परिचय।

१ **विज्ञप्तित्रिवेणिः**। सम्पादक, मुनि जिनविजयजी। प्रकाशक, जैनआत्मानन्द सभा, भावनगर। आकार डिमाई अठपेजी। पृष्ठसंख्या १५०। कपड़ेकी जिल्द। मूल्य एक रुपया। श्वेताम्बर जैनसम्प्रदायमें पर्युषण (पजूसण) पर्वके अन्तमें क्षमावनीके पत्र लिखनेका विशेष प्रचार है। पूर्वकालमें भी पता लगता है कि क्षमावनीके पत्र लिखनेकी पद्धति थी; परन्तु आजकलकी अपेक्षा उसका रूप कुछ और ही था। उस समय एक नगरके संघकी ओरसे दूसरे परिचित नगरोंके संघोंको, धर्मात्मा श्रावकोंकी ओरसे साधुओंको और साधुओंकी ओरसे प्रधान आचार्योंको क्षमावनीके पत्र भेजे जाते थे। और वे 'विज्ञप्तिपत्र' के नामसे अभिहित होते थे। ये पत्र जन्मपत्रियोंके समान बहुत लम्बे होते थे, यहाँ तक कि कोई कोई साठ साठ फुटके होते थे। आचार्य मुनिसुन्दरके तो एक ऐसे विज्ञप्तिपत्रका उल्लेख मिलता है, जो १०८ हाथ लम्बा था! ये पत्र तरह तरहके बेलबूटों और चित्रोंसे सजाये जाते थे। संस्कृत प्राकृत तथा देशभाषाके गद्य तथा पद्योंमें बड़े परिश्रमसे इनकी रचना होती थी। इनमें जहाँको पत्र भेजा जाता था उस नगरकी शोभा, आचार्य-गुणोंका कीर्तन, श्रावकोंके सौभाग्यकी प्रशंसा, पर्युषणपर्वमें किये गये धर्मकृत्योंका उल्लेख, सांवत्सरिक क्षमापन आदिका आलङ्कारिक भाषामें विस्तृत वर्णन रहता था। श्रावकों और संघोंके पत्रोंकी अपेक्षा मुनियों या साधुओंके लिखे हुए पत्र बहुत महत्त्वके होते थे। उनमेंसे किसी किसीके पत्र तो एक प्रकारके स्वतंत्र ग्रन्थोंके समान होते थे। मालूम होता है कि इस प्रकारके पत्रोंके लिखनेका प्रचार प्राचीन समयमें भी था। पर अभी तक जो सबसे प्राचीन विज्ञप्तिपत्र मिला है वह विक्रम की १३ वीं शताब्दिके मध्यका लिखा हुआ है जिसे चन्द्रकुलके आचार्य भानुचन्द्रके पास बड़ौदा नगरसे प्रभाचन्द्र गणिने भेजा था। उपाध्याय विनयविजयका 'इन्दुदूत' नामका काव्य भी एक विज्ञप्तिपत्र ही है। यह उन्होंने जोधपुरसे प्रधान आचार्य विजयप्रभके पास सूरत भेजा था। उन्होंने चन्द्रमाको दूत कल्पना करके अपने सन्देशको उसके द्वारा सूरत भिज-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाया है और उसमें मेघदूतके ढंगपर, उसीकी छाया लेकर १३१ श्लोकोंमें अपनी कवित्व-शक्तिका परिचय दिया है। जोधपुरसे सूरत तकके प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थलोंका और मन्दिर तीर्थादिकोंका इसमें मनोरम वर्णन है। 'मेघदूतसमस्यालेख' नामका एक और विज्ञप्तिपत्र है, जिसे मेघविजयजीने औरंगाबाद (दक्षिण) से आचार्य विजयप्रभके पास दीव बन्दरको भेजा था। यह भी इन्दुदूतके ढंगका है। इसमें इतनी विशेषता है कि इसके प्रत्येक श्लोकके तीन चरण ग्रन्थकर्ताके हैं और चौथा मेघदूतका है। 'चेतोदूत' नामका एक विज्ञप्तिपत्र और भी है। इस ग्रन्थमें जो विज्ञप्तिपत्र प्रकाशित किया गया है, उसका नाम विज्ञप्तित्रिवेणिः है। इसे विक्रम संवत् १४८४ माघ सुदी १० वींके दिन सिन्ध देशके 'मलिकवाहण' नामक स्थानसे जयसागर उपाध्यायने गुजरातके अणहिलपुरपाटणस्थ आचार्य जिनभद्रसूरिके पास भेजा था। यह संस्कृत गद्यपद्यमय है। इसकी श्लोकसंख्या १०१२ श्लोक प्रमाण है। इसकी रचना भी सुन्दर है और विषय भी महत्त्वका है। जयसागर उपाध्यायने पंजाबके नगरकोट नामक तीर्थकी—जिसको कि आजकल काँगड़ा या कोट काँगड़ा कहते हैं—एक बड़े भारी संघके साथ जो यात्रा की थी उसका इसमें सविस्तर वर्णन है। इससे उस समयके जैनधर्मके इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ता है। आज जिस नगरकोटमें एक भी जैनी नहीं है, वहाँ पर पाँचसौ वर्ष पहले एक बड़ा भारी तीर्थ था और सैकड़ों धनिक जैनोंका निवास था और वहाँका राजा जैनधर्मसे सहानुभूति रखता था। पन्द्रहवीं शताब्दिके अन्त तक वहाँ पर श्वेताम्बरसम्प्रदायके चार बड़े बड़े जैनमंदिर थे। दिगम्बर सम्प्रदायके भी मन्दिर और गृह अवश्य होंगे। क्योंकि जनरल ए. कनिंगहामके कथनानुसार बादशाही जमानेमें नगर कोटकी दीवानगीरी (मंत्रित्व) दिगम्बर जैन किया करते थे। विज्ञप्तित्रिवेणीसे यह भी पता लगता है कि १५ वीं शताब्दिमें गुजरात, राजपूताना आदिकी तरह सिन्ध और पंजाबमें भी जैनधर्मका अच्छा प्रचार था। वहाँ हजारों जैन बसते थे और सैकड़ों जिनालय मौजूद थे। जिन मरुकोट्ट, नन्दनवन, और कोटिल्लग्राम आदि तीर्थस्थानोंका इसमें उल्लेख है, उनका आज कोई नाम भी नहीं जानता है। सर्वसाधारण जनताको और राजादिकोंको भी उस समय जैनधर्मसे बहुत कुछ सहानुभूति थी। मुनिमहोदय जिनविजयजीने इस ग्रन्थका बहुत ही परिश्रमसे सम्पादन किया है। मूल विज्ञप्तिपत्र कुल ६५ पृष्ठोंमें आगया है और १२ पृष्ठोंमें उसका हिन्दी सार है। शेषके लगभग ८० पृष्ठोंमें इसकी भूमिका है, जिसमें पचासों ग्रन्थोंकी छानबीन करके विज्ञप्तिपत्रोंका स्वरूप, उनका इतिहास, खास खास विज्ञप्तिपत्रोंका उल्लेख, विज्ञप्तित्रिवेणीके लेखक, उनके सहयोगियों तथा गुरु और स्थानोंका परिचय आदि महत्त्वपूर्ण बातोंका ज्ञान कराया है। विशेषता यह है कि जो कुछ लिखा है वह अपने सम्प्रदायकी पक्ष या श्रद्धाके वश होकर नहीं किन्तु इतिहास पर प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे लिखा है। जैन सम्प्रदायके इतिहासलेखकोंमें जो पक्षपातिताका दोष दिखलाई देता है, उससे लेखक महाशय बचे हुए हैं और इससे आशा होती है कि उनके द्वारा जैन इतिहासकी बहुत अधिक सेवा होगी। ऐसी बहुमूल्य पुस्तकके लिखने और प्रकाशित करनेके उपलक्ष्यमें हम लेखक महाशयकी और आत्मानन्द-जैनसभाकी प्रशंसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किये बिना नहीं रह सकते । पुस्तक बढ़िया कागज पर सुन्दरताके साथ छपी है ।

२ कृपारसकोश । लेखक और प्रकाशक पूर्वोक्त मुनि महाशय और सभा । डिमाई अठपेजी साइज । पृष्ठ संख्या ८० । मूल्य एक रुपया । श्वेताम्बर सम्प्रदायमें हीरविजयसूरि नामके एक बहुत ही प्रसिद्ध विद्वान् हो गये हैं । वे बादशाह अकबरके समसामयिक थे । उनकी साधुता और विद्वत्ताकी कीर्ति सुनकर अकबरने उनके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की और तब हीरविजयजी बादशाहसे दो बार मिले । बादशाहने उनकी बड़ी खातिर की और उनसे वार्तालाप करके बहुतसा ज्ञान प्राप्त किया । एक तो अकबर स्वयं ही प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला बादशाह था, दूसरे सूरिजीका भी उस पर बहुत प्रभाव पड़ा । इस लिए उसने सूरिजीकी प्रेरणासे कैदखानोंसे तमाम कैदी मुक्त कर दिये, पींजड़ोंमेंके तमाम पक्षी छुड़वा दिये, डाबर नामके तालाबमें मछली पकड़नेके जाल डालनेके लिए मनाई कर दी और पर्युषणके आठ दिनोंमें तथा दूसरे चार दिनोंमें जीव-वध न होने पावे, इसके लिए गुजरात, मालवा, अजमेर, दिल्ली, फतहपुर और लाहौरके सूबों पर फरमान (आज्ञापत्र) लिख दिये । दूसरी बारकी मुलाकातमें बादशाहने एक फरमान और लिख दिया जिसका अभिप्राय यह है कि "सिद्धाचल, गिरनार, तारंगा, केशरिया और आबूके पहाड़ों पर, जो गुजरातमें हैं, तथा राजगृहीके पाँच पहाड़ और सम्मेदशिखर या पार्श्वनाथ पहाड़, जो बंगालमें है, तथा और भी जैन श्वेताम्बरसम्प्रदायके धर्मस्थान जो हमारे अधिकारके देशोंमें हैं वे सभी जैन श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्य हीरविजयसूरिके स्वाधीन किये जाते हैं, जिससे ये शान्तिपूर्वक इन पवित्र स्थानोंमें अपनी ईश्वरभक्ति किया करें । यद्यपि इस समय ये स्थान हीरविजयसूरिको दिये जाते हैं, परन्तु वास्तवमें ये सब श्वेताम्बर धर्मवालोंके हैं और इन्हींकी मालिकीके हैं । इन पर्वतोंके नीचे, ऊपर, आसपास, यात्राके सभी स्थानोंमें और पूजास्थानोंमें कोई किसी प्रकारकी जीवहिंसा न करे ।" इसके बाद हीरविजयजी दिल्लीसे चले गये और बादशाहके पास उपाध्याय शान्तिचन्द्रजीको रखते गये । उपाध्यायजी अच्छे विद्वान् थे । ये भी बादशाहको दयालु बनानेका प्रयत्न करते रहे । इसका फल यह हुआ कि वर्ष भरके खास खास हिन्दू तथा मुसलमानोंके इतने तेहवारों पर जीववध न करनेकी आज्ञा दे दी कि उन सब दिनोंकी संख्या छह महीनेके लगभग हो जाती है । जिजिया करके उठा देनेमें भी ये ही उपाध्यायजी कारण समझे जाते हैं । हीरविजयजी और अकबरके इस परिचय आदिके सम्बन्धमें श्वेताम्बर विद्वानोंने जगद्गुरुकाव्य, हीरसौभाग्य महाकाव्य, विजयप्रशस्तिकाव्य, विजयमाहात्म्य, आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं । यह 'कृपारसकोश' भी उन्हींमेंका एक है । इसके कर्ता पूर्वोक्त उपाध्याय शान्तिचन्द्रजी हैं । ग्रन्थ १२८ संस्कृत पद्योंमें समाप्त हुआ है । इसमें पहले खुरासान काबुल आदिका वर्णन, फिर बाबर और हुमायूँकी प्रशंसा और उसके बाद अकबरका जन्मवृत्तान्त कहा गया है । इसके बाद अकबरके रूप, शौर्य्य, दानशीलता, दयाप्रवणता आदि गुणोंकी प्रशंसा की गई है । ग्रन्थ अकबरको प्रसन्न करनेके लिए रचा गया था, इस लिए आश्चर्य नहीं जो इसमें उसकी अति प्रशंसा की गई हो । एक श्लोक देखिए:—

कन्ये कासि कृपा कुतोऽसि विधुरा राजा कुमारो गत-
स्तत्किं हिंसकमानवैरहरहर्गाढं प्रमुष्टास्म्यहम् ।
स्थानाय स्पृहयामि तद्भज शुभे भूभामिनीभोगिनं
संप्रत्येकनृपं चिरादकबरं येनासि न व्याकुला॥११३॥

अर्थात्—हे कन्ये, तू कौन है ? मैं दया हूँ । दुखी क्यों है ? इस लिए कि राजा कुमारपाल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसारसे चला गया। उसके चले जानेसे क्या हुआ? हिंसक मनुष्योंके द्वारा मैं रातदिन सताई जाती हूँ, इस लिए अपने लिए कोई आश्रय चाहती हूँ। तो इस समयके सर्वश्रेष्ठ पृथिवीपति अकबरके पास जा, इससे तेरी व्याकुलता मिट जायगी।

काव्यदृष्टिसे रचना सुन्दर है, पर इतिहासकी दृष्टिसे अतिरंजित है। सम्पादकने काव्यका हिन्दीमें आशयानुवाद लिख दिया है और ऐतिहासिक बातों पर प्रकाश डालनेके लिए ४२ पृष्ठकी एक भूमिका लिख दी है। इसके लिए बहुत छानबीनकी गई है और यथेष्ट परिश्रम किया गया है। पुस्तकके प्रारंभमें बादशाह अकबर और हीरविजयजीकी मुलाकातके समयका एक प्राचीन चित्र दिया गया है, जो बहुत सुन्दर है। बादशाहके उन दो फरमानोंके फोटू भी दे दिये हैं जो खास खास दिनोंमें जीववध न किये जानेके लिए और हीरविजयजीको तीर्थोंके मालिक बनानेके लिए लिखे गये थे। दूसरे फरमानकी शाहीमुहरका चित्र भी एन्लार्ज कराके दिया गया है। जहाँ तक हमारा खयाल है, यह दूसरा फरमान उन्हींमेंसे एक होगा, जिन्हें सम्मेदशिखरके इस हालके मुकद्दमेमें हजारीबागके न्यायाधीशने जाली ठहरा दिया है। हमें भी इस फरमानके सच्चे होनेमें सन्देह होता है। क्योंकि एक तो "बादशाही फरमानोंमें ऊपरके भागों पर वैसे ही चित्र चित्रित किये जाते थे जैसे कि प्रथम नम्बरके फरमानमें हैं; परन्तु इस दूसरे फरमानमें और ही प्रकारके दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। मुख्यकर मध्यका जो चित्र है वह एक देवमंदिरके आकारकासा है।" इस बातको इस पुस्तकके सम्पादकने स्वयं इन्हीं शब्दोंमें लिखा है। दूसरे अकबर और हीरविजयसूरिके सम्बन्धमें जो कई ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमेंसे किसीमें भी इसका उल्लेख नहीं है। यह बहुत बड़े महत्त्वकी बात थी--तमाम तीर्थोंको श्वेताम्बर ठहरा देना और उनको उनका अधिकार दे देना, यह ऐसी बात नहीं थी कि इसका उल्लेख न किया जाता। यह सच होगा कि हीरविजयजीने यह प्रार्थना की होगी कि तीर्थों पर मुगलोंके उपद्रव बहुत होते हैं--वे हिंसादि करते हैं, इस लिए वहाँ ऐसा न होने पावे और इस उचित प्रार्थनाको बादशाहने स्वीकार भी किया होगा, जैसा कि इस कुपारसकोशके कर्ताने १२६ वें श्लोकमें 'या चैत्यमुक्तिरपि दुर्दममुद्गलेभ्यः' वाक्यसे प्रकट किया है। परन्तु सारे जैनतीर्थ श्वेताम्बर करार दिये जायँ और हमारे अधिकारमें दे दिये जायँ, ऐसी इच्छा न तो हीरविजयजी कर सकते थे और न बादशाह उसकी पूर्ति ही कर सकता था। हीरविजयजी तीर्थों पर अधिकार जमानेवाले और अपने भक्तोंको बहका कर दूसरोंसे लड़ानेवाले साधु न थे। अकबर जिस समय उन्हें बहुतसे जैनग्रन्थ भेंट करने लगा था, उस समय उन्होंने उनके लेनेसे साफ इंकार कर दिया था और कहा था कि जरूरतसे ज्यादा होनेके कारण मैं इन्हें भी परिग्रह समझता हूँ। जो पुरुष जैनग्रन्थोंको भी परिग्रह समझकर ग्रहण नहीं करना चाहता है, वह तीर्थोंका अधिकार ग्रहण कर लेगा, यह संभव नहीं है। कभी कोई श्वेताम्बर या दिगम्बर साधु तीर्थोंका अधिकारी रहा भी नहीं है। तीर्थोंके प्रबन्ध आदिसे श्रावकोंका ही सम्बन्ध रहता है। हीरविजयजीको दिगम्बरियोंके अधिकारसे इतना अधिक द्वेष भी नहीं होगा जितना कि उक्त फरमानसे प्रकट होता है। इसी पुस्तकमें लिखा है कि 'उन्होंने मथुरासे लौटते हुए गोपाचल (ग्वालियर) की विशालकाय भव्याकृति जिनमूर्तिके जो 'बावनगजा' के नामसे प्रसिद्ध है, दर्शन किये।' हमारी समझमें यह विशाल मूर्ति ग्वालियरके किलेकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर प्रतिमा ही है। अकबरकी प्रकृति भी ऐसी नहीं थी कि वह श्वेताम्बरियोंको प्रसन्न करके दिगम्बरियोंके साथ अन्याय करे। फरमानमें यद्यपि कोई शब्द दिगम्बरियोंके विरुद्ध नहीं है; परन्तु श्वेताम्बरियोंकी ही मालिकीके ये स्थान हैं, इसका अर्थ ही यह है कि इन पर दिगम्बरोंका अधिकार नहीं है। फरमानके इस अंशको पढ़कर कि " यद्यपि इस समय ये स्थान हीरविजयजीको दिये जाते हैं; परन्तु वास्तवमें हैं ये सब जैन श्वेताम्बर-धर्मवालोंहीके, और इन्हींकी मालिकीके " यह भान होता है जैसे इस जाली फरमान लिखनेवालेको यह भय हो गया हो कि इस फरमानसे हीरविजयके बादके लोगोंका अधिकार कैसे सिद्ध होगा और इसलिए उसने उक्त भयको मिटानेके लिए ये पंक्तियाँ पीछेसे और बढ़ा दी हों। कुछ भी हो, हमें इसपर सन्देह हो गया है। इतिहासके विद्वानोंको इस विषयमें निष्पक्ष होकर छानबीन करनी चाहिए। हमें इस फरमानको पढ़ते हुए जो जो बातें सूझीं इस समय तो हमने केवल उन्हींका उल्लेख कर दिया है। पुस्तक बड़े महत्त्वकी है। प्रत्येक इतिहासके प्रेमीको इसकी एक एक प्रति मँगा लेना चाहिए। यह बढ़िया आर्टपेपर पर कई रंगकी स्याहीसे छपाई गई है और इसकी जिल्द तो और भी अधिक नयनाभिराम है। हमारी समझमें एक इतिहासकी पुस्तकमें इतने आडम्बरकी आवश्यकता नहीं थी।

३ राठोड़वीर दुर्गादास—लेखक और प्रकाशक, तात्या नेमिनाथ पांगल, सरसवाड़मय-प्रसारक मण्डली, गिरगाँव; बम्बई,। पृष्ठसंख्या १७५। मूल्य एक रुपया। यह पुस्तक प्रसिद्ध नाटककार स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके बंगला नाटकका मराठी अनुवाद है जो हमारे प्रकाशित किये हुए हिन्दी दुर्गादासके आधारसे किया गया है। इसमें राजपूतानेके सुप्रसिद्ध महापुरुष वीर दुर्गादासका आदर्शचरित्र अङ्कित किया गया है। अपूर्व नाटक है। मराठी जाननेवालोंको अवश्य पढ़ना चाहिए। अनुवादमें कहीं कहीं शिथिलता और अस्पष्टता आ गई है। यह न आती तो अच्छा था। पुस्तक लोकमान्य पं० बालगंगाधर तिलकको समर्पित की गई है।

४ महिला-गानमाला—लेखक और प्रकाशक पं० सुखराम चौबे, लार्डगंज, जबलपूर। डिमाई अठपेजीके २६ पृष्ठ। मूल्य दो आना। विवाहादि संस्कार कार्योंके समय स्त्रियाँ जो भले बुरे गीत गाया करती हैं, उनके रोकनेके लिए और अच्छे गीतोंके द्वारा स्त्री-समाजमें अच्छे भाव भरनेके लिए यह पुस्तक रची गई है। रचना स्त्रियोंके लिए सचमुच ही उपयोगी है।

५ ललितविलास—लेखक, मुनि तिलक विजय और प्रकाशक, आत्मानन्दजैनसभा, अंबाला शहर। रायल सोलह पेजीके ५६ पृष्ठ। मूल्य दो आने। यह मुनि महाराजकी खड़ी बोलीकी कविताओंका संग्रह है। जान पड़ता है आपने इन पद्योंको श्रीयुत बाबू मैथिलीशरणकी 'भारत-भारती' और जयद्रथवध आदिको सामने रखकर लिखा है। क्योंकि इसमें उनके चरणके चरण नकल कर दिये गये हैं। भावोंको भी आपने खूब उड़ाया है। मैथिली बाबूके समर्पण तककी आपने छन्द बदलकर नकल कर डाली है। देखिए:—

जो मिली आपसे चीज आपको कैसे अर्पण करूँ उसे,
मैं होकर तो भी धृष्ट आपके कर कमलोंमें धरूँ इसे।
अतएव धृष्टता पर मेरी न ध्यान आप कुछ भी दीजे,
हे दयानिधे, किंकरकृतिको स्वीकृत कर मम (?)
उपकृत कीजे !!

इसमें जिसकी नकल की गई है, वह मैथिली बाबूका समर्पण इस प्रकार है:—

पाई तुम्हींसे वस्तु जो कैसे उसे अर्पण करूँ ?
पर क्या परीक्षारूपमें पुस्तक न यह आगे धरूँ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत एव मेरी धृष्टता यह ध्यानमें मत दीजिए, कृपया इसे स्वीकार कर उपकृत्य मुझको कीजिए।

हमारी समझमें यह कार्य मुनिजीके पदके योग्य नहीं। शास्त्रोंमें काव्य-चौर्यकी बहुत निन्दा की है। कवितामें छन्दोभंग आदि दोष भी हैं, फिर भी उपदेशकी बातें अच्छी हैं, उनसे पढ़नेवाले कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठायँगे। मुनिमहाराज कट्टर श्वेताम्बर जान पड़ते हैं। आप एक जगह दिगम्बरों और ढूँढ़ियोंको भी चलते चलते दो चार बुरी भली सुना गये हैं। दिगम्बरियोंके लिए आप फरमाते हैं:—

निकला दिगम्बरपन्थ भी तो है हम्हींमेंसे यहाँ,
गुरु भद्रबाहुसे प्रथम था इनका उद्भव ही कहाँ ?
जैसे कि आर्यसमाज निकला देखते सबके यहाँ,
पर अल्पसे ही कालमें फैला नहीं है वो कहाँ ?

इसी प्रकरणमें आप स्थानकवासियोंके विरुद्धमें भी कुछ कहकर कहते हैं—

मतपक्ष करना आज इसको (लोग) मान बैठे धर्म हैं।

मुनि महाराज शायद श्वेताम्बर मतके पक्ष करनेको 'मतपक्ष' न मानते होंगे, अत एव आपकी इस मानताके लिए धन्यवाद !

नीचे लिखी पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती हैं:—

१ रोजगार, २ घरका वैद्य, ३ स्त्रीशिक्षा, ४ संसारकी आकांक्षा—प्रकाशक, पं० रुद्रदत्त शर्मा, चँदौसी (यू. पी.)।

५ काव्योपवन-सुमन पुष्पाञ्जली, ६ भाषाश्रुतबोध, ७ चतड़ाचौथचातुरी, ८ भाषापिङ्गल, ९ गानेकी चन्द-चीजे, द्वितीय तृतीय भाग—लेखक और प्रकाशक, बाबू माँगालील गुप्त छावनी नीमच।

१० गिरनारमाहात्म्य (विधान पूजन)—सम्पादक और प्रकाशक, बाबू बंशीधर जैन मास्टर, ललितपुर, (झाँसी)।

११ दलजीतसिंह—नाटक—ले०, बाबू कृष्णलाल वर्मा। प्रकाशक, प्रेममाला कार्यालय, गोहाना (रोहतक)

१२ आस्तिकप्रकाश—प्र० पं०, कुँवरसेन शर्मा, हनुमान गली, हाथरस (अलीगढ़)।

१३ नवतत्त्व (हिन्दीभाषानुवाद सहित)—प्र०, आत्मानन्दजैनपुस्तकप्रचारक मण्डल, नौघरा, देहली।

१४ श्रीपालचरित्र (द्वितीय संस्करण)—ले०। मास्टर दीपचन्दजी और प्रकाशक, मूलचन्द कसनदास काषड़िया, सूरत।

१५ श्रावकधर्मदर्पण, १६ शीलरक्षा प्रथम और द्वितीय भाग—प्र०, कुँवर मोतीलाल राँका, जैनज्ञानवर्द्धिनी पाठशाला, व्यवर (अजमेर)।

१६ जैनइतिहास, १७ जैनतत्त्वमीमांसा- प्र०, आत्मानन्द-जैन-ट्रेक्ट-सुसाइटी, अंबाला सिटी।

१७ छठवीं वार्षिक रिपोर्ट—जैनसिद्धान्तविद्यालय, मोरेना।

१९ षष्ठ वार्षिकरिपोर्ट—जैनबोर्डिंग हाउस, बिजनौर।

२० बीसवीं वार्षिकरिपोर्ट—दिगम्बरजैनमहासभा, सहारनपुर।

विविध-प्रसङ्ग।

१ स्याद्वादविद्यालय और जैनमित्र।

जैनमित्रके सम्पादक महाशय जैनसंस्थाओंके इतने बड़े शुभचिन्तक हैं कि उस शुभ-चिन्तनामें उन्हें 'चुप्पं कुरु' की नीतिक अत्यधिक पक्षपाती बन जाना पड़ा है। वे चाहते हैं कि किसी भी संस्थाके दोष न निकाले जायँ, क्योंकि ऐसा करनेसे लोग सहायता देना बन्द कर देंगे और संस्थाको हानि पहुँचेगी। अवश्य ही यह शुभ-चिन्तना है, पर इसका परिणाम संस्थाओंके लिए वही होगा जो अधिक लाड़से पाले जानेवाले और सदा अपनेको सर्वगुणसम्पन्न समझनेवाले बालकोंका होता है। जैनहि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तैषीके गताङ्कमें प्रकाशित हुए प्रो० निहालकरण सेठीके लेख पर ब्रह्मचारीजीने जैनमित्रके १२ वें अंकमें एक लेख प्रकाशित किया है। उस लेखका उद्देश्य यही है कि स्याद्वाद-पाठशालाकी दशा ही लोगोंकी दृष्टिमें बुरी प्रतीत न हो, सेठीजीके आक्षेपोंका समाधान होने न होनेसे कोई मतलब नहीं। पंडित उमरावसिंहजीके तो आप बहुत ही बड़े भक्त हैं उनसे आप दबते भी खूब हैं। उमरावसिंहजीने इस बातको स्वयं स्वीकार किया कि मैंने हड़ताल करांई है। और अधिष्ठाता पं० गणेशप्रसादजीने कमेटीमें साफ शब्दोंमें कहा कि "अपराध पं० उमरावसिंहजीका है; किन्तु दूसरा अध्यापक न मिल सकनेके कारण उनकी खुशामद करनी पड़ेगी। इस समय उन्हें पृथक् नहीं कर सकते; किन्तु जब और कोई प्रबन्ध हो जायगा तो वे भी पृथक् किये जा सकेंगे।" तो भी आप पं० उमरावसिंहजीको दोषी नहीं समझते और उनकी प्रशंसाके गीत गाये जाते हैं। उन्होंने मंत्रीका अपमान किया, उन्हें पदच्युत करानेका प्रयत्न किया, यह तो कोई अपराध ही नहीं हुआ; और हड़तालको तो आप कोई बड़ा दोष ही नहीं समझते हैं। आप इस बातको स्वयं स्वीकार करते हैं कि बाहरी प्रबन्ध ठीक नहीं है, फिर भी कहते जाते हैं कि पढ़ाईमें काई त्रुटि नहीं है। हम कहते हैं कि यदि पढ़ाईमें कोई त्रुटि नहीं है—जो कि मुख्य है—तो फिर बाहरी प्रबन्धको सुधारनेकी अवश्यकता ही क्या है? क्योंकि आपकी समझमें तो प्रबन्धका पढ़ाई पर कुछ असर ही नहीं पड़ता है। हड़तालें होने-पर भी, पढ़ाई बन्द रहने पर भी और कार्यकर्त्ता-ओंकी आपसमें न बनने पर भी पढ़ाईमें कोई त्रुटि नहीं होती है, तो फिर प्रबन्धकी जरूरत ही क्या है? शिखरजीके यात्रियोंने अथवा दूसरे दर्शकोंने आकर यदि दश-बीस मिनिटके निरीक्षणके भरोसे विद्यालयको अच्छा बतला दिया और पण्डितजीकी बातोंसे प्रसन्न होकर यदि उन्होंने उनकी भी प्रशंसा कर दी, तो बस विद्यालयकी दशा अच्छी होगई! भले ही वहाँ खोजने पर भी विद्यालयके रजिस्टरोंका पता न लगे। परीक्षालयके रिमार्क और कितने विद्यार्थियोंने सरकारी परीक्षायें दीं, यह भी विद्यालयके अच्छे होनेका कोई प्रमाण नहीं है, जब तक यह न मालूम हो कि परीक्षामें बैठनेवाले विद्यार्थियोंकी वह पढ़ाई कितने समयकी है। और क्या केवल पढ़ाईहीसे हमें अच्छी और बुरी दशाका निर्णय कर लेना चाहिए? चारित्रका क्या कोई मूल्य ही नहीं है? विद्यालयमें पढ़ाई न होनेका कारण ब्रह्मचारीजी यह बतलाते हैं कि कमेटीके जुड़नेमें २५ दिन लग गये। पर यह असत्य है। कमेटीकी तो इस बीचमें कई बैठकें हो गई थीं; परन्तु कार्यकर्त्ता तो कोई काशीका था नहीं, तब प्रबन्ध कौन करता? और यदि कमेटी न जुड़ सकी, तो यह किसका दोष है? संस्थाकी इससे बड़ी दुरवस्था और क्या हो सकती है कि उसके तमाम कार्यकर्त्ता काशीसे बाहर रहते हैं। क्या इस त्रुटिको दूर करनेकी आवश्यकता नहीं है? सेठीजीने लिखा था कि २७–२८ छात्रों पर भोजनादिमें ४०० मासिक व्यय होता है, सो इसमें तो कोई असत्यता नहीं मालूम होती। जैनमित्रके इसी (१२ वें) अंकमें स्याद्वादविद्यालयका दिसम्बर महीनेका हिसाब छपा है। उससे मालूम होता है कि इस महीनेमें ५५३।≥)॥॥ खर्च हुआ है। इसमें अध्यापकोंका वेतन केवल १११–) है। यदि पुस्तकालयका तथा मुतफर्रिक खर्च भी इसमें शामिल कर दिया जाय तो यह खर्च १४०) से अधिक नहीं होता है। तब ४१३) मासिक खर्च विद्यार्थियोंके भोजनादिका हुआ या नहीं? हाँ छात्रोंकी संख्यामें अवश्य ही थोड़ा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीनचारका फर्क है। आप कहते हैं कि इससे लोग भड़क जायँगे। हम कहते हैं कि लोगोंको सच बात कहकर भड़का देना अच्छा, पर झूठ कहकर, कुछका कुछ बतलाकर, धोखा देना अच्छा नहीं। और सच तो यह है कि यदि लोग इतनी जल्दी भड़क जाते हैं, तो इसके कारण आप ही जैसे सज्जन हैं जिन्होंने संस्थाओंकी भीतरी दशायें छुपा छुपाकर लोगोंकी ऐसी आदतें बना दी हैं कि वे किसी भी संस्थाके अप्रबन्धकी बात सुनते ही भड़क उठते हैं और सहायता देना बन्द कर देते हैं। कृपया इस पालिसीको बदल दीजिए और संस्थाओंकी भीतरी बातोंके प्रकाशित होनेमें रुकावट न डालकर उन्हें लोगोंको जानने दीजिए जिससे वे स्वयं संस्थाओंके सुधार करनेकी चिन्ता करें और संस्थाओंकी वास्तविक उन्नति हो। आप स्याद्वादपाठशालाके महत्त्वको जाननेके लिए उसकी रिपोर्टोंको पढ़नेकी सलाह देते हैं; पर यह तो बतलाइए कि उन रिपोर्टोंको लिखते तो आप ही या आप ही जैसे सज्जन हैं, जो रिपोर्टोंके प्रकाशित करनेकी सबसे अधिक उपयोगिता चन्दा बटोरना और लोगों पर प्रभाव डालना समझते हैं। ये जो समाजमें ३०-३५ विद्वान् आप हर किसीको बतला देते हैं, सो कहिए कि हम इसमें स्याद्वादविद्यालय, सिद्धान्तविद्यालय, मथुराविद्यालय आदि किस किसका हिस्सा समझें? इनके नाम सबहीने तो अपनी अपनी रिपोर्टोंमें लिख रक्खे हैं। और इनकी सूची बनाकर यह भी तो देखिए कि इनमें सचमुच ही किसी कामके विद्वान् कितने हैं और उनमें जो त्रुटियाँ हैं वे क्या आपके विद्यालयोंके प्रबन्ध और पढ़ाई आदिके लिए आभारी नहीं हैं? यदि प्रबन्ध अच्छा किया जाय, कार्यकर्ता अच्छे चुने जायँ, तो क्या और अच्छे विद्वान् नहीं बन सकते हैं? महाराज! इस विवादको रहने दीजिए और संस्थाकी अवस्था सुधारनेका प्रयत्न कीजिए। अभी तक हमारी संस्थाओंसे काम अवश्य हुआ है, पर वह बहुत ही थोड़ा हुआ है। अब उससे संतोष नहीं होता है। समय अब यह कहता है कि उनकी दशा सुधारो और उनसे थोड़से थोड़े समयमें और कमसे कम खर्चमें, अधिकसे अधिक काम करके दिखलाओ।

२ मतभिन्नता और जैनसमाज।

संसारमें मतभिन्नता सदा रहेगी। जब तक मनुष्य जातिमें बुद्धि है, सोचने समझनेकी शक्ति है, अथवा यह कहिए कि उसमें मनुष्यता है, तब तक उसकी मतभिन्नता मिट नहीं सकती। एक ही धर्म, एक ही सम्प्रदाय और एक ही पंथके अनुयायियोंमें भी मतभिन्नता होती है। यों साधारणतः तो वे किसी एक सम्प्रदाय या पन्थमें रहते हैं; पर यह संभव नहीं कि उस सम्प्रदाय या पन्थके सारे अनुयायियोंसे प्रत्येक ही विषयमें उनका मत एक हो जाय। जो जरा बुद्धिमान् हैं, कुछ अधिक पढ़ते लिखते हैं, उनमें तो यह बात बहुत अधिकतासे दिखलाई देती है।

मनुष्यके इन मतोंमें परिवर्तन भी खूब होते हैं। इन परिवर्तनोंका प्रधान समय युवावस्था है। जब तक बुद्धि अपरिपक्व रहती है, तब तक वह बहुत ही अस्थिर रहती है। वह सबेरे एक स्थिर करती है, और शामको उसे छोड़कर दूसरा ग्रहण कर लेती है, और दूसरे दिन किसी तीसरेको ही सच समझती है। प्रायः प्रत्येक ही शिक्षितमें यह बात देखी जाती है। पहलेके लोगोंमें भी थी और आजकलके लोगोंमें भी है। पर आजकल यह लोगोंकी दृष्टिमें अधिक आती है। क्योंकि आजकल विचार-स्वातन्त्र्य बढ़ता जा रहा है। अँगरेजी शिक्षाके प्रभावसे लोग अपने विचारोंको प्रकट करनेमें हिच-किचाते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम हैं। वे जो कुछ सोचते हैं, अपने साथियोंके सामने प्रकट भी कर डालते हैं। पर कुछ धर्मात्मा लोगोंको यह बात असह्य है। कमसे कम धार्मिक बातोंमें तो वे सबको 'बगुला-भगत ही बनाये रखना चाहते हैं। जिसे धर्मकी किसी भी बातमें शंका नहीं होती है, उसे वे शुद्ध सम्यग्दृष्टि और जो तरह तरहकी शंकायें करता है उसे घोर मिथ्यादृष्टि समझते हैं। पर हमारी समझमें पहले प्रकारके मनुष्य या तो बिल्कुल जड़बुद्धि होते हैं या पक्के धूर्त और मायाचारी और दूसरे प्रकारके लोग विचारशील और निष्कपट होते हैं।

जैनसमाजमें भी अब इस प्रकारके मनुष्य जहाँ तहाँ दिखलाई देने लगे हैं। जो अपने भिन्न विचारोंको निडर होकर औरोंके सामने प्रकट कर देते हैं। बाबा भगीरथजी वर्णीने जैनमित्रके द्वारा इस प्रकारके एक सज्जनका परिचय सर्व साधारणको कराया है। ये हैं (थे) ऋषभ-ब्रह्मचर्याश्रम-हस्तिनापुरके प्रधान संचालक ब्र० भगवानदीनजी। आपके जो जो विचार वर्तमान जैनधर्मके सिद्धान्तोंसे विरुद्ध हैं और जिन्हें उन्होंने अपने दो चार मित्रोंके समक्ष प्रकट किये होंगे उन्हें वर्णीजीने सर्व साधारणके सामने उपस्थित किये हैं और सबको सचेत किया है कि जब तक इनके विचार शास्त्रानुकूल दिगम्बर जैनधर्मके अनुसार न हों तब तक इनसे उपदेश न कराये जायँ और विद्वानोंको इनके मन्तव्योंका खण्डन करके जैनधर्मकी जाति-हितैषी प्रभावना करनी चाहिए। आपने यह भी प्रकट कर देनेकी कृपा की है कि वे ब्रह्मचर्याश्रमसे अलग कर दिये गये हैं। इस लेख पर जैनमित्रके सम्पादक महाशयने भी एक नोट लगाकर समाजको चौकन्ना कर दिया है।

देखिए, यह एक अच्छे विचारशील, स्वार्थत्यागी और कर्मवीर मनुष्यको गिरा देनेका कितना जघन्य प्रयत्न है! उधर तो ब्रह्मचारीजी यह लिखते हैं कि जैनसमाजमें अच्छा वेतन देने पर भी कार्यकर्ता नहीं मिलते हैं और इधर कार्यकर्ताओं पर इस प्रकारकी कृपा होती है। क्या आप लोगोंके द्वारा इसी तरहसे अपनी मट्टी पलीद करानेके लिए लोग आपकी संस्थाओंमें काम करने आयँगे? याद रखिए, जहाँ इतनी संकीर्णता और क्षुद्रता है, वहाँ कोई भी विचारशील आकर खड़ा न होगा। अफसोस कि जो भगवानदीनजी ब्रह्मचर्याश्रमके प्राण बन रहे थे, जिन्होंने बिना कुछ लिए समाजके कल्याण करनेकी इच्छासे छह सात वर्ष तक आश्रमकी अनवरत सेवा की, वे केवल इस लिए कि उनके विचार औरोंसे भिन्न हैं, अलग कर दिये गये और लोगोंको उनसे चौकन्ने रहनेका उपदेश दिया गया।

हमको इस विषयमें बहुत सन्देह है कि जैनमित्रमें जो मन्तव्य प्रकट किये गये हैं, उन्हें उसी रूपमें भगवानदीनजी मानते होंगे। उनमें बहुतसे मन्तव्य ऐसे भी जान पड़ते हैं जो उनके नहीं, किन्तु डारविन आदि पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओंके हैं; और जिन्हें प्रसंगानुसार किसीके पूछने पर उन्होंने प्रकट किये होंगे। सुननेवालोंने यह समझ लिया होगा कि ये इन्हींके विचार हैं। शुरूके सात मन्तव्य तो डारविनकी थियरीसे बिल्कुल मिलते जुलते हैं। कुछ मन्तव्य ऐसे भी जान पड़ते हैं जो थोड़े ही हेरफेरसे लिखनेके कारण कुछके कुछ हो गये हैं। कहा कुछ गया होगा और समझ कुछ लिया गया होगा। सच तो यह है कि जब तक भगवानदीनजीकी ही कलमसे उनके मन्तव्य प्रकट न हों, तब तक उनका वास्तविक स्वरूप नहीं समझा जा सकता। उनका पिछला १५ वाँ मन्तव्य तो बहुत ही ठीक है और उसे जानकर तो हमें उनसे डरनेका कोई कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। वह मन्तव्य यह है–" जो बात सत्य न जान पड़े उसे नहीं मानना, चाहे उसे सर्वज्ञ (कहलानेवाले) ने ही क्यों न कहा हो। जो बात सत्य मालूम हो, उसे मानना चाहे किसीकी भी कही हुई हो।" जैनधर्मके आचार्योंने भी तो यही कहा है:—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

अर्थात् ' न मुझे महावीर भगवानसे राग है और न कपिल आदि मत प्रवर्तकोंसे द्वेष है। मेरी समझमें तो जिसका वचन युक्तिपूर्ण हो, उसे ग्रहण कर लेना चाहिए।' सच्चा जैनधर्म तो यही है।

और थोड़ी देरके लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि जैनमित्रमें प्रकाशित हुए सभी मन्तव्य भगवानदीनजीके हैं, तो भी क्या उनके साथ इस प्रकारका वर्ताव होना चाहिए! था। क्या आप लोगोंसे किसीको इससे अधिक अच्छे बर्तावकी आशा ही नहीं करनी चाहिए! स्थितिकरण अंगको भी तो आप लोग मानते हैं। उसका मतलब क्या यही है कि जो थोड़ा भी डगमगाया हो, वह धक्का देकर गिरा दिया जाय? खण्डन करना और मुँह बन्द करना, क्या ये ही शस्त्र स्थितिकरणके लिए उपयोगी हैं? जब तक भगवानदीनजी आश्रमका काम करते थे, लड़कोंको शिक्षा देनेका कार्य करते थे, तब तक तो आप लोगोंको उनसे सावधान रहनेकी आवश्यकता न मालूम पड़ी; किन्तु ज्यों ही वे अलग हुए, त्यों ही उनसे समाजको सावधान रखनेकी आवश्यकता आन पड़ी। क्या आप यह समझते हैं कि मेला-प्रतिष्ठाओंमें व्याख्यान देनेके लिए जाकर वे डारविनकी थियरीका प्रतिपादन करेंगे, या कहेंगे कि स्वर्ग नरक कुछ है ही नहीं, और उस उपदेशको आपसे भी अधिक गतानुगतिकताके गुलाम बने हुए लोग सुन लेंगे? जैनोंकी तमाम जातियोंमें परस्पर बेटी-व्यवहार होना चाहिए, यह बात जैनधर्मके किसी भी सिद्धान्तसे विरुद्ध नहीं है, तो भी इन्दौरके मेलेमें ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीसे इसका प्रतिपादन सुननेके लिए लोग तैयार न हुए थे। उन्हें अपमानित होकर बैठ जाना पड़ा था। तब यह कैसे मान लिया जाय कि भगवानदीनजीके जैनधर्मसे सर्वथा विरुद्ध व्याख्यानोंको लोग चुपचाप सुन लेंगे? अब रही ब्रह्मचारीजीकी यह बात कि वे नवयुवकोंको एकान्तमें ले जाकर उन्हें विचार-भ्रष्ट कर देते हैं। सो महाराज, आपके पास नवयुवकोंको सन्दूकमें बन्द कर रखनेका तो कोई साधन है ही नहीं, उनके विचार भ्रष्ट होनेकी चिन्ता कहाँ कहाँ कीजिएगा। वे आर्यसमाजियोंसे मिलते हैं, ईसाइयोंसे मिलते हैं, स्कूलों और कालेजोंमें डारविन पढ़ते हैं, स्पेन्सर पढ़ते हैं, मिल और नित्शेके विचार सुनते हैं तब उन्हें अकेले भगवानदीनजीसे ही बचानेसे क्या होगा? उधर तो आप जैनसमाजमें कालेजकी आवश्यकता बतलाते हैं और उसके द्वारा उक्त फिलासफरोंके विचार जाननेका मार्ग सुगम कर देना चाहते हैं और इधर भगवानदीनजीकी संगति ही आपको नवयुवकोंके लिए महा अनिष्ट कारक प्रतीत होती है। सच तो यह है कि आजकल आपको और आपके ही समान अन्य कई धर्मात्माओंको जैनधर्मके डूब जानेका डर लग गया है। और जहाँ तहाँ आपके सामने इसी डरका भूत खड़ा रहता है। किसीने एक भी स्वतंत्र शब्द अपने मुँहसे निकाला कि यह भूत आपके कानमें आकर कहता है कि लो अब जैनधर्म जाता है। पर वर्णीजी और ब्रह्मचारी महाराज, आप घबड़ाइए नहीं, यदि जैनधर्म सत्यकी नींव पर स्थिर है, यदि वह त्रिकालाबाधित सत्य है, तो उसके लिए इतनी चिन्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करनेकी जरूरत नहीं है। वह विरुद्ध विचारोंकी टक्करोंसे हित नहीं हिल सकता। हाँ, यदि डर है तो आप लोगोंके **शास्त्रानुकूल धर्मके** स्थिर रहनेके विषयमें है। क्योंकि भद्रबाहुसंहिता और त्रिवर्णाचार जैसे धूर्तोंके बनाये हुए **शास्त्रोंकी** आयु अब पूरी हो चुकी है। अब **युक्त्यनुकूल धर्म** स्थिर रहेगा और शिक्षा उसीकी ओर लोगोंको लेजा रही है।

ब्र० भगवानदीनजीके समान विचार रखनेवाले इस समय जैनसमाजमें दो चार नहीं किन्तु सैकड़ों हो गये हैं; पर उनके सुधारनेका यह उपाय नहीं है। न उनके मुँह बन्द किये जा सकते हैं और न इस तरह अपकीर्ति उड़ानेसे कुछ लाभ हो सकता है। लोग अपने घर अपने मित्रोंमें तरह तरहके विचार प्रकट किया करते हैं। यदि उन सबको ही हम इस तरह प्रकट करने लगेंगे और उन पर समाजको सचेत करने लगेंगे, तो इसका परिणाम कभी अच्छा न होगा। इसके लिए हमें उदार बनना चाहिए और उत्तम शिक्षापद्धति आदिके इस तरहके साधन तैयार करदेना चाहिए जिससे उनके विचार स्वयं ही जैनधर्मके अनुकूल हो जायँ। यदि भगवानदीनजी नवयुवकोंको एकान्तमें लेजाकर समझाते हैं तो आप लोग भी भगवानदीनजीको और उन्हें प्रेमसे समझाइए और उनके पूर्व विचारोंको बदल दीजिए तथा इस प्रकारका साहित्य तैयार कराइए जिसे पढ़कर वे जैनधर्ममें स्थिर हो जावें। इसके सिवाय उन्हें कुछ समय भी दीजिए। उनकी अवस्था ज्यों ज्यों पक्व होती जायगी, त्यों त्यों उनके खयाल बदलते जायँगे और वे धर्मके अनुरागी बन जायँगे। उनको बदनाम करना, या उनके विषयमें बुरे विचार फैलाना, इस प्रकारकी नीति तो बहुत ही भयंकर है। इससे उनका सुधारना तो दूर रहा, वे उलटे चिढ़ जायँगे और आपके इस संकीर्ण समाजसे आश्चर्य नहीं जो वे अलग ही हो जायँ। अन्तमें हम फिर भी कहेंगे कि ब्र० भगवानदीनजी जैसे स्वार्थत्यागी और कर्मवीर पुरुषोंको अपने अनुदार वर्तावके कारण जो लोग हाथसे खोदेनेका यत्न कर रहे हैं वे जैनसमाजके भविष्यको बहुत ही अन्धकारमय बनाया चाहते हैं। अप्रत्यक्षरूपसे वे यही कर रहे हैं कि किसी भी विचारशील पुरुषको जैनसंस्थाओंके काममें हाथ न डालना चाहिए।

३ सवाल दीगर जवाब दीगर।

अभी थोड़े दिन पहले बेलगाँवमें ब्रह्मचारी नेमिसागरजीका एक व्याख्यान हुआ था जिसमें आपने इस बातको स्वीकार किया कि जैनोंकी संख्या बराबर कम हो रही है; पर इसके लिए आपने उपाय यह बतलाया कि इतर लोग उपदेश देकर जैन बनाये जायँ! हमारे समाजके अन्यान्य पण्डित महाशयोंकी दृष्टिमें भी यही उपाय अमोघ जँच रहा है। पर वास्तवमें यह कोई उपाय नहीं है। नये जैन तो बना लिए जायँगे; पर इससे पुराने जैन नष्ट होनेसे कैसे बच जायँगे; यह समझमें नहीं आया। वे तो बराबर कम हो रहे हैं—प्रति दस वर्षमें प्रत्येक १०० जैनोंमेंसे ११ नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् १०० के ८९ रह जाते हैं, उनका कम होना कैसे बन्द हो जायगा? यदि यह कहा जाय कि जितने जैन दस वर्षमें कम होंगे, उतने दूसरे धर्मवाले जैन हो जायँगे, इस तरह जैनोंकी जो संख्या इस समय है वह जितनीकी तितनी बनी रहेगी। पर यह बात कहनेमें जितनी सहज है उतनी करनेमें नहीं होगी। सन् १९०१ से १९११ तकके दस वर्षोंमें हमारी संख्यामें लगभग ८६ हजारकी कमी हुई है, अर्थात् प्रतिवर्ष लगभग साढ़े आठ हजार मनुष्य हमारी संख्यामें घटे हैं। ऐसी दशामें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि औरोंको जैन बनानेका ही उपाय हम काममें लायँगे, तो हमें प्रतिवर्ष ८॥ हजार मनुष्योंको अपने धर्ममें दीक्षित करना पड़ेगा। क्या हमारे पण्डित महाशय और उक्त ब्रह्मचारीजी हर महीने सातसौ मनुष्योंको जैनी बनानेकी बातको संभव समझते हैं?

हमारी समझमें यह सर्वथा असंभव है। आर्य्यसमाज और सनातनधर्म ये दोनों प्रायः एक हीसे धर्म हैं। दोनोंके वेद एक हैं, ईश्वर एक है, सिद्धान्त एक है जाति-पाँति एक है। थोड़ीसी आचार आदिकी बातोंमें ही कुछ भेद है। और इस पर आर्य्यसमाजमें उद्योगियों और स्वार्थत्यागियोंकी संख्या हमसे कई गुणी है। फिर भी हम देखते हैं कि वे हर महीने सातसौ आदमियोंको अपने धर्ममें नहीं मिला सकते हैं। तब देशके तमाम धर्मोंसे जिनके सिद्धान्त निराले हैं, जो ईश्वरका सृष्टिकर्तृत्व स्वीकार नहीं करते, वेदोंसे जिनका कोई सम्बन्ध नहीं, और जिनमें काम करनेवालोंका अभाव है, वे लोग हमारी समझमें तो इस समय सातसो तो क्या सात मनुष्योंको भी प्रतिवर्ष जैन नहीं बना सकेंगे।

अब वह जमाना नहीं रहा, जब किसी धर्मके एक पण्डितको हरा देनेसे उसके सारे अनुयायी दूसरा धर्म ग्रहण कर लेते थे। अथवा विद्वानोंके उपदेशसे गाँवके गाँव धर्म परिवर्तन कर डालते थे। धर्मोंने अब समाज और जातिके रूप धारण कर लिये हैं। अब ये विचारकी चीजें नहीं रही हैं। इनका अब केवल परलोकसे ही सम्बन्ध नहीं रहा है—जाति बिरादरी—रिश्तेदार, आदि इस लोकके प्रपंच भी इनके साथ कस दिये गये हैं। इस लिए इस समय धर्म परिवर्तन करना उतनी सहज बात नहीं है जितनी कि पण्डित लोग समझ रहे हैं।

ईसाइयों और आर्यसमाजियोंके लिए यह काम जितना सुकर है उतना जैनोंके लिए है भी नहीं। जहाँ उनके यहाँ इतनी उदारता है कि मनुष्यमात्रको वे अपने धर्ममें ग्रहण करनेको तैयार रहते हैं, वहाँ हमारे यहाँ इतनी अनुदारता है कि उसके कारण जो जैन हैं उनका ही जैन बना रहना कठिन है। खतौलीके दस्सा अग्रवालोंके मामलेको पाठक भूले न होंगे। उन बेचारोंका उनके निजी मन्दिरमें भी जिनपूजा करनेका अधिकार नहीं मिल रहा है। बीसे भाई कहते हैं कि दस्से चाहे ईसाई या मुसलमान तक बन जायँ पर हम उन्हें पूजाका अधिकार देनेको तैयार नहीं। जहाँ पूजाके अधिकारके सम्बन्धमें ही इतनी अनुदारता है, वहाँ भोजन-व्यवहार आदिके विषयमें तो अधिक आशा ही क्या की जा सकती है। पण्डित महाशय कहा करते हैं कि किसीको जैन बनानेके बाद यह आवश्यक नहीं है कि उसे हम अपनी जातिमें भी मिलालें या उसके साथ भोजनादि सम्बन्ध भी करें। उसे जैनधर्म प्यारा हो अपने आत्माका कल्याण करना हो तो जैनधर्म ग्रहण करले, नहीं तो उसकी इच्छा। ठीक है, आपको तो आवश्यकता नहीं है, पर उसे तो आवश्यकता पड़ेगी—उसे तो अपने बाल-बच्चोंके विवाहादि करने होंगे। इधर आप तो उसे अपनेमें शामिल करेंगे नहीं और उधर उसकी जातिवाले उसे जातिच्युत कर ही देंगे तब उसकी क्या गति होगी? और जब तक यह परिस्थिति है तब तक यह कैसे आशा की जा सकती है, कि आप हर महीने सातसौ मनुष्योंको जैन बना सकेंगे।

इस समय जितने नये ईसाई बनते हैं वे प्रायः नीच जातियोंमेंसे और गोंड भील आदि जंगली जातियोंमेंसे बनाये जाते हैं। इनका बनाना सहज भी होता है। क्योंकि इनका पहले कोई ऐसा धर्म नहीं रहता है जिसका इन पर अधिक प्रभाव हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे पण्डित लोग चाहें और उद्योग करें तो इनमेंसे जैन भी बहुतसे बन सकते हैं, पर क्या ये उनकी अपने पर छाया पड़ने देना भी पसन्द करेंगे ? यदि बहुत उदारता हुई तो कह देंगे कि जैनधर्म पालो मन्दिरके शिखरों परकी प्रतिमाओंके दर्शन करो, हमसे दस हाथ दूर खड़े रहो बस। पर क्या इस समय इन सब तिरस्कारोंको सहन करके भी कोई किसी धर्मको ग्रहण करनेके लिए तत्पर हो सकता है। लोग केवल धर्म ही नहीं चाहते हैं धर्मके साथ प्रेमकी भी उनके हृदयमें आकांक्षा रहती है।

एक बात और है। यदि प्रति दस वर्षमें हमारी संख्यामें ८६ हजारकी कमी होती गई तो अनुमान ११० वर्षमें इन पुराने जैनोंका तो सर्व नाश हो जायगा, अब रहे नये जैन जो कि जाति-पाँतिका खयाल रक्खे बिना चाहे जिस जातिमेंसे बनाये जायँगे। सो जब इनकी संख्या काफी हो जायगी, तब इनके लिए जाति-बिरादरीकी क्या व्यवस्था की जायगी ? यदि इन्हें हमने अपनी जातिमें न मिलाया, ये मन्दिर पूजा आदिसे दूर ही रक्खे गये तब तो एक सौ दस वर्षके बाद तमाम मन्दिरोंके ताले लगा देना पड़ेंगे और कहना होगा कि पूजाधिकारी जैनसमाजका लोप हो गया। और यदि उनकी भी वर्तमान जातियोंके समान जुदी जुदी जातियाँ बना दीं, एक दूसरेसे उन्हें न मिल जाने दिया, तो फिर वर्तमान जैनोंके ही समान उनकी भी संख्या घटने लगेगी और उनकी भी कालरात्रि शीघ्र आ जायगी।

गरज यह कि ये सब बातें अविचारितरम्य हैं। जब तक वर्तमान जैनोंकी संख्या घटनेके कारण निष्पक्ष होकर न ढूँढ़े जायँगे और उन कारणोंके दूर करनेका प्रयत्न न किया जायगा तब तक जैनसमाजके लुप्त होनेका भयंकर संकट नहीं टल सकता।

४ सम्मेदशिखरजीके मामलेकी अपील।

हमारा विश्वास था कि हजारीबागके मजिस्ट्रेटने शिखरजीके मुकद्दमेका जो फैसला किया है, उससे हमारे दिगम्बरी भाई सन्तुष्ट हो जायँगे और जो कुछ हक उन्हें मिले हैं, उन्हींमें संतोष करके वे अपील न करेंगे। समाजके दस पाँच अगुओंकी भी राय सुनी गई थी कि अब अपील न करनी चाहिए। जैनगजटके वर्तमान सम्पादक महाशयकी भी राय अपील करनेकी नहीं थी; फिर भी सुनते हैं कि एक दो सज्जनोंके जोर लगाने पर अपील करना निश्चित हो गया है और शायद वह दायर भी हो चुकी है। कहा जाता है कि मुकद्दमेकी केवल नकलोंके तैयार करानेमें ही लगभग १२–१३ हजार रुपया खर्च होगा! यदि १०–१२ हजार रुपया ही और लगे, तो कमसे कम २५ हजार रुपया और भी इस मामलेमें खर्च हो जायँगे। जिनके हृदय है और जो देशकी दुर्दशाको जानते हैं, उन्हें इस बातसे अवश्य ही दुःख होगा।

५ आन्दोलनके सम्बन्धमें आक्षेप।

तीर्थोंके झगड़े मिटानेके लिए जो आन्दोलन शुरू किया गया है, उसके विषयमें अभी अभी सत्यवादी, जैनगजट, आदिमें कई लेख प्रकाशित हुए हैं। इन लेखोंके पढ़नेसे यह मालूम होता है कि लेखक महाशय बहुत ही उत्तेजित हो उठे हैं और इस कारण उन्होंने बहुतसे ऐसे आक्षेप कर डाले हैं जो भ्रम पैदा करनेवाले हैं। इस आन्दोलनका मुख्य उद्देश्य यह है कि श्वेताम्बरी और दिगम्बरियोंके बीचमें जो जगह जगह झगड़े होते हैं और मुकद्दमे चलकर लाखों रुपया बरबाद होते हैं वे न होवें और दोनोंमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वेष-भावकी वृद्धि न होकर प्रेम-भावकी वृद्धि हो। केवल एक शिखरजीके मामले तक ही इस आन्दोलनकी सीमा परिमित नहीं है; किन्तु जितने भी तीर्थ हैं और जहाँ कहीं ये झगड़े खड़े हुए हैं, वे सब शान्त कराये जायँ। आन्दोलन करनेवाले अपना कर्तव्य समझते हैं कि दोनों संप्रदायके लोगोंको मुकद्दमे न लड़नेके लिए समझावें और जो मुकद्दमा चल रहे हों, यदि बन सके तो उनको आपसमें पंचायत आदिके द्वारा तै करनेके लिए प्रेरणा करें। वे जिस प्रकार दिगम्बरियोंको समझाते हैं उसी प्रकार श्वेताम्बरियोंको भी समझावें। पाठकोंको शायद मालूम होगा जैनहितेच्छुके दिसम्बरके लगभग १०० पृष्ठके अंककी जिसमें कि केवल तीर्थोंके झगड़े शान्त करनेके सम्बन्धमें ही सब लेख हैं—साढ़े पाँच हजार कापियाँ निकाली गई हैं और उनका अधिक भागश्वेताम्बर समाजमें ही फैलाया गया है। ऐसी दशामें आन्दोलन करनेवालों पर यह आक्षेप करना कि वे दिगम्बरियोंको ही समझाते हैं श्वेताम्बरियों नहीं—अनुचित है। यह हम मानते हैं कि शिखरजीका यह मुकद्दमा श्वेताम्बरियोंकी अनुचित और अन्याय्य आकांक्षा के कारण चला है—उनका यह चाहना कि दिगम्बरियोंको हमारी इजाजतके बिना पूजा करनेका हक न मिलना चाहिए सर्वथा अन्याय्य है; परन्तु समझानेवालेके लिए यह कार्य लाभकारी नहीं है कि वह किसी एक पक्षका दोष बतलावे और इस तरह उसे चिढ़ा देवे। उसका काम तो झगड़ेकी हानियाँ और आपसमें मेल रखनेकी भलाइयाँ बतलानेमें ही सफल हो सकता है। आन्दोलनके लेखोंमें यह भी बतलाया गया है कि धर्मके कार्योंके लिए आपसमें लड़ना अधर्म है, पर इसका अर्थ लोगोंको यह समझाया गया कि आन्दोलन करनेवाले सबको स्थानकवासी बना देना चाहते हैं। और उनकी दृष्टिमें धर्म-तीर्थोंकी रक्षा करना आवश्यक ही नहीं है। लोगोंको यहाँ तक सुझाया गया है कि श्वेताम्बरोंका पक्ष कमजोर है, इस लिए यह आन्दोलन उन्हींने इन लोगोंके द्वारा कराया है। पर वास्तवमें आन्दोलन करनेवालोंके साथ यह बड़ा भारी अन्याय किया जाता है। उनकी बात मानना न मानना, यह हमारे अधिकारमें है, पर कमसे कम उनके सदाशयको तो सदाशय ही समझना चाहिए। तीर्थोंके झगड़े शान्त हों या नहीं, आपसमें मेल होना संभव हो या न हो, शान्त करनेके जो उपाय बतलाये गये हैं वे ठीक हों या न हों पर इसमें तो कोई भी सन्देह नहीं है, झगड़ोंकी शान्तिका आन्दोलन उच्च और पवित्र आशयसे शुरू किया गया है। आन्दोलन करनेवालोंको कुछ अप्रिय सत्य भी लिखना पड़ा है, पर वह केवल उन्हीं लोगोंके लिए जो कि मुकद्दमा लड़नेको धर्म प्रतिपादन करते हैं—और जिन्होंने झगड़े शान्त करनेके लेखमें सही करनेवालोंको धर्मशून्य, खाद्याखाद्य-विचार-हीन, भ्रष्ट आदि शब्दोंमें याद किया था; जो अपनी रक्षाके लिए लाचार होकर मुकद्दमा लड़ते हैं उनके लिए नहीं।

इस आन्दोलनको तब तक जारी रखनेकी आवश्यकता है जब तक दिगम्बर और श्वेताम्बरोंके बीचमें एक छोटा सा भी मामला या झगड़ा चलता रहे। यदि यह बराबर जारी रक्खा जायगा और समाज इसमें योग देगा तो हमारा विश्वास है कि जैनसमाजका इससे बहुत बड़ा उपकार होगा। ये आपसी झगड़े हमारी शक्तिको घुनकी तरह नष्ट कर रहे हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६ भारत-जैनमहामण्डलका अधिवेशन।

इस वर्ष महामण्डलका वार्षिक अधिवेशन ता० २७ और ३० दिसम्बरको लखनऊमें हुआ। सभापतिका आसन खण्डवेके वकील बाबू माणिचन्दजी बी. ए. एल एल. बी. ने सुशोभित किया था। हमको आशा थी कि इस वर्ष मण्डलका अधिवेशन बम्बईकी अपेक्षा अधिक सफलतासे होगा; परन्तु हमारा यह केवल भ्रम ही निकला। बहुत ही कम लोग उसमें शामिल हुए और सभापतिके महत्त्वपूर्ण व्याख्यानके सिवाय वहाँ और कुछ भी न हो सका। इससे मालूम होता है कि मण्डलके साथ लोगोंकी सहानुभूति बहुत ही कम है। और तो क्या उसके शिक्षित सभासदोंकी भी उसके प्रति प्रीति नहीं है। साधारण जनताको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए वह ओई प्रयत्न नहीं करता है। उसका मुख पत्र अँगरेजीमें है, अत एव जो अँगरेजी नहीं जानते वे उसके उद्देश्योंसें अपरचित हैं, बल्कि मण्डलके विरोधियोंके लेखोंको पढ़कर उसके विषयमें उनके कुछ विरुद्ध खयाल भी हो रहे हैं जिनके दूर करनेका कोई प्रभावशाली उद्योग नहीं किया जाता। जीवदयाके ट्रेक्टोंको छोड़कर मण्डल कोई ऐसा बड़ा काम भी नहीं कर रहा है जिससे उसकी और लोगोंका चित्त आकर्षित हो। हमारी समझमें मण्डलकी यह शिथिलता जैन समाजके शिक्षित-सम्प्रदायकी शोभाकी चीज नहीं है। यह बतलाती है कि हमारे शिक्षित भाइयोंमें न समाज-सेवा करनेका उत्साह है और न वे काम करना ही जानते हैं। इसे मिटाना चाहिए और कर्मवीर बनानेवाली पाश्चात्य शिक्षाका मुख उज्ज्वल करना चाहिए।

मण्डलके उद्योगसे कांग्रेसके समय एक काम बहुत अच्छा हो गया। वह यह कि ता० २५ दिसम्बरको उसने एक बड़ी भारी आम सभा कराई, जिसके सभापति 'बाम्बे क्रानिकल' के सम्पादक मि० हार्निमन हुए और उसमें महात्मा गाँधी, मि० पोलक मि० विभाकर बैरिस्टर आदिके जीवदया और अहिंसा पर कई प्रभावशाली व्याख्यान हुए।

इस सभामें लगभग ४ हजार श्रोता उपस्थित हुए थे। ता० २६, २८, और २९ को कुँवर दिग्विजयसिंह, बाबू प्रभुरामजी खत्री, और ब्रह्मचारी भगवानदीनजीके जैनधर्म सम्बन्धी व्याख्यान हुए। पं० अर्जुनलालजी सेठी, समाज-सुधार और तीर्थोंके झगड़े मिटानेके सम्बन्धमें भी कुछ प्रस्ताव पास हुए।

७ भद्रबाहुसंहिताकी समालोचना।

इस अंकमें संहिताकी समालोचना समाप्त हो गई। जिन पाठकोंने बड़ी समझकर इसे न पढ़ी हो उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे एक बार तीनों लेखोंको एकत्र करके अवश्य पढ़ जायँ और फिर विचार करके देखें कि उनके हृदयमें संहिताके लिए और कितनी श्रद्धा अवशेष है। यह भी सोचना चाहिए कि इस प्रकारके ग्रन्थोंकी इस प्रकारकी आलोचनायें प्रकाशित करनेकी कितनी आवश्यकता है। हम चाहते है कि हमारे पाठक इस आलोचनाके सम्बन्धमें अपनी अपनी सम्मति भेजनेकी कृपा करें, जिन्हें हम प्रकाशित कर सकें और जैनपत्रोंके सम्पादक महाशय अपने पत्रोंमे इस विषयकी चर्चा करें जिससे कोई भी जैनी इस ग्रन्थकी अप्रमाणिकतासे अजान न रहे। इस लेखको हमने स्वतंत्र पुस्तकाकार भी छपाया है। मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है। प्रचार करनेके लिए जो महाशय चाहें मँगा लेवें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ कमजोरीकी हद !

यह कहनेमें हमें कोई इन्कार नहीं है कि ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी निःस्वार्थ भावसे समाजकी मौलिक सेवा करते आ रहे हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि समाजसेवा ही आपके जीवनका महाव्रत होगया है। और आपकी इस सेवाका हमारे हृदयमें अत्यधिक आदर भी है; पर साथ ही यह देखकर बड़ा ही विस्मय होता है कि आप जैसे निस्स्वार्थ सेवकोंके हृदय इतने दुर्बल–इतने कमजोर क्यों हैं ! जिसके कारण कि न आप कोई बात स्पष्ट कह सकते हैं और न स्पष्ट लिख ही सकते हैं। हमने बीसियों बार देखा है कि जब जब आपको लिखने या कहनेका मौका आया है तब ही तब आप लिखने और बोलनेमें अपनी कलम और जबानको दबा गये हैं। या कुछ लिखा अथवा कहा है तो वह बड़े ही दबे भावोंसे। ब्रह्मचारीजीमें अनेक गुणोंको होते हुए भी हम उनकी इस नीतिको पसन्द नहीं करते। समाजके आप निस्वार्थ सेवक हैं–आपको उससे कुछ लेना देना नहीं–तब फिर आप अपने विचारोंके–जिनसे आप समाजका हित समझते हैं–कहनेमें या लिखनेमें क्यों हिचकिचाते हैं ? क्यों उन्हें साफ साफ नहीं लिखा करते ? यह दुरंगी पालिसी आप जैसे निस्वार्थ सेवियोंके पदके योग्य नहीं है। जो विचार आपके पवित्र और निस्वार्थ हृदयकी प्रेरणासे निकलते हैं–फिर वे कैसे ही हों, चाहे उनसे लोग नाराज हों या प्रसन्न–उन्हें निडर और निःसंकोच होकर ही आपको लिखना या कहना चाहिए। कारण हमारा विश्वास है कि आपके स्पष्ट और निर्भयताके साथ कहे हुए विचारोंसे समाजको जितना लाभ पहुँच सकता है उतना लाभ आपकी वर्तमान दुरंगी पालिसीसे कभी नहीं पहुँच सकता। बल्कि लोगोंको एक तरहका सन्देह होने लगता हैं; और फिर वे कुछ भी स्थिर नहीं कर पाते।

अच्छा, अब आप ही देखिए कि जैनहितेच्छुके दिसम्बरके अंकमें जो शिखरजीके मामलेका आपका पत्र प्रकाशित हुआ है, उसमें तो आपने साफ शब्दोंमें यह कहा है कि इस मुकद्दमेबाजीसे मैं जैनसमाज की बरबादी समझता हूँ; और इधर आप दिगम्बरियोंको कितने ही सज्जनोंकी अपील करनेकी राय न होने पर भी अपील करनेकी सलाह देते हैं—नहीं आग्रह करते हैं। यहाँ यह सवाल नहीं है कि आप अपने हकोंकी रक्षा न करें; किन्तु कहना है आपकी दुरंगी पालिसीके बाबत। यदि आप अपने हकोंकी रक्षा करनेके लिए मुकद्दमेबाजीको ही सत्य और अच्छा समझते हैं तो फिर आपको श्रीयुत बाडीलालजीको उस पत्रके लिखनेकी क्या अवश्यकता थी ? क्यों आपने बाड़ीलालजीको पत्र लिख कर उनके और–मुकद्दमेबाजीकी सलाह देकर दिगम्बरियोंके प्रशंसा-पात्र बननेकी महात्वाकांक्षा की ? आप समाजके निस्वार्थ सेवक हैं फिर आपको इस ऐसी गंगा-जमनी बातोंसे मतलब ! परन्तु नहीं; इन सब बातोंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि आपका मन बहुत ही कमजोर है, बहुत ही निःसत्व है, बहुत ही दुर्बल है ! और इसी कारण आपकी हिम्मत नहीं पड़ती कि आप जनताके सामने अपने पवित्र हृदयकी प्रेरणासे उत्पन्न हुए विचारोंको निर्भय होकर प्रगट कर सकें ! आश्चर्य है, नहीं; महा आश्चर्य है कि आत्माकी अनन्त बलशाली शक्ति पर आप सैकड़ों ही व्याख्यान दे चुके,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'अनुभवानन्द' और 'स्वसमरानन्द' जैसी पुस्तकें आपने लिख डालीं—दूसरोंको आपने बलशाली और जयी बननेका उपदेश अवश्य किया; परन्तु स्वयं आप अपने दुर्बल मन पर विजय न कर सके—अनुभवानन्द और स्वसमरानन्द आपके कुछ भी काम न आ सके ! महाराज, इस धृष्टताको क्षमा कीजिए, कारण संसार-पंक-लिप्त हम लोग आपको उपदेश करनेके लायक नहीं हैं; पर आपकी दया-जनक स्थिति हमें कहनेको बाध्य करती है। इसी कारण आज दो शब्द लिखना पड़े हैं। अन्तमें अनन्त बलशाली वीरप्रभुसे हम प्रार्थना करते हैं कि वे आपके दुर्बल—निस्सत्व हृदयको बल प्रदान कर जैनसमाजको एक सच्चे वीर, मनस्वी और 'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनां' के रूपमें आपका साक्षात् करावे !

—स०

८ सम्मेलनकी परीक्षामें जैन विद्यार्थी।

हिन्दी-साहित्यसम्मेलनकी परीक्षामें नीचे लिखे जैन विद्यार्थी इस वर्ष उत्तीर्ण हुए हैं, जिन्हें जैनग्रन्थरत्नाकरकी ओरसे बीस बीस रुपये (कुल १४० रु०) पारितोषिकमें दिये गये हैं:—

क्रमसंख्या	नाम.	पिताका नाम	ग्राम	श्रेणी
३५	मदनलाल	बुलाकीरामजी,	[illegible], आगरा	प्रथम
६९	दौलतराम	जोधराज[illegible],	मानपुरा (इन्दौर)	द्वितीय
७०	नानूराम	[illegible]	गरोठ (इन्दौर)	प्रथम
२२२	गोविंददास	बंशीधरजी	महरौनी (झाँसी)	द्वितीय
२२४	नन्दकिशोर	वृन्दावनजी	,, ,,	द्वितीय
२२५	निर्मलप्रसाद	ज्योतीप्रसादजी	सदर, झाँसी	प्रथम
३३४	मुख्तारसिंह	वृन्दावनजी	महरौनी (झाँसी)	द्वितीय

उपहारके ग्रन्थ।

पिछले अंकमें हमने '**मणिभद्र**' उपन्यासको इस वर्षके उपहारमें देनेकी सूचना दी थी; परन्तु पीछे वह विचार बदल गया और उसे पिछले वर्षके ग्राहकोंके लिए '**नमिराज**' के बदलेमें रखकर इस वर्षके ग्राहकोंके लिए '**मेवाड़-पतन**' नामक नाटक तैयार कराया गया। यह नाटक ग्राहकोंकी सेवामें जा ही रहा है, इस लिए इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। पढ़नेसे पाठक स्वयं जान लेंगे कि कैसा अपूर्व ग्रन्थ है। पिछले वर्ष एक उपहार दिया जा चुका था। उसके बाद एक सज्जनकी ओरसे '**नमिराज**' नामका उपन्यास देनेका भी विचार हुआ; परन्तु वह अब तक तैयार न हो सका, इस लिए उसके बदले मणिभद्र नामका जैन उपन्यास तैयार कराया गया। यह सचित्र है। पाठक इसे भी पढ़कर प्रसन्न होंगे। यह एक ऐसे धर्मात्मा और धनिक सज्जनकी ओरसे दिया जाता है जो जैनहितैषीके अतिशय प्रेमी हैं और जो आग्रह करने पर भी अपना नाम प्रकाशित करना उचित नहीं समझते हैं। जैन-हितैषी उनकी इस कृपाके लिए अतिशय आभारी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीवीतरागाय नमः ।

जैन-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय–बम्बईका

सूचीपत्र ।

खासकी छपाई हुई पुस्तकें ।

अनित्यभावना–श्रीपद्मनन्दि आचार्यका अनित्यपंचाशत । मूल और उसका अनुवाद । अनुवाद बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारने हिन्दी कवितामें किया है । शोक दुःखके समय इस पुस्तकके पाठसे बड़ी शान्ति मिलती है । मूल्य डेढ़ आना ।

अरहंतपासा केवली–पासा डालकर शुभ अशुभ जाननेकी रीति । मू० डेढ़ आना ।

आत्मानुशासन—बड़ा ही उत्तम और उपदेशपूर्ण ग्रन्थ है । इसका एक एक उपदेश, एक एक शिक्षा अमूल्य है । उनका हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ता है । यह एकबार पहले भी छपकर बिक चुका है, पर अबकी बार यह नये रूपमें छपाया गया है । पहले इसकी भाषा ढूँढाड़ी थी । पर अब यह नई हिन्दी भाषामें कर दिया गया है । इसे पढ़कर आत्मा बड़ी शान्ति लाभ करता है । बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है । अबकी बार कीमत भी कम रक्खी गई है । सादी जिल्द १॥।) पक्की जिल्द मू० दो रुपये ।

अंजनापवनंजय–खड़ी बोलीमें हिन्दीका सुन्दर काव्य, बढ़िया कागजपर मनोहर कव्हर सहित बहुत ही सुन्दरताके साथ छपवाया गया है । मूल्य ढाई आने ।

इष्टछत्तीसी—अर्थसहित । इसमें पंच परमेष्ठीके १४३ मूलगुणोंका वर्णन और तीन चौवीसीके नाम हैं । मूल्य आध आना ।

उपमितिभवप्रपंचा कथा--(प्रथमप्रस्ताव) महात्मा सिद्धर्षिके अद्वितीय मूल ग्रन्थका शुद्ध हिन्दी अनुवाद है । अनुवाद बहुत ही अच्छा हुआ है । कठिनसे कठिन विषयोंको सरलतासे समझानेवाला यह अपूर्व ग्रन्थ है। काव्यका काव्य है, सिद्धान्तका सिद्धान्त है और संसारका एक कथारूप चित्रका चित्र है । मूल्य बारह आने ।

उपमितिभवप्रपंचा कथा--(दूसरा प्रस्ताव) इसमें चतुर्गतिरूप संसारका वर्णन बड़ी खूबीके साथ किया गया है । मूल्य पाँच आने ।

कर्नाटक-जैनकवि--कर्नाटक देशमें जो नामी नामी जैन कवि हुए हैं उनका इसमें ऐतिहासिक परिचय दिया गया है । सब मिलाकर ७५ कवियोंका इतिहास है । बड़े महत्वकी पुस्तक है । मूल्य लागतसे भी कम आधा आना है ।

चरचाशतक--ज्ञानतरायजीका चरचाशतक सरल हिन्दी भाषाटीका सहित । बहुत ही अच्छा छपा है । चार नकशे भी दिये हैं । मूल्य ॥।)

छहढाला--दौलतरामकृत बड़े अक्षरोंमें ...)॥।

छहढाला--बुधजनकृत बड़े अक्षरोंमें ...

छहढाला--बावनअक्षरी ज्ञानतरायजी कृत ...

जिनेन्द्रपंचकल्याणक—(पंचमंगल) दो अभिषेकपाठ सहित । मूल्य एक आना ।

जिनेन्द्रगुणानुवाद पच्चीसी—मूल्य -)।

जैनपदसंग्रह दूसरा भाग–इस दूसरे भागमें स्वर्गीय कविवर भागचंदजी कृत जितने पद हमको मिले वे सब छपे हैं । मूल्य चार आने ।

जैनपदसंग्रह पाँचवाँ भाग--इस भागमें कविवर बुधजनजीके २५० के करीब पदोंका संग्रह है । बहुत शुद्धतापूर्वक छपाया है । मूल्य छह आने ।

जैनविवाह विधि--अबकी बार यह पुस्तक इस ढंगसे छपाई गई है कि मामूली पढ़ा लिखा आदमी इसके जरियेसे जैनविधिके अनुसार विवाह करा सकता है । प्रत्येक गृहस्थको यह पुस्तक मँगाकर रखना चाहिए । मूल्य पहलेकी अपेक्षा चौथाई अर्थात् सिर्फ तीन आने रक्खा है ।

तत्त्वार्थसूत्रकी बालबोधिनी भाषाटीका–यह टीका जैनधर्मके विद्यार्थियोंके लिए बनवाई गई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। यह भादोंमें बाँचनेके लिए भी बड़े कामकी है। साधारण भाई भी इससे सूत्रोंके अर्थ बांचकर समझ सकते हैं। रत्नकरंडके समान इसमें भी पद पदके अर्थ किये हैं। मूल्य ॥।≈) कपड़ेकी जिल्दका १≈)।

तत्त्वार्थसूत्र–(मोक्षशास्त्र) मूल शुद्ध पाठ। मूल्य डेढ़ आना।

दर्शनकथा–भारामल्लजीकृत। मूल्य तीन आने।

दर्शनपाठ––दौलतराम और बुधजन कृत दर्शन सहित। मूल्य एक आना।

दानकथा––(चार दानकथा) बखतावरमल रतनलालकृत। मूल्य दो आने।

द्रव्यसंग्रह––मूल गाथा, संस्कृत छाया, हिन्दी अन्वयार्थ और कविवर द्यानतरायजीकृत भाषा कविता सहित। चौथी बार छपाया गया है। पहिली वार प्रत्येक गाथाकी संस्कृत छाया नहीं थी वह अबकी बार लगा दी गई है। चतुर विद्यार्थी इसे विना गुरुके भी पढ़ सकता है। इस ग्रन्थमें जैनधर्मके मूलभूत छह द्रव्य नव पदार्थोंका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया है। मूल्य चार आने।

द्यानतविलास––(धर्मविलास) कविवर द्यानतरायजीकी फुटकर कविताओंका अपूर्व संग्रह। इसमें मंगलाचरण, उपदेशशतक, सुबोध पंचासिका, धर्म्मपच्चीसी, तत्त्वसारभाषा, दर्शनदशक, ज्ञानदशक, द्रव्यादि चौबोलपच्चीसी, व्यसनत्याग षोड़श, सरधा चालीसी, सुखबत्तीसी, विवेक बीसी, भक्ति दशक, धर्मरहस्य बावनी, दान बावनी, चार सौ छह जीव-समास, दशस्थल चौबीसी, व्यौहार पच्चीसी, आरती दशक, दशबोल पच्चीसी, जिनगुणमाला सप्तमी, समाधिमरण, आलोचनापाठ, एकीभाव स्तोत्र, स्वयंभूस्तोत्र, पार्श्वनाथ स्तवन, तिथिषोड़शी, स्तुतिबारसी, यतिभावनाष्टक, सज्जनगुण दशक, वर्तमान बीसी-दशक, अध्यात्मपंचासिका, अक्षरबावनी, नेमिनाथ बहत्तरी, वज्रदन्तकथा, आठगण छन्द, धर्मचाहगीत, आदिनाथस्तुति, शिक्षापंचासिका, जुगलआरती, वैराग्य-छत्तीसी, वाणीसंख्या, पल्लपच्चीसी, षटगुणी हानि-वृद्धि लाभ, पूरणपंचासिका इन सबका समावेश किया गया है। मूल्य एक रुपया। कपड़ेकी जिल्दका १।)।

धूर्ताख्यान––धर्मपरीक्षाके ढंगका यह नवीन ग्रन्थ एक संस्कृत ग्रन्थके आधारसे हिन्दीमें लिखा गया है। इसमें पुराणोंकी पोलें एक मजेदार कथाके साथ खोली गई हैं। नामी नामी धूर्तोंकी बातें सुनकर आप चकरावेंगे और कहेंगे कि ये पुराण हैं या किसी मसखरेकी लिखी हुई किताबें हैं। छपाई बहुत सुन्दर है। आप पढ़िये और अपने पौराणिक मित्रोंको सुनाइये। मूल्य सिर्फ तीन आने।

निशिभोजन कथा––मूल्य दो आने।

निर्वाणकाण्ड–मूल गाथा, संस्कृत छाया, भाषा कविता और महावीर पूजा सहित। मूल्य एक आना।

नित्यनियमपूजा संस्कृत तथा भाषा––इसमें नीचे लिखे पाठ छपे हुए हैं:––लघुअभिषेकपाठ संस्कृत, नित्यपूजा संस्कृत प्राकृत, देवगुरुशास्त्रकी भाषा पूजा, बीसतीर्थंकर पूजा, अकृत्रिमचैत्यालयोंके अर्घ संस्कृत प्राकृत, सिद्धपूजा संस्कृत, सिद्धपूजाका भावाष्टक, सोलहकारणादिक अर्घ, पंचपरमेष्ठीकी जयमाला प्राकृत, शान्तिपाठ संस्कृत, विसर्जन संस्कृत, और भाषास्तुतिपाठ। प्रायः बहुतसे लोग इनके उलटे सीधे पाठ वा द्रव्य चढ़ानेके मंत्र अशुद्धतासे पढ़ते थे। इस कारण हमने बहुत शुद्धतासे अनेक प्राचीन प्रतियोंसे शुधवाकर इसे छपवाई है। मूल्य चार आने।

नियमसार–आचार्य कुन्दकुन्द भगवान् कृत। यह ग्रन्थ अभी तक अलभ्य था। किसीको इसका नाम भी मालूम न था। यह समयसार, प्रवचनसार आदिके ही समान अध्यात्मका प्राकृत गाथाबद्ध ग्रन्थ है। इस पर निर्ग्रन्थ मुनि श्रीपद्मप्रभमलधारीकी संस्कृत टीका है जो साथ ही छपी है और सर्वसाधारणके समझनेके लिए जैनमित्रके सम्पादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी बनाई हुई भाषाटीका भी शामिल कर दी गई है। मूल्य कपड़ेकी जिल्दका दो रुपया और सादीका पौने दो रु०।

नेमिचरित––या नेमिदूत काव्य। यह संस्कृतमें है और महाकवि कालिदासके मेघदूतके चौथे चरणोंकी समस्यापूर्ति करके रचा गया है। बहुत ही सुन्दर काव्य है। इसमें भगवान् नेमिनाथ और राजीमतीका पवित्र चरित्र ग्रथित किया गया है। साथमें भाषाटीका भी है जो बहुत सरल और सुन्दर भाषामें लिखी गई है। मूल ग्रंथकर्ता कविवर विक्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मका परिचय बड़ी खोजके साथ लिखा गया है। मूल्य साढ़े चार आने।

न्यायदीपिका–न्यायका अपूर्व ग्रंथ है। साथमें सरल भाषाटीका भी लगा दी गई है। न्याय सीखनेवालोंके लिए बहुत उपयोगी है। मूल्य बारह आने।

परमार्थजकड़ी संग्रह–इसमें कविवर दौलतराम, भूधरदास, रूपचंद, जिनदास, रामकृष्ण, दरिगहमल और शाहणू रचित वैराग्यकी १५ जकड़ियोंका संग्रह है। मूल्य डेढ़ आना।

प्रवचनसार परमागम—श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके नाटकसमयसारकी कविता करके जिस तरह कविवर बनारसीदासजीने यश प्राप्त किया है, उसी प्रकारसे काशीनिवासी कविवर वृंदावनजीने प्रवचनसार परमागम (कुन्दकुन्दकृत) की कविता करके नाम कमाया है। इसमें कवित्त सवैया आदि छन्दोंमें अध्यात्मके गूढ़तत्त्वोंका बड़ी सुन्दरतासे वर्णन किया है। कविवरकी खास हाथकी लिखी हुई प्रतिसे संशोधन करके यह ग्रंथ छपाया गया है। मूल्य सिर्फ सवा रुपया।

प्राणप्रिय-काव्य–यह सुन्दर और सरस काव्य प्रत्येक सहृदयको पढ़ना चाहिए। भक्तामरके चौथे चरणोंकी समस्यापूर्ति की गई है और उसमें नेमिनाथ और राजीमतीका सरस चरित्र निबद्ध किया गया है। मूल्य दो आने।

पंचेन्द्रिय सम्बाद–इस पुस्तकमें पाँचों इन्द्रियोंने अपनी अपनी श्रेष्ठता अच्छी अच्छी युक्तियोंसे सिद्ध की है। मूल्य एक आना।

बनारसीविलास–इसमें आगरानिवासीस्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीके ज्ञानबावनी, सूक्तमुक्तावली आदि अनेक **ग्रंथरत्नोंका** संग्रह है। इसके प्रारंभमें ११३ पृष्ठोंमें ग्रंथकर्त्ता कविवर बनारसीदासजीका सविस्तर जीवनचरित्र भी दिया गया है। हिन्दीमें इतना सच्चा और बड़ा जीवनचरित्र आजतक किसी भी कविका प्रकाशित नहीं हुआ है। मूल्य १॥) रुपया। रेशमी जिल्दका दो रुपया।

बालबोध जैन धर्म चौथा भाग-मूल्य पाँच आने।

विनती संग्रह–इसमें छोटी बड़ी २४ विनतियोंका संग्रह है। मूल्य तीन आने।

वृंदावनविलास—इस ग्रंथमें काशीनिवासी कविवर बाबू वृंदावनजीके संकटमोचन, कल्याणकल्पद्रुम आदि मनोहर स्तोत्रों, अनेक प्रकारके पदों, फुटकर कविताओं, जयपुरके पंडित जयचन्द्रजी, दीवान अमरचन्द्रजी आदि महाशयोंके साथ किये हुए प्रश्नोत्तरों और गद्यपद्यबद्ध चिट्ठियोंका संग्रह है। साथ ही हिन्दीके एक अद्वितीय पिंगल ग्रन्थका संग्रह है, जो कि छन्दशतकके नामसे प्रसिद्ध है। ग्रन्थके प्रारंभमें कोई ३२ पृष्ठोंमें कविवरका जीवनचरित्र और उनके ग्रन्थोंका परिचय दिया है। मूल्य बारह आने।

भक्तामरस्तोत्र—अन्वय, हिन्दी अर्थ, भावार्थ और नवीन भाषापद्यानुवाद सहित। इसमें रत्नकरंडके समान पहले प्रत्येक श्लोकका अन्वयानुगत पदार्थ लिखकर फिर प्रत्येकका भावार्थ लिखा है। पश्चात् हरिगीतिका और नरेन्द्रछन्दमें उसकी सुन्दर कविता बनाई गई है। मूल्य चार आने।

भक्तामर स्तोत्र—हेमराजजीकृत कविता और मूल सहित। मूल्य एक आना।

भाषापूजासंग्रह—अबकी बार इसमें जितनी पूजायें और शान्ति विसर्जन अभिषेक आदि पाठ हैं, वे केवल भाषामें ही रक्खे हैं। संस्कृत प्राकृतका कोई भी पाठ नहीं है। विशेष खूबी यह है कि, प्रत्येक स्थानमें स्थापना आव्हानादिके मंत्र शुद्धतापूर्वक लिख दिये गये हैं। क्योंकि पूजाका सच्चा फल तब ही मिलता है, जब वह शुद्ध मंत्रोच्चारण सहित की जावे। नीचे लिखे भाषापाठ हैं—अभिषेकपाठ, पंचामृताभिषेकपाठ, देवशास्त्रगुरुपूजासमुच्चय, बीसविहरमानपूजा, देवपूजा, सरस्वतीपूजा, गुरुपूजा, कृअत्रिमचैत्यालयपूजा, सिद्धचक्रपूजा, पंचमेरुपूजा, नन्दीश्वर, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय और निर्वाणक्षेत्रपूजा, समुच्चयचौवीसीपूजा, स्वयंभूस्तोत्र, सप्तर्षिपूजा, शान्तिपाठ विसर्जनपाठ, स्तुतिपाठ आदि सब भाषाके पाठ हैं। मूल्य आठ आने।

भूधरजैनशतक—कविवर भूधरदासजीके यों तो सब ही ग्रन्थ उत्तम हैं, परन्तु इस जैनशतकमें तो उन्होंने कमाल कर दिया है। इसका एक एक कवित्त सवैया अमूल्य और प्रत्येक पुरुषके कंठ करने योग्य है। टीकाके स्थानमें कठिन २ शब्दोंकी टिप्पणी दी है। मूल्य ढाई आने।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनोरमा उपन्यास—हिंदीके प्रसिद्ध लेखक आरानिवासी बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीने शीलकथाके आधारसे उपन्यासकी सुन्दर रसीली भाषामें यह पुस्तक लिखी है। प्रत्येक स्त्रीपुरुष, और बालकके पढ़ने योग्य है। मू० आठ आने।

मुनिवंशदीपिका—नयनसुखजीकृत प्राचीन आचार्योंका चरित। मू०)॥

मृत्युमहोत्सव—सदासुखजी कृत वचनिका और दो तरहके समाधिमरण सहित। मू० दो आने।

मोक्षमार्गप्रकाश–भाषा वचनिकामें अभी तक जैनधर्मके जितने ग्रन्थ बने हैं, उनमें मोक्षमार्गप्रकाश सर्वोपरि है। यह किसी मूलग्रन्थका अनुवाद अथवा टीका नहीं है, किन्तु एक आचार्यतुल्य विद्वानकी स्वतंत्र रचना है। गहनसे गहन विषयोंका इसमें बड़ी ही मार्मिकता और सरलतासे निरूपण किया है। कर्मोंका स्वरूप और उनका परिणाम, संसार अवस्थाके दुःख, रत्नत्रय तथा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचरित्रका स्वरूप, अद्वैतवादी, कर्तावादी, नैयायिक आदि जुदा २ मतोंका खंडन, कुगुरु, कुदेव, कुधर्मका स्वरूप और निषेध, तीन प्रकारके जैनाभासोंका स्वरूप, चारों अनुयोगोंका एक विलक्षण ही प्रकारका निरूपण, और मोक्षमार्गका स्वरूप आदि विषयोंका इसमें खूब ही विस्तारसे वर्णन किया है। ५०० पृष्ठका बहुत ही सुन्दरतासे छपा हुआ ग्रन्थ है। संशोधन बहुत ही बारीकीसे किया गया है। पहली बार छपा था, उसमें भाषामें बहुत कुछ फेरफार कर दिया था, परन्तु अबकी बार ज्योंका त्यों पुरानी भाषामें ही छपाया गया है। मूल्य पहले तीन रुपये रक्खा गया था। अबकी बार सिर्फ १॥।) और कपड़ेकी जिल्दका २) रुपये है।

रत्नकरंडश्रावकाचार सान्वयार्थ—प्रत्येक जैनी विद्यार्थीको सबसे पहले यही धर्मशास्त्र पढ़ाया जाता है। इस ग्रन्थके सिर्फ १५० मूल श्लोक हैं। पहले मूल श्लोक, पीछे अन्वयपूर्वक संस्कृत पदोंको कोष्टकमें रखकर भाषामें अर्थ किया है। कठिन श्लोकोंका भावार्थ भी दिया है। मूल्य चार आने।

शिखरमाहात्म—भाषा वचनिकामें। मूल्य एक आना।

शीलकथा—भारामल्ल कृत। मूल्य चार आने।

श्रावकधर्म संग्रह—अनेक श्रावकाचारोंका विचार और मनन करके श्रीयुत मास्टर दरयावसिंह सोधियाने इस ग्रन्थको नये ढंगपर लिखा है। अनेक पुराने और नये विषयोंपर बड़े परिश्रमके साथ इसमें विचार किया गया है। इसका स्वाध्याय करनेसे श्रावकाचारकी जानने योग्य अनेक बातें ज्ञात हो सकेंगी। कीमत कपड़ेकी पक्की जिल्दका सवा दो रुपये।

सप्तव्यसन चरित्र—यह २२५ पृष्ठका ग्रन्थ है। इसमें सातों व्यसनोंकी सात कथायें हैं और ऐसी सरल हिन्दी भाषामें लिखी हैं कि, साधारण पढ़े लिखे स्त्रीपुरुष अच्छी तरहसे समझ सकते हैं। कथायें खूब विस्तारसे हैं। पांडवचरित्र, चारुदत्तचरित्र, रामचरित्र, और कृष्णचरित्र तो एक प्रकारसे चार जुदे २ पुराण हैं। छपाई बहुत ही अच्छी है। मूल्य केवल चौदह आने।

समाधिमरण—दो तरहका। मूल्य एक आना।

सज्जनचित्तवल्लभ—यह ग्रन्थ कई वर्ष पहले छपा था, किन्तु अब कई वर्षोंसे नहीं मिलनेके कारण फिरसे छपाया गया है। इसमें मूल पद्य उसके नीचे स्वर्गीय पं० मिहरचन्दजीका पद्यानुवाद, और सरल अर्थ है। अन्तमें यती नयनसुखजीका बनाया हुआ पद्यानुवाद भी लगाया गया है। वैराग्यका मनोहर ग्रन्थ है। मूल्य दो आने मात्र।

सामायिक पाठ और आलोचना पाठ—मूल्य एक आना।

सामायिकपाठ–आचार्य अमितगतिकृत मूल श्लोक और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादकृत भा० टी० सहित। मूल्य एक आना।

सूक्तमुक्तावली—श्रीसोमप्रभाचार्यकी सूक्तमुक्तावली जिसका प्रत्येक श्लोक कंठ करने लायक है, और जो सचमुच ही मोतियोंकी माला है, फिरसे छपकर तैयार है। अबकी बार यह पाठशालाके विद्यार्थियोंके बहुत ही कामकी बन गई है। क्योंकि इस संस्करणमें पहले मूल श्लोक, फिर कविवर बनारसीदास और कँवरपालजीका पद्यानुवाद और अन्तमें अन्वयानुगत हिन्दी भाषाटीका (रत्नकरंडके समान) तथा भावार्थ छपाया गया है। मूल्य छह आने।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानसूर्योदयनाटक-श्रीवादिचन्द्रसूरिके संस्कृत ग्रन्थका सुन्दर सरल हिन्दी अनुवाद जैनहितैषीके सम्पादक श्रीनाथूराम प्रेमीने गद्यका गद्यमें और पद्यका पद्यमें किया है। यह अध्यात्मका नाटक है। इसमें पुरुषके सुमति और कुमति स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए, प्रबोध, विवेक, संतोष, तथा मोह, क्रोध, लोभ आदि पुत्रोंकी लड़ाई हुई है और अन्तमें प्रबोधकी विजय होकर आत्मा मुक्त हो गया है। मूल्य आठ आने।

ज्ञानदर्पण—पं० दीपचन्दजी शाह एक अच्छे आध्यात्मिक पंडित और कवि हो गये हैं। यह ग्रंथ उन्हींका बनाया हुआ है। कविता बनारसीदासजीके नाटक समयसारके ढंगकी है। शुद्धनयका कथन है। प्रत्येक अध्यात्मप्रेमीको मगाँना चाहिए। अभी तक यह ग्रन्थ बिलकुल अप्रसिद्ध था। मूल्य चार आने।

दूसरोंकी छपाई पुस्तकें।

अकलंकचरित्र—अकलंकस्तोत्र और अकलंकदेवका जीवनचरित्र और हिंदी पद्यानुवाद भी साथमें लगा हुआ है, जो कि खड़ी बोलीकी कवितामें हरएकके समझमें आने योग्य और सुन्दर है। मूल्य तीन आने।

अठारहनाते-यति नयनसुखदासजीकी फड़कती हुई कवितामें दुराचारसे एक ही भवमें होनेवाले अठारहनातोंका वर्णन है। मूल्य एक आना।

अनुभवप्रकाश--यह पंडित दीपचन्द शाहका बनाया हुआ है। यह वचनिकामय है। इसमें शुद्धात्मानुभवका विवेचन है। इसके स्वाध्यायसे आत्माको बड़ी ही शान्ति मिलती है। एक दक्षिणी धर्मात्माने प्रकाशित कराया है। मूल्य प्रायः लागतके लगभगका अर्थात् छह आने है।

आराधनाकथाकोश—छन्दोबद्ध। इसमें कई आचार्यों और राजाओंकी कथायें हैं। मूल्य ३॥ रुपया।

आराधनाकथाकोश--ब्रह्मचारी नेमिदत्त कृत मूल और पं० उदयलाल काशलीवाल कृत हिन्दी भाषाटीका सहित। मूल्य पहला भाग १।) दूसरा भाग १।=), तीसरा भाग १॥)।

आप्तपरीक्षा—मूल और भाषाटीका सहित। मूल्य पाँच आने।

आलोचना पाठ-अर्थसहित। मूल्य -)। मात्र।

अंजनासुन्दरी नाटक--बाबू कन्हैयालाल श्रीमाल कृत। मूल्य आठ आने।

इन्द्रियपराजयशतक--मूल प्राकृत गाथायें और उसके नीचे भाषा कविता है। बड़ा ही उपदेश पूर्ण और वैराग्यमय ग्रन्थ है। इंद्रियोंपर विजय प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको पढ़ना चाहिए। हिन्दी कविता कंठ करने योग्य है। मूल्य दो आने।

ऋषिमंडलयंत्रपूजन--(मंत्रयंत्रसहित)--मंत्रशास्त्रका यह अपूर्व ग्रन्थ है। प्रसिद्ध "**विद्यानुशासन**" नामक ग्रन्थका साररूप श्रीगुणनंदि आचार्यने इसे रचा है। साथमें "**ऋषिमंडल यंत्र**" का नकशा भी है। मूल्य पाँच आना।

कल्याणमन्दिर--अन्वय, हिन्दी अर्थ, भावार्थ और नवीन भाषापद्यानुवाद सहित। इसमें भक्तामरके समान पहले प्रत्येक श्लोकका अन्वयानुगत पदार्थ लिखकर फिर प्रत्येकका भावार्थ लिखा है। मूल्य चार आने।

क्या ईश्वर जगत कर्त्ता है? मूल्य)॥

खंडेलवाल इतिहास—खंडेलवाल जातिकी ८४ जातियोंकी उत्पत्ति आदिका वर्णन है। मूल्य ढाई आने।

गोमट्टसार--कर्मकाण्ड मूल गाथा संस्कृत छाया और पं० मनोहरलाल शास्त्रीकृत भाषा टीका सहित। मूल्य दो रुपये।

गृहस्थधर्म—ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी कृत। प्रत्येक गृहस्थके बड़े कामकी पुस्तक है। मूल्य १=)।

चन्द्रप्रभचरित—महाकवि श्रीवीरनन्दि आचार्य कृत—इसमें आठवें तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभु भगवान्का विस्तृत चरित लिखा गया है और प्रसंगानुसार वैराग्य, शृंगार वीर आदि सभी रसोंका वर्णन किया है। अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है। पाठक पढ़कर खुश होंगे। कीमत सादी जिल्दका एक रुपया और पक्की जिल्दका सवा रुपया।

जिनशतक—श्रीमत्समंतभद्राचार्य विरचित मूल और नरसिंहभट्ट कृत संस्कृत टीका तथा पं० लालारामजी कृत भा० टी० सहित। मूल्य बारह आने।

जिनेन्द्र पंचकल्याणक--(पंचमंगल) जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जानेके लिए यह पुस्तक तैयार की गई है। पहले मंगलपाठ फिर कठिन कठिन शब्दोंका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ, फिर सरल भावार्थ, इसके बाद प्रश्नावली है। प्रत्येक मंगलके अन्तमें उसका सार भाग भी दे दिया है। अर्थ कई विद्वानोंकी सम्मतिसे लिखा गया है। मूल्य तीन आने।

जिनेन्द्रगुणगायन—अनेक कवियोंके नई तर्जके ८० पद और भजनोंका संग्रह। मूल्य दो आने।

जिनेन्द्रमतदर्पण—जैन धर्मकी प्राचीनताको सिद्ध कर दिखानेवाली इस छोटीसी पुस्तकका मूल्य सवा आना। दूसरा भाग मूल्य चार आने।

जैनार्णव—नित्य पाठ करने योग्य एक सौ पाठोंका उत्तम संग्रह। मूल्य सादीका १) कपड़ेकी जिल्दका सवा रुपया।

जैननित्यपाठ संग्रह—संस्कृतके नित्य पाठ करने योग्य १६ स्तोत्रोंका संग्रह। रेशमी जिल्द। मूल्य छह आने।

जैनतीर्थयात्राविवरण—इसमें सर्व ही तीर्थ-क्षेत्रोंके मार्ग आदि तथा अन्य आवश्यकीय बातोंका पूरा खुलासा दिया गया है। साथमें भारतवर्षका नकशा और श्रीसम्मेदशिखरजी तथा गिरनारजीकी फोटो भी है। मूल्य छह आने।

जैनतीर्थयात्रादर्पण—इसमें समस्त जैनतीर्थोंका कुल हाल, और हिन्दुस्थान भरके जैन तीर्थोंका एक नकशा भी दिया गया है। इसके सिवा प्रसिद्ध नगरोंका विवरण और रेल्वे मार्गोंका खुलासा वर्णन है। मूल्य दो रुपये।

जैनस्तोत्ररत्नाकर—इसमें श्वेताम्बर भाइयोंके नित्यपाठ करने योग्य ९ स्मरण और ५ स्तोत्र हैं। मूल्य चार आने।

जैनसम्प्रदायशिक्षा—श्वेताम्बर धर्मोपदेष्टा यति श्रीपालचन्द्र रचित। यह बड़े महत्त्वका ग्रन्थ है, इसमें स्त्रीपुरुषोंके धर्म, संस्कार, आरोग्य रक्षाके नियम, देशी और अंगरेजी रीतिसे रोगोंके निदान और चिकित्सा, फल, तरकारी, कन्द और समस्त भोज्य पदार्थोंके गुण दोष और सैकड़ो जानने योग्य उत्तम उत्तम विषयोंका समावेश किया गया है। ८०० पृष्ठोंके उत्तम कपड़ेकी जिल्द बंधे हुए ग्रंथका मूल्य केवल ३॥)।

जैनधर्मका महत्त्व— ...मूल्य ≈)

जैननियम पोथी— ... ,,)॥

जैन जगदुत्पत्ति— ... ,,)॥

जैनजागरफी—स्यादवाद वारिधि पं० गोपालदासजी कृत जैन मतानुसार भूगोलका वर्णन। मूल्य दो आने।

जंबूस्वामी चरित—मास्टर दीपचंदजी उपदेशक रचित हिन्दी भाषामें। मूल्य चार आने।

दशलक्षणधर्म—पं० सदासुखदासजी कृत रत्नकरंड श्रावकाचारमें जो दशलक्षण धर्मका वर्णन किया गया है। उन्हीं दशलक्षण धर्मोंका इस पुस्तकमें वर्णन किया गया है। मूल्य पाँच आने।

दशलक्षणधर्मसंग्रह—दशलक्षणी पूजा, उसकी जयमाल और सदासुखजीकृत विस्तृत दशलक्षण धर्मके वर्णन सहित। मूल्य छह आने।

दिगम्बर जैन डाइरेक्टरी—समस्त भारतवर्षके दिगम्बर जैन भाइयोंकी गणना, प्रत्येक ग्रामके जैन मुखियोंके नाम, गृहसंख्या, मंदिर आदिका विवरण बहुत खोज और धनव्यय करके लिखा गया है। १५००पृष्ठकी महत्त्व पूर्ण पुस्तकका मूल्य आठ रुपये।

द्वादशानुप्रेक्षा—बारह भावना। श्रीयुत बाबू दयाचंदजीने श्रीस्वामी समन्तभद्राचार्य कृत रत्नकरंडश्रावकाचारकी भाषा वचनिकाके आधारसे लिखा है। संसारभोगोंसे विरक्त करनेवाली कुंजियाँ यह बारह भावनायें हैं। मूल्य छह आने।

द्रव्यानुयोगतर्कणा—इस ग्रंथमें शास्त्रकार श्रीमद्भोजसागरजीने सुगमतासे मन्दबुद्धिजीवोंको द्रव्यज्ञान होनेके लिए अथ, "गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" इस महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्रके अनुकूल द्रव्य—गुण तथा अन्य पदार्थोंका भी विशेष वर्णन किया है और प्रसंगवश 'स्यादस्ति' आदि सप्तभंगोंका और दिगंबराचार्यवर्य श्रीदेवसेनस्वामी विरचित नयचक्रके आधारसे नय, उपनय तथा मूलनयोंका भी विस्तारसे वर्णन किया है। मूल्य दो रु०।

धन्यकुमारचरित्र—श्रीसकलकीर्ति आचार्यके बनाये हुए संस्कृत धन्यकुमारचरित्रका यह हिन्दी अनुवाद पं० उदयलालजी काशलीवालने किया है। कथा बहुत रोचक है। इसमें दानकी महिमा दिखलाई है। भाषा सबकी समझमें आने योग्य है। मूल्य बारह आने।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मसंग्रहश्रावकाचार--अनुमान चार सौ वर्ष पहले मेधावी नामके एक बड़े भारी विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने अपने समय तकके विविध आचार्योंके रचे हुए श्रावकाचार ग्रन्थोंका अध्ययन एवं मनन करके और वर्तमानदेशकालके अनुसार आचारविषयक अनुभव संपादन करके विस्तारके साथ इस ग्रन्थकी रचना की है। भा० टी० उदयलालजी काशलीवालने की है। मूल्य दो रुपये।

धर्मरत्नोद्योत—आरा निवासी बाबू जगमोहनदासजी कृत यह कविता ग्रन्थ है। इसमें उपासना, प्रमाण, प्रमेय, भेदविज्ञान, उद्यमोपदेश, सुव्रतक्रिया, द्वादशानुप्रेक्षा, समाधिभावना और आराधना इस प्रकार नौ अधिकार हैं। मूल्य एक रुपया।

धर्मप्रश्नोत्तरश्रावकाचार—प्रश्नोत्तर रूपसे श्रावकाचारका वर्णन बहुत उत्तम तरहसे किया गया है। मूल्य दो रुपया।

धनंजयनाममाला—मूल मात्र। मूल्य सवा आना।

नागकुमार-चरित—नागकुमार कैसा कर्त्तव्य-परायण पुरुषरत्न था। कैसा परोपकारी और शूरवीर था, इस बातका बड़ी अच्छी तरहसे इस पुस्तकमें वर्णन है। कीमत छह आने।

परमात्मप्रकाश--यह ग्रन्थ योगीन्द्रदेव कृत प्राकृत दोहाओंमें है। उसके नीचे संस्कृत छाया है और उसके नीचे ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका है और संस्कृत टीकाके अनुसार हिन्दी भाषा टीका की गई है। अध्यात्मका अपूर्व ग्रन्थ है। मूल्य तीन रु०।

परमात्मप्रकाश—मूल प्राकृत दोहा और उसका सरल हिंदी अर्थ। मूल्य ।=) आने।

पवनदूतकाव्य—उज्जैनके राजा विजयनरेशकी स्त्री सुताराको एक विद्याधर हरकर ले गया था। इसीके आधार पर यह ग्रन्थ रचा गया है। कीमत चार आने।

परीक्षामुख—जैनन्यायमें प्रवेश करनेके लिए सबसे पहले यही ग्रन्थ पढ़ाया जाता है। पहले इस ग्रन्थको केवल संस्कृतमें छपा हुआ होनेसे बहुत कम लोग इससे लाभ उठाते थे। पर अब श्रीयुत पं० घनश्यामदासजीने इसका हिन्दी अनुवाद भी कर दिया है। ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है। कीमत छह आने।

पद्मनन्दीपच्चीसी—यह बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें-धर्मोपदेशामृत, दानोपदेश, श्रावकधर्म, एकत्व-भावना, आलोचना, ब्रह्मचर्य, क्रियाकाण्ड, परमार्थ-विंशति, पूजाष्टक, जिनदर्शन-आदि कोई पच्चीस अधिकार हैं। सबमें वर्णन बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। कीमत चार रुपये।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषाटीका—यह श्री-अमृतचन्द्रस्वामी विरचित प्रसिद्ध शास्त्र है। इसमें आचारसंबन्धी बड़े २ गूढ रहस्य हैं, विशेष कर हिंसाका स्वरूप बहुत खूबीके साथ दरसाया गया है, यह एक बार छपकर बिक गया था इस कारण फिरसे संशोधन कराके दूसरीवार छपाया गया है। मूल्य एक रु०।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय—मूल और सांक्षिप्त भाषा-टीका। मूल्य चार आने।

प्रवचनसार--श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वप्रदी-पिका संस्कृत टीका जो कि यूनिवर्सिटीके कोर्समें दाखिल है तथा श्रीजयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति संकृत टीका और बालबोधिनी भाषाटीका इन तीन टीकाओं सहित छपाया गया है। इसके मूलकर्ता श्रीकुन्दकु-न्दाचार्य हैं। यह आध्यात्मिक ग्रन्थ है। मूल्य तीन रु०

प्रद्युम्नचरित—(सार) बाबू दयाचंद गोयलीय कृत। मूल्य छह आने।

पंचस्तोत्रभाषा—इसमें भक्तामर, कल्याणमंदिर, एकीभाव, विषापहार और भूपालचौबीसी ये पांच भाषा स्तोत्र हैं। मू० दो आने।

पंचास्तिकायसमयसार—अबकी बार यह ग्रन्थ बड़ी सुन्दरतासे छपा है। पहले इसमें संस्कृत टीका एक ही थी, पर अबकी बार एक और सरल टीका लगा दी गई है। दोनों टीकाके नीचे स्व०पंडित हेमराजजीकृत हिन्दी टीकाका वर्तमानकी हिन्दी-भाषामें परिवर्त्तित रूपान्तर है। यह भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यका आध्यात्मिक विषयका सबसे उत्तम और महत्वका ग्रन्थ है। कीमत दो रुपये।

पंचकल्याणकविधान—पं० वख्तावरलालकृत २४ तीर्थंकरोंकी पंचकल्याणक पूजाका संग्रह। मूल्य छह आने।

बालबोध जैनधर्म—पहला भाग ...)॥
,, ,, दूसरा भाग ... -)
,, ,, तीसरा भाग ... =)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बृहद्द्रव्यसंग्रह—सरल हिन्दी भाषाटीका तथा संस्कृतटीका सहित । छोटा द्रव्यसंग्रह जो छप चुका है, उसीकी यह संस्कृत और बड़ी भाषाटीका है। मूलगाथाके नीचे उसकी संस्कृत छाया, और फिर श्रीब्रह्मदेवसूरिकृत संस्कृतटीका, तत्पश्चात् पं० जवाहरलालजीकृत भाषाटीका इस क्रमसे यह ग्रन्थ छपा है। मूल्य दो रुपये ।

भगवतीआराधनासार—यह ग्रन्थ पं० सदासुखदासजीकृत वचनिका सहित ज्योंका त्यों खुले पत्रोंपर छपा है। इसमें अन्तिम सल्लेखनाका अपूर्व शान्तिदायक वर्णन है । मूल्य चार रुपये ।

भक्तामरकथा—(मंत्रयंत्र सहित) इसमें पहले भक्तामरके मूलश्लोक फिर हिन्दी पद्यानुवाद, बाद मूलका खुलासा भावार्थ, फिर भक्तामरके मंत्रोंको सिद्ध करनेवालोंकी ३३ सुन्दर कथायें, इसके बाद अन्तमें मंत्र, ऋद्धि और उनकी साधनविधि तथा अड़तालीस ही श्लोकोंके अड़तालीस यंत्र, इस प्रकार योजना करके सर्वसाधारणके लाभार्थ यह ग्रन्थ छपाया गया है। थोड़ीसी प्रतियें रही हैं। मूल्य सवा रु० ।

महेन्द्रकुमार नाटक—इसकी उत्तमता और उपयोगिता बांचकर ही जानी जा सकती है। छपाईकी सुन्दरता देखने योग्य है। मूल्य छह आने।

महावीरचरित—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी रचित। मूल्य एक आना ।

माणिक विलास–माणिकचंदजीके १२५ पदोंका संग्रह। मूल्य चार आने।

यशोधर चरित--इसमें यशोधर महाराजका चरित बड़ी सुन्दरतासे लिखा गया है। इसके पढ़नेसे हृदयमें करुणारसका प्रवाह बह उठता है। कीमत चार आना ।

यशोधरचरित--मूल प्राकृत और हिन्दी अर्थ सहित। मूल्य दो रुपये।

लघु अभिषेक--मूल्य ढाई आने ।

वसुनन्दि श्रावकाचार—हिन्दी अर्थ सहित। मूल्य आठ आने।

वर्ष प्रबोध--जैनाचार्य रचित ज्योतिष ग्रन्थ। मूल्य बारह आने ।

विश्वलोचनकोश—श्रीश्रीधरसेन कविपंडितका अपूर्व कोश हिन्दी भाषाटीका सहित । एक जैन विद्वान्का बनाया हुआ सबसे पहला यही कोश है। बहुत ही अच्छा और बड़ा कोश है। अमरकोश आदि प्रचलित कोशोंसे यह बहुत ही बड़ा और विलक्षण है। यह मेदिनीके ढंगका नानार्थ कोष है। कवियों तथा विद्वानोंके बड़े कामका है। सरस्वतीप्रचारक सेठ नाथारंगजी गांधीने केवल ग्रन्थप्रचारकी बुद्धिसे इसको प्रकाशित किया है और मूल्य भी स्वल्प रक्खा है। मूल्य एक रुपया सात आने ।

शील और भावना—मुन्शीलाल एम. ए. कृत । मूल्य डेढ़ आना ।

श्रेणिक चरित—इसकी कथा बड़ी ही सुन्दर है। आजकलकी भाषामें संस्कृतपरसे अनुवाद हुआ है। कपड़ेकी बहुत सुन्दर जिल्द । की० १॥) है।

श्रेणिकचरितसार--मूल्य तीन आने ।

षट्पाहुड़--श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके बनाये हुए दर्शन, सूत्र, चरित्र, बोध, भाव और भावलिंग इन छह पाहुड़ोंकी मूल गाथा और संस्कृतछाया सहित भाषाटीका है। मूल्य एक रु० ।

सर्वार्थसिद्धि भाषावचनिका-तत्त्वार्थसूत्रकी पूज्यपादस्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिटीका बहुत प्राचीन और प्रामाणिक टीका है। यह उसीकी पं० जयचन्दजीकृत भाषावचनिका है। प्रत्येक सूत्रका खूब विस्तारके साथ अर्थ किया है। बड़े टाईपमें खुले पत्रोंपर छपी है। सब पृष्ठ ९०० के लगभग हैं, तो भी मूल्य ४) ।

सम्यक्त्व-कौमुदी--यह जैन कथा-साहित्यका सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें सम्यक्त्व प्राप्त करनेवालोंकी आठ मनोहर और धार्मिक कथायें हैं। यह हिन्दी भाषामें अनुवाद होकर अभी ही प्रकाशित हुआ है। इसकी सरल और सुन्दर बोलचालकी संस्कृत भाषा द्वारा विद्यार्थीगण भी लाभ उठा सकें, इसलिए इसे संस्कृत सहित छपाया है। कीमत सादी जिल्द १॥), कपड़ेकी पक्की जिल्दका एक रुपया छह आने ।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र--इसका दूसरा नाम तत्त्वार्थाधिगम मोक्षशास्त्र भी है। जैनियोंका यह परममान्य और मुख्य ग्रन्थ है । इसमें जैनधर्मके संपूर्णसिद्धान्त आचार्यवर्य श्रीउमास्वाति (मी) जीने बड़े लाघवसे संग्रह किया हैं । ऐसा कोई भी जैनसिद्धान्त नहीं है जो इसके सूत्रोंमें गर्भित न हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्तसागरको एक अत्यन्त छोटेसे तत्त्वार्थरूपी घटमें भरदेना यह कार्य अनुपम सामर्थ्यवाले इसके रचयिताका ही था। तत्त्वार्थके छोटे २ सूत्रोंके अर्थगांभीर्यको देखकर विद्वानोंको विस्मित होना पड़ता है। मूल्य २) ।

स्याद्वादमंजरी संस्कृत और भाषाटीका—इसमें छहों मतोंका विवेचन करके टीकाकर्ता विद्वद्वर्य श्रीमल्लिषेणसूरिने स्याद्वादको पूर्णरूपसे सिद्ध किया है। मूल्य ४)।

समयसार नाटक—बनारसीदासजीका प्रसिद्ध ग्रन्थ भाषा वचनिका सहित। खुले पत्रोंपर छपा है। मूल्य २॥)।

समयसार नाटक—कवित्त सवैयोंमें। मूल्य छह आने।

समयसार—प्रसिद्ध अध्यात्मका ग्रन्थ। संस्कृत आत्मख्याति टीकाकी पं० जयचन्दजी कृत वचनिका। इसमें शुद्ध निश्चयनयका वर्णन है। मूल्य चार रुपये।

समयसार नाटक—(बालबोध आत्मख्याति) स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यके ग्रन्थका अनुवाद। मूल्य १॥)

सप्तभंगीतरंगिणी भाषाटीका—यह न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें ग्रन्थकर्ता श्रीविमलदासजीने स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सप्तभंगी नयका विवेचन नव्यन्यायकी रीतिसे किया है। स्याद्वादमत क्या है यह जाननेके लिए यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य एक रु०।

सत्यार्थयज्ञ—मनरंगलालजी कृत चौवीस तीर्थंकरोंकी पूजा। मूल्य ॥)।

सम्मेदशिखर पूजा—मूल्य चार आने।

सागारधर्मामृत पूर्वार्ध—हिन्दी भाषाटीका सहित। श्रावकाचारका बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पण्डितप्रवर आशाधरका बनाया हुआ है। भाषा सरल है। मूल्य १॥)।

श्रीसिद्धक्षेत्र पूजासंग्रह—इस संग्रहमें श्रीसम्मेदशिखरविधान, पावापुरपूजा, चंपापुर पूजा, पटना पूजा जंबूस्वामी पूजा, सोनागिरि, नयनागिरि, द्रोणागिरि, मुक्तागिरि, सिद्धवरकूट, चूलगिरि, बड़वानी, गिरनार, शत्रुंजय, पावागढ़, तारंगा, गजपंथ, माँगीतुँगी, कन्थलगिरि, गोम्मटस्वामीकी पूजा, और चतुर्विंशतिनिर्वाणक्षेत्र पूजा है। मोटे अक्षरोंमें सुन्दरता पूर्वक छपा है। तीर्थयात्राके समय यह पुस्तक बड़े कामकी है। मूल्य आठ आने।

सीताचरित—बाबू दयाचन्द गोयलीय लिखित। मूल्य तीन आने।

सुशीला उपन्यास—इस उपन्यासकी प्रशंसाकी जरूरत नहीं। दूसरी बार सुन्दरतासे छपा है। इसमें मनोरंजनके साथ जैनधर्मका सार भर दिया गया है। पक्की कपड़ेकी जिल्द। मू० १।)।

सुकुमालचरितसार—सुकुमाल कुँवरका चरित बड़ा ही सुन्दर है, यह चरित पहले दो बार छपकर बिक चुका। सर्वसाधारणको यह चरित सुलभतासे पढ़नेको मिल सके इस लिये स्व० ब्रह्मचारी नेमिदत्तके सुकुमाल चरितसारका यह नया अनुवाद है। मूल्य डेढ़ आना।

सुखानंद मनोरमा नाटक—शीलकथाके आधार पर इस नाटककी रचना की गई है। स्टेजपर खेलने लायक है। मूल्य ।॥) ।

सोमासती नाटक—बाबू जैनेन्द्रकिशोर कृत मूल्य ⁻)॥

संशयतिमिरप्रदीप—तेरह पंथका खंडन और वीस पंथका मंडन। मूल्य बारह आने।

हिन्दी कल्याणमन्दिर—पं० गिरिधर शर्म्मा कृत खड़ी हिन्दीकी कवितामें मूल्य एक आना।

हिन्दी भक्तामर—पं० गिरिधर शर्मा कृत खड़ी हिन्दी कवितामें। मू० ⁻)।

हनुमानचरित—सुखचंद पद्मशाह पोरवाड़ लिखित। मूल्य ।=)

त्रैवर्णिकाचार—सोमसेनाचार्य कृत मूल और मराठी टीकासहित। मू० ३)

ज्ञानार्णव भाषा टीका सहित—इसके कर्ता श्रीशुभचन्द्रस्वामीने ध्यानका वर्णन बहुत ही उत्तमतासे किया है। प्रकरणवश ब्रह्मचर्यव्रतका वर्णन भी बहुत दिखलाया है। यह एकबार छपकर बिक गया था। अब द्वितीयबार संशोधन कराके छपाया गया है। मूल्य चार रु०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृतके ग्रंथ ।

अमरकोष—मूल गुटका । मूल्य चार आने ।

अमरकोष—मूल श्लोक और शब्दानुक्रमणिका सहित मूल्य ।≶)

अष्टसहस्री--विद्यानंद स्वामी रचित न्यायका अपूर्व ग्रंथ । मू० २॥)

अलंकार चिन्तामणि—अजित सेनाचार्य कृत अलंकारका ग्रन्थ। मूल्य ।॥) आने ।

आप्तपरीक्षा—मूल पाठ मात्र । मूल्य एक आना

आप्तमीमांसा—मूल्य एक आना ।

कातंत्रपंचसंधि--भाषा टीका सहित । मूल्य दो आने ।

काव्यानुशासन--सटीक । महाकवि वाग्भट कृत अलंकार ग्रंथ । मूल्य सात आने ।

काव्यानुशासन--आचार्य हेमचन्द्र विरचित । स्वोपज्ञालंकार चूडामणि संज्ञक वृत्ति सहित मूल्य २।)

काव्यमाला सप्तम गुच्छक—इसमें भक्तामर, कल्याणमंदिर, सिंदूरप्रकरण आदि २३ स्तोत्र हैं। मूल्य एक रुपया ।

काव्यमाला तेरहवाँ गुच्छक—वादिचन्द्र सूरिकृत पवनदूत काव्य और धन्यराज कृत शृंगार, नीति और वैराग्यशतक तथा अन्यान्य वैष्णव कवियोंके काव्य भी शामिल हैं । मू० एक रुपया ।

गणरत्नमहोदधि--श्रीवर्धमान नामके एक जैन विद्वानका बनाया हुआ व्याकरणका अपूर्व ग्रन्थ । मूल्य दो रुपया ।

गोमट्टसार--(जीवकांड) उत्थानिका मूल गाथा और संस्कृत छाया सहित । मूल्य ।≶) ।

चन्द्रप्रभचरित--इसमें चन्द्रप्रभतीर्थंकरका पवित्र चरित्र है । महाकवि वीरनन्दि विरचित देखने योग्य महाकाव्य है । इसकी रचना रघुवंशके ढंगकी है । मूल्य ।॥)

जैनस्तोत्रसंग्रह—इसमें भक्तामर, कल्याणमंदिर, विषापहार, एकीभाव और जिनचतुर्विंशतिका ये ५ मूलस्तोत्र हैं । मूल्य चार आने ।

जैननित्यपाठसंग्रह--इसमें पंचस्तोत्र, सहस्रनाम, तत्त्वार्थसूत्रादि १६ पाठ दिगम्बरी श्वेताम्बरी दोनों प्रकारके जैनी भाइयोंके हितार्थ संग्रह किये हैं। रेशमी जिल्दका बहुत ही सुंदर गुटका है । मूल्य छह आने ।

जैनेन्द्रप्रक्रिया--प्राचीन जैनाचार्यकृत व्याकरण । मूल्य १॥)

नीतिवाक्यामृत—सोमदेव सूरि कृत नीतिका अपूर्व ग्रन्थ । मूल्य १)

नेमिनिर्वाणकाव्य—यह काव्य महाकवि वाग्भट्टकृत है । इसमें नेमिनाथ राजुलका चरित्र है । इसकी काव्यशैली बहुत अच्छी है । मूल्य ।।≠)

परीक्षामुख--प्रमेयरत्नमाला टीकासहित-मूल ग्रन्थ श्रीमाणिक्यनन्दिकृत और टीका श्रीअनन्तवीर्य आचार्यकृत । मूल्य ।।)

पार्श्वाभ्युदयकाव्य सटीक--आदिपुराणके कर्ता भगवज्जिनसेनने इस अपूर्व ग्रन्थकी रचना की है । इसमें कालिदासकविका बनाया हुआ मेघदूत-काव्य सबका सब वेष्टित है । अर्थात् मेघदूतके श्लोकोंके प्रत्येक पादकी समस्यापूर्ति करके यह ग्रन्थ बनाया है । मूल्य बारह आने ।

पार्श्वनाथ चरितकाव्य—महाकवि वादिराजसूरि कृत । मूल्य लागतका आठ आने ।

पंचपरमेष्ठी पूजा—यशोनन्दि आचार्य कृत । मूल्य चार आने

पंचस्तोत्र—भक्तामर, कल्याणमंदिर, एकीभाव, विषापहार और भूपाल चतुर्विंशतिका इन ५ स्तोत्रोंका संग्रह । मूल्य दो आने ।

प्रमेयकमलमार्तण्ड—श्रीप्रभाचन्द्राचार्य विरचित जैन दर्शनका यह बहुत ही उच्चकोटिका न्याय ग्रन्थ है । जैनधर्मके मान्य सिद्धान्तोंका इसमें बड़े पाण्डित्यके साथ निरूपण किया गया है । मूल्य चार रुपये ।

मोक्षशास्त्र--मूल । मूल्य ⌐)॥

यशोधरचरित—वादिराजसूरि कृत । मूल्य आठ आने ।

यशस्तिलकचम्पूकाव्य—यह नीतिवाक्यामृतके कर्त्ता श्रीसोमदेवसूरि विरचित महाकाव्य है । इसमें यशोधर महाराजका पवित्र चरित्र है । मूल्य प्रथम खंडका ३।।।) उत्तरखंडका २।।।)

लघीयस्त्रयादि संग्रह—इसमें चार ग्रन्थ हैं। पहला भट्टाकलंकदेव कृत **लघीयस्त्रय** अनन्तकीर्ति रचित तात्पर्यवृत्ति सहित, दूसरा भट्टाकलंकदेव कृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूपसम्बोधन और तीसरा चौथा अनंतकीर्ति रचित **लघु वृहत् सर्वज्ञसिद्धि**। मूल्य लागत-का छह आने।

विक्रान्त कौरवीय नाटक—श्रीहस्तिमल्ल-कविकृत। मूल्य लागतका छह आना।

सागारधर्मामृत—सोपज्ञ भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका सहित। मूल्य लागतका ।≈)

सुभाषितरत्नसंदोह—यह ग्रंथ धर्मपरीक्षाके कर्ता अमितगत्याचार्यकृत मूल संस्कृत है। इसमें सांसारिकविषयनिराकरण, कोपनिराकरण, मायाहंकार आदि ३३ विषय हैं। प्रत्येक विषयका निरूपण ऐसा विस्तृत किया है कि प्रत्येक श्लोक कण्ठ रखनेको जी चाहता है। उपदेशकोंके बड़े ही कामका है। मूल्य ॥।) आने।

हितोपदेश—मूल। मूल्य आठ आने।

(जैनमत दिग्दर्शन)

An Insight into jainism

यह पुस्तक अंग्रेजी भाषामें है। इसमें जैन धर्मका महत्व, जैनमत नास्तिक मत नहीं है, जैनी किसको पूजते हैं, कर्म फिलोसफी, धर्म, अहिंसा, संसार और मोक्ष इन सात महत्त्वपूर्ण निबंधोंका संग्रह है। प्रत्येक अंग्रेजीदाँ जैनी भाईको इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। अजैनोंको दिखलानेके लिए भी यह पुस्तक बड़ी अच्छी है। मूल्य केवल ।≈)।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालयकी

सर्वसाधारणोपयोगी हिन्दीकी उत्तम पुस्तकें।

अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा—विद्यार्थियोंके बड़े कामकी पुस्तक है। इसे पढ़नेसे खराबसे खराब आदतें छूट जाती हैं। मूल्य ढाई आने।

अन्नपूर्णाका मंदिर—पवित्र, शिक्षाप्रद, करुणारसपूर्ण सामाजिक उपन्यास। यह उपन्यास इतना अच्छा है कि थोड़े ही समयमें अंगरेजी, मराठी आदि भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है। मूल्य चादह आने।

आँखकी किरकिरी—एशियाके सर्वश्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'चोखेरवाली' नामक प्रसिद्ध उपन्यासका अनुवाद। बहुत ऊँचे दरजेका उपन्यास है। मनुष्यके आँतरिकभाव-चित्रोंका, उनके उत्थान पतन वा घात-प्रतिघातोंका इसमें बड़ा सुन्दर वर्णन है। मूल्य १॥।), सादी जिल्दका १॥)।

उपवासचिकित्सा—जैनधर्ममें व्रत करने और उपवास करनेका बहुत महत्त्व बतलाया है। परन्तु अभीतक लोग व्रत या उपवासको केवल 'धर्म' या 'स्वर्ग जानेकी सीढ़ी' समझते हैं। इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि उपवास करनेसे केवल धर्म ही नहीं होता है; किन्तु यह नीरोग होनेकी सबसे अच्छी दवाई है। सारे दुनियाके भयंकरसे भयंकर रोग उपवाससे आराम हो सकते हैं। क्यों हो सकते हैं, और कैसे हो सकते हैं? इन प्रश्नोंका उत्तर इसमें विस्तारसे दिया गया है। जिन लोगोंने उपवाससे रोग अच्छे किये हैं, उनके उदाहरण और चित्र भी इसमें दिये गये हैं। हिन्दीमें इस विषयका यह सबसे पहला ग्रन्थ है। रोगियों, वैद्यों, और निरोगों-सबको पढ़ना चाहिए। मूल्य कपड़ेकी जिल्दका १≈), सादी जिल्दका ॥।≈)

कठिनाईमें विद्याभ्यास—बड़ी बड़ी कठिनाइयोंके रहते हुए भी जिनके हृदयमें विद्याके प्रति भक्ति होती है वे किस तरह विद्वान् बन जाते हैं, मोची, कुम्हार, खेतिहर, बढ़ई, मल्लाहों जैसे नीच कुलोंमें भी जन्म लेकर, दरिद्रताके दुखोंमें पड़े रहकर भी उद्योगी पुरुष कैसे बड़े बड़े विद्वान् बन गये हैं, अन्धों और पतितोंने भी अपनी विद्यावृद्धि किस तरह की है, इन सब बातोंके ऐतिहासिक उदाहरण इस पुस्तकमें दिये हुए हैं। पढ़कर तबीयत फड़क उठती है। विद्याभिरुचि उत्पन्न करने और उद्योगसे प्रेम करना सिखानेके लिए यह पुस्तक जादूका काम करती है। प्रत्येक भारतवासीके कानों तक इसके शब्द पहुँचना चाहिए। विद्यार्थियोंको तो अवश्य पढ़ना चाहिए। अँगरेजीमें इसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। भाषा सुगम है। मूल्य ॥)

चरित्रगठन और मनोबल—इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि अपनी चालचलनका बनाना अपने हाथमें है। अपने मानसिक बलसे चाहे जो अपनी चालचलन सुधार सकता है। पुस्तक बड़े ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कामकी है। विद्यार्थियों और नवयुवकोंको अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ढाई आने।

चौबेका चिट्ठा—स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके 'कमलाकान्तेर दफ्तर' का अनुवाद। हँसी-दिल्लगीकी बातोंमें सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयोंका बड़ी मार्मिकतासे वर्णन किया है। मूल्य ग्यारह आने।

दियातले अँधेरा—छोटीसी शिक्षाप्रद गल्प। पढ़कर आप बहुत प्रसन्न होंगे और यदि अपनी स्त्रीको पढ़ानेमें लापरवाही करते होंगे तो चिन्तापूर्वक पढ़ाने लगेंगे। मूल्य डेढ़ आना।

दुर्गादास नाटक—बंग साहित्यमें जो प्रतिष्ठा कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की है, वही स्वर्गीय द्विजेन्द्रलालरायकी है; बल्कि नाटक लिखनेमें तो वे सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। उन्हींके सर्वश्रेष्ठ नाटक दुर्गादासका यह हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं प० रूपनारायणजी पाण्डेय। हिन्दीमें अब तक इसकी जोड़का एक भी नाटक नहीं है। स्टेज पर अच्छी तरह खेला जा सकता है। देशभक्ति और वीरताके भाव कूट कूट कर भरे हैं। जोधपुर नरेश जसवंतसिंहके प्रसिद्ध प्रभुभक्त सेनापति राठौर दुर्गादासके आदर्शचरित्रको लेकर इसकी रचना की गई है। मूल्य कपड़ेकी जिल्दका सवा रुपया, सादीका ।।।=)।

प्रतिभा—यह उपन्यास मानव-चरितको उदार, उन्नत बनानेवाला, आदर्श धर्मवीर कर्मवीर बनानेवाला और देशकी वर्तमान आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला है। मूल्य १।) सादीका १)।

पिताके उपदेश—एक आदर्श पिताने अपने पुत्रको जो शिक्षाप्रद चिट्ठियाँ लिखी थीं यह उनका संग्रह है। प्रत्येक विद्यार्थीके पढ़ने योग्य है। मूल्य डेढ़ आना।

फूलोंका गुच्छा—ग्यारह चुनी हुई सुन्दर सुन्दर गल्पोंका संग्रह। इसकी कहानियाँ मनोरंजक, रोचक, चित्ताकर्षक और शिक्षाप्रद हैं। मूल्य नौ आने, कपड़ेकी जिल्दका बारह आने।

बूढ़ेका ब्याह—एक लोभीने अपनी लड़कीकी शादी एक बूढ़े सेठके साथ कर दी थी, इससे उस लड़कीकी अंतमें कैसी दुर्दशा हुई और सेठकी कैसी मिट्टीपलीद हुई, इसका हृदयग्राही वर्णन इस खड़ी बोलीके सुन्दर काव्यमें किया गया है। पाँच बढ़िया चित्र इसमें लगाये गये हैं। छपाई बहुत ही सुन्दर है। मूल्य छह आने।

बंकिमनिबंधावली—स्वर्गीय बंकिमबाबूके चुने हुए बंगला निबन्धोंका अनुवाद। इसमें धार्मिक, राजनीतिक, मनोरंजक और साहित्यसम्बन्धी बहुत उच्चश्रेणीके निबन्ध जो अभी तक हिन्दीमें प्रकाशित नहीं हुए थे शामिल किये गये हैं। मूल्य १), सादीका बारह आने।

ब्याही बहू—ससुराल जानेवाली बहुओंके पढ़नेके लिए बहुत ही अच्छी, एक अनुभवी विद्वानकी लिखी हुई शिक्षाप्रद पुस्तक। मूल्य तीन आने।

मितव्ययिता—यह यूरोपके प्रसिद्ध लेखक डा० सेमुएल स्माइल्स साहबकी अँगरेजी पुस्तक 'थिरिफ्ट' का हिन्दी अनुवाद है। इस फिजूलखर्ची और विलासिताके जमानेमें यह पुस्तक प्रत्येक भारतवासी बालक, युवा, वृद्ध और स्त्रीके नित्य स्वाध्याय करने योग्य है। इसके पढ़नेसे आप चाहे जितने अपव्ययी हों, मितव्ययी संयमी और धर्मात्मा बन जावेंगे। मूल्य ।।।=)

युवाओंको उपदेश। इस पुस्तकमें जो अभी अभी युवा अवस्थाको प्राप्त हुए हैं, जो पढ़ रहे हैं, जो विवाह करनेवाले हैं, जिनका विवाह हो चुका है, जिनकी स्त्री आ चुकी है, जो पिता बननेवाले हैं अथवा बन चुके हैं, उन सब युवाओंके लिए इतने अच्छे उपदेश दिये गये हैं कि उनके अनुसार चलनेसे वर्तमान और आगामी जीवन बहुत ही सुखमय बन सकता है। प्रत्येक नवयुवकके हाथमें यह पुस्तक जाना चाहिए। इसके प्रभावसे सैकड़ों कुमार्गपर जानेके सम्मुख हुए युवकोंके जीवन सुधर गये हैं, वे धर्मात्मा, सदाचारी और देश तथा समाजके सेवक बन गये हैं। मूल्य दस आने।

लन्दनके पत्र—विलायतसे एक भारतवासी सज्जन यहाँके समाचारपत्रोंमें अपने देशवासियोंके नाम पत्र छपाया करते थे। उन पत्रोंमेंसे कुछ कामके पत्रोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया गया है। पत्र बड़े ही जोशीले, देशभक्तिपूर्ण और सच्चे हृदयसे लिखे हुए हैं। पढ़ते ही देशभक्तिकी बिजली दौड़ जाती है। नवयुवकों विद्यार्थियों और लेखकोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य तीन आने।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विद्यार्थीका जीवनका उद्देश्य–एक छोटासा निबन्ध है। एक नामी विद्वान्के उर्दू निबन्धका अनुवाद है। विद्यार्थीमात्रको पढ़ना चाहिए। मूल्य एक आना।

व्यापार-शिक्षा व्यापारप्रधान जैन जातिके लिए यह पुस्तक बहुत ही अच्छी और अपूर्व है। प्रत्येक जैनपाठशालामें पढ़ाये जाने योग्य है। इसमें व्यापारका महत्त्व, धंदा, पूँजी, सिक्का, बैंक, हुंडी, बहीखाता, साख, व्यापारीके गुण, लाभ-हानिके कारण, ग्राहकी, विज्ञापन, साँझा, तेजी-मंदी, उधारका व्यापार, बीमा, जकात, अर्थशास्त्र आदि विषयोंके बहुत ही सरल और उपयोगी पाठ हैं। जिन्हें पढ़कर लोग व्यापारके नवीन और प्राचीन तत्त्वोंको अच्छी तरह समझ सकते हैं। हिन्दीमें अपने ढंगकी यह पहली पुस्तक है। मूल्य आठ आना।

शान्तिवैभव–यह पुस्तक विलियम जार्ज गार्डनकी 'मैजेष्टी आफ कामनेस' नामक अंग्रेजी पुस्तकके आधारसे लिखी गई है। इसमें इतने विषय हैं– १ शान्ति, २ उतावली नाशका कारण है, ३ असफलतामें सफलता, ४ सदा उद्योग करो, ५ आनन्दका मार्ग और ६ सुख और शान्ति। पुस्तक बहुत ही अच्छी और विशेषकर विद्यार्थियोंके लिए बहुत उपयोगी है। मूल्य चार आने।

विवाहका उद्देश्य–बाबू जुगलकिशोर मुख्तार लिखित। इस पुस्तकमें विवाहका बहुत ही मार्मिक और तात्त्विक वर्णन लिखा है। मूल्य)॥।

सदाचारी बालक–यह एक छोटीसी सुन्दर गल्प है। बालकों विद्यार्थियोंके कामकी है। मूल्य दो आने।

सफलता और उसकी साधनाके उपाय–संसारके सभी कार्योंमें सब लोग सफलता चाहते हैं। सफलताकी इच्छा रखनेवालोंको अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।॥) सादीका ॥=)

स्वावलम्बन—(सेल्फ हेल्प) अपने पैरों खड़े होने और अपनी बुद्धिसे काम करनेकी शिक्षा इससे मिलती है। इसमें सैकड़ों देशी विदेशी उदाहरण भी दिये गये हैं। मू० १॥). सादीका १।)

स्वाधीनता—जान स्टुअर्ट मिलकी लिबर्टीका अनुवाद। अनुवादक, सरस्वतीसम्पादक पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी। इसके साथ ६० पेजकी मिलकी जीवनी और दो चित्र भी हैं। मूल्य दो रुपया।

सूमके घर धूम—यह एक छोटासा नाटक या प्रहसन है। इसमें एक सूम-मक्खीचूसकी दुर्दशा पढ़कर आप लोटपोट हो जायँगे। हँसते हँसते पेट फूल जायगा। स्टेजपर अच्छी तरह खेला जासकता है। मूल्य तीन आने।

स्वदेश—डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके आठ निबंधोंका संग्रह। मनन करने योग्य विषय। मूल ॥=)

सन्तान कल्पद्रुम—बुद्धिमान्, बलवान्, रूपवान्, निरोगी, सद्गुणी सन्तान उत्पन्न करनेके विषयमें देशी और विदेशी विद्वानोंके सिद्धांत और अनुभव इस पुस्तकमें लिखे गये हैं। इसमें बतलाया गया है कि लड़का या लड़की उत्पन्न करना, बुरी या भली सन्तान पैदा करना, माता-पिताके हाथमें है; और देशका उद्धार अच्छी सन्तानसे हो सकता है। मूल्य कपड़ेकी जिल्दका एक रुपया और सादीका बारह आने।

चम्पा– श्रीयुत बाबू कृष्णलालजी वर्मा इसके लेखक हैं। इसमें नायिकाकी सच्चरित्रता, सहिष्णुता, और मातृ पितृ भक्तिका अच्छा चित्र खींचा गया है। मूल्य सात आने।

बाल विवाहका एक हृदयद्रावक दृश्य— यह ट्रेक्ट है। विषय नामहीसे प्रगट है। लेखकने इसे विशेषकर विद्यार्थियोंके लिए लिखा है। मूल्य एक आना।

जननीजीवन—आज कलकी स्त्रियाँ माता तो बन जाती हैं, पर यह नहीं जानतीं कि माताके क्या कर्तव्य हैं और सन्तानका पालनपोषण किस तरह किया जाता है, बीमारियोंसे, सर्दी गर्मीसे उनकी कैसे रक्षा की जाती है, उनका स्वभाव कैसे सुधारा जा सकता है, वे पढ़ाये लिखाये कैसे जा सकते हैं, और स्वयं अपने शरीरकी सावधानी किस तरह रखनी चाहिए। प्रत्येक माता या माता बननेवाली जननीको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य नौ आने।

शारदा—इस पुस्तककी नायिका एक आदर्श स्त्री है। उसके चरितसे दिखाया गया है कि पढ़ी लिखी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रियाँ—प्रतिकूल अवस्थामें अपने पति, स्वजन और घरकी कहाँतक सेवा और भलाई कर सकती हैं। यह पुस्तक क्या स्त्री क्या पुरुष सभीके पढ़ने योग्य है। मूल्य छः आना।

Life of Mahabir—बाबू माणिकचन्द्रजी बी. ए. एलएल. बी. खण्डवा द्वारा लिखित मूल्य एक रु०।

नाम माला—यह कविवर धनंजय कृत नानार्थ कोश है। पं० घनश्यामदासजीने इसकी भाषाटीका की है। अन्तमें शब्द सूची भी लगी हुई है। मूल्य सात आने।

बालबोध जैन धर्म शिक्षक प्रथम भाग, बालबोध जैन धर्म रक्षक द्वितीय भाग—ये दोनों पुस्तकें पहले पहल जैन धर्मकी शिक्षा ग्रहण करनेवालों और उन्हें पढ़ाने वाले अध्यापकोंके बड़ी कामकी है। बाबू दयाचन्दजी रचित प्रथम भाग और द्वितीय भाग अच्छी तरह पढ़ सकनेकी रीति नये ढंगसे इनमें लिखी गई है। इन पुस्तकोंका विषय बिना अध्यापकके ही समझमें आसकता है और बुद्धि भी बलवान होती है। मूल्य प्रथम भाग -)॥ और द्वितीय भाग का =)॥ है!

भाषा दर्शन पाठ अर्थ सहित—इसमें पंडित दौलतरामजी कृत स्तुतिका अर्थ और भावार्थ है। मानो यह जैन मतकी सारभूत पुस्तक हिन्दी भाषा जाननेवालोंके लिए बनाई है। मूल्य एक आना।

अर्थ प्रकाशिका—यह पं० सदासुखजी कृत तत्त्वार्थ सूत्रके दशों अध्यायोंका सरल अर्थ है। अर्थ बहुत विस्तारपूर्वक है, और बड़ी सरलतासे समझाया गया है। हरएक आदमीके समझमें आसकती है। भाषा पुरानी जैपुरकी है। इस ग्रन्थकी पहले ४) कीमत थी। किन्तु अब साढ़े तीन रु० दाम है और पहलेकी अपेक्षा छपाई बहुत ही उत्तम है। कागज भी मोटा और चिकना लगाया गया है मंगाने वालोंको शीघ्रता करनी चाहिए।

महावीर पुराण—अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका अपूर्व चरित। जिसके देखनेके लिए संस्कृत न जाननेवाले भाई बहुत दिनोंसे आशा लगाये हुए थे, वह अब छपकर तैयार है। मूल्य खुले पत्रोंका १॥) और कपड़ेकी सुनहरी जिल्दका दाम १।॥) है।

संस्कृत प्रवेशिनी—(प्रथम भाग) संस्कृत सीखनेवाले विद्यार्थियोंके बड़े कामकी चीज है। इसके पढ़नेमें व्याकरणके कठिन सूत्र और नियमादि नहीं रटने पड़ते हैं। व्याकरण संबंधी समस्त ग्रंथोंका मंथन करके इसकी रचना की गई है। इसमें आये हुए शब्द व धातुओंका मनन करनेसे संस्कृत काव्योंका पठन पाठन संस्कृतमें वार्तालाप करना और संस्कृतमें अनुवाद करना सुगम हो जाता है। मू० एक रु०।

परीक्षामुख—आचार्यवर्य श्रीमाणिक्यनंदि विरचित। जैनन्यायमें प्रवेश करनेके लिए सबसे पहले यही ग्रंथ पढ़ाया जाता है। इसमें मूलके साथ हिंन्दी और बंगला टीका भी लगा दी गई है, जिससे इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। मूल्य छह आने।

जैनबालबोधक—प्रथम भाग। पं० पन्नालालजी वाकलीवालकृत। यह पुस्तक बहुत दिनोंसे अप्राप्य थी। अब पुनः छपकर तैयार हुई है। मूल्य चार आने।

नेमिपुराण—ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत ग्रन्थका पं० उदयलालजी काशलीवाल द्वारा किया गया अनुवाद। इसमें भगवान् नेमिनाथका चरित्र विस्तारके साथ सरल भाषामें लिखा गया है। मूल्य दो रुपया। कपड़ेकी जिल्दका सवा दो रुपया।

सुदर्शनचरित्र—भट्टारक सकलकीर्तिके संस्कृत ग्रन्थका सरल हिन्दी अनुवाद। सुदर्शनसेठका पवित्र चरित्र सभीके पढ़ने योग्य है। मूल्य नौ आने।

नोट—सब जगहकी छपी हुई सब तरहकी जैन पुस्तकें यहाँ हरसमय मिलती हैं। किसी भी जैन ग्रन्थकी आवश्यकता हुआ करे, हमको पत्र लिखा कीजिए।

पता—जैनग्रंथ रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगांव—बंबई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नये नये जैन ग्रन्थ।

आदिपुराण
भाषाटीकासहित।

यह बड़ा भारी ग्रन्थ ४–५ वर्षसे छप रहा था। अब पूरा छपकर तैयार हुआ है। जैनधर्मका इतना बड़ा ग्रन्थ अब तक कोई भी नहीं छपा। इसके सब मिलाकर लगभग १८०० पृष्ठ हैं। खुले पत्रोंपर छपा है। मन्दिरोंमें जो सब जगह भाषावचनिका मिलती है, उससे इसमें विशेषता है। वचनिकाके साथमें मूल श्लोक नहीं हैं, पर इसमें मूल श्लोक भी साथ ही साथ दिये हैं। इसकी भाषा भी सबकी समझमें आने योग्य और मूलके अनुसार है। प्रत्येक मन्दिरमें, भण्डारमें भगवज्जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्यके इस विशाल ग्रन्थकी एक एक प्रति रहना चाहिये। जो लोग ग्रन्थ मँगाना चाहें वे चिट्ठीके साथ १॥) डेढ़ रुपयाका मनीआर्डर भी पेशगी भेज देवें। क्योंकि इसका डाँक खर्च डेढ़ रुपयाके करीब लगता है। लोग अक्सर वी. पी. वापस कर देते हैं। इस कारण डाँक खर्च पेशगी आये बिना हम वी. पी. नहीं भेजेंगे। ग्रन्थकी न्योछावर डाँक खर्चके सिवाय १६) सोलह रुपया है।

हरिवंश पुराण.

पं० गजाधर लालजी न्यायतीर्थकृत हिन्दी अनुवाद। मोटा कागज, मोटेसाफ अक्षर, कपड़ेकी मजबूत सुन्दर जिल्द बंधा हुआ। सुन्दरतासे छपा हुआ है। मूल्य छह रु०।

रत्नकरण्ड-श्रावकाचार।
हिन्दी-पद्यानुवाद।

अनुवादक, सुकवि पं० गिरिधर शर्मा।

जो विद्यार्थी संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें मूल रत्नकरण्ड अर्थसहित रटा दिया जाता है। पर इससे लाभ कुछ नहीं होता है। विद्यार्थी मर्म नहीं समझते और थोड़े ही दिनोंमें भूल जाते हैं। इस लिए बहुत दिनोंसे यह आवश्यकता बतलाई जा रही थी कि बालबोध–कक्षाओंके लिए रत्नकरण्ड छन्दोबद्ध बना दिया जाय। परीक्षालयमें छन्दबद्ध रत्नकरण्ड नियत भी कर दिया गया था; पर छन्दोबद्ध रत्नकरंड कोई था ही नहीं, इस कारण हमने सुकवि श्रीगिरिधर शर्मासे इसे हाल ही बनवाकर प्रकाशित किया है। कविता बोलचालकी हिन्दी भाषामें है जो सहज ही समझमें आ जाती है। इस बात की कोशिशकी गई है कि मूलका कोई भाव रह नहीं जाय और संशोधनमें इसका ध्यान रक्खा गया है कि कोई शास्त्रविरुद्ध बात न लिखी जाय। पाठशालाओंके संचालकोंको नमूनेके तौर पर एक प्रति मँगा देखना चाहिए। मूल्य तीन आने।

गोम्मटसार जीवकांड—भाषाटीका। लीजिए अब पूरा गोम्मट्टसार भाषाटीका सहित तयार हो गया। पहले सिर्फ इसका कर्मकाण्ड भाषाटीकासहित छपा था। अब जीवकांडकी भी भाषाटीका तैयार होगई है। इसे पं० खूबचन्दजी शास्त्री सम्पादक सत्यवादीने लिखा है। निर्णयसागर प्रेसमें बहुत शुद्धतासे छपा है। मूल्य २॥) है।

लब्धिसार–(क्षपणासार गर्भित) प्राकृत गाथा, संस्कृत छाया, और संक्षिप्त हिन्दी भाषाटीकासहित छपा है। इस ग्रंथमें कर्मोंसे छूटनेका उपाय विस्तार सहित दिखलाया है। इसमें मिथ्यात्वकर्म छुड़ानेके लिये पाँच लब्धियोंका वर्णन है। पाँचोंमें मुख्यतासे करण लब्धिका स्वरूप अच्छी तरह दिखलाया गया है। इसीसे मिथ्यात्व कर्मसे छूटकर सम्यक्त्व गुणकी प्राप्ति होती है। यही गुण मोक्षका मूल कारण है। निर्णयसागरमें बहुत शुद्धतासे छपा है। मूल्य १॥)

जैनव्रत कथासंग्रह–इसमें ऋषिपंचमी, सुगंधदशमी, अनंतपंचमी, रत्नत्रय, दशलक्षण, मुक्तावली, रविव्रत, पुष्पाञ्जलि और नंदीश्वर इस प्रकार ९ व्रतोंकी विधि उद्यापन उनका माहात्म्य और फल पानेवाले पुरुषोंके चरित्र छंदोबद्ध हैं। मूल्य ।)

प्रभंजनचरित–प्रभंजन नामक मुनिका चरित्र। इसकी कथा बहुत ही दिलचस्प है। त्रियाचरित्र खूब ही दिखलाया है। मूल्य चार आने।

पुण्याश्रव—इसमें छोटी बड़ी ५६ कथायें हैं। कथायें सब धार्मिक भावोंसे परिपूर्ण हैं। जैनसमाजमें इस सुन्दर कथा-ग्रंथके स्वाध्यायकी खूब प्रचार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। पहली आवृत्ति बिक जानेपर दूसरी बार छपा है। कीमत तीन रुपया।

धनंजय नाममाला–मूल मात्र मूल्य सवा आना।

धनंजय नाममाला भाषाटीका—इसमें एक शब्दके अनेक अर्थ बतलाये गये हैं, बड़ा उपयोगी ग्रंथ है। प्रत्येक जैनपाठशालाओंमें पढ़ाने योग्य है। अंतमें शब्दोंकी सूची भी दी है। मूल्य सात आने।

बालगणित—बाबू दयाचंदजी गोयलीय बी.ए. कृत। गणित सीखनेवाले विद्यार्थियोंके लिए यह पुस्तक बड़ी लाभदायक है। मूल्य तीन आने।

जैनबालबोधक प्रथम भाग—पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत। फिरसे संशोधित होकर छपा है। मूल्य ।)

तत्त्वमाला दूसरा भाग—ब्र० शीतल प्रसादजी कृत। इसमें जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष आदि सात तत्त्वों और पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत चारों ध्यानोंका वर्णन है। विद्यार्थियोंके बड़े कामकी पुस्तक है। पृष्ठ संख्या १०४ मूल्य ।)

पूजाविधानसंग्रह—इसमें पंचकल्याणक, पंचपरमेष्ठी, अष्टकर्मदहन, शिखरमाहात्म्य और निर्वाण इन पाँचों विधानोंका संग्रह है। पुस्तक मोटे अक्षरोंमें सुन्दरता शुद्धतापूर्वक छपी है। अंतमें शान्तिपाठ और विसर्जन भी है। मूल्य छह आने।

कर्म-दहन पूजा विधान–स्व० पं० टेकचंदजी कृत। उपवासविधि, जाप्यविधिसहित बहुत शुद्धता पूर्वक छपा है। मूल्य पाँच आने।

गिरनारमाहात्म्य पूजाविधान—स्व० पं० हजारीमलजी कृत। यह बात सर्वमान्य है कि भक्तिके विना किसीपर किसीके वचनोंका असर नहीं पड़ता और असर विना कोई भी किसीके अनुसार चलनेको तैयार नहीं होता। यह ग्रंथ भक्तिका साधन है। कविता इसकी बहुत सुन्दर है। मूल्य नौ आने।

कैलाशयात्रा–ब्र० लामचीदासजीका कैलाशका आँखों देखा अद्भुत वर्णन है। दूसरी बार छपी है। मूल्य एक आना।

जैनतीर्थयात्रादीपक—दिल्लीके लाला फतेहचंदजीने सम्पूर्ण जैनतीर्थोंकी वन्दना करके इसे बड़े परिश्रमसे लिखी है। इसमें सम्पूर्ण तीर्थोंके रास्ते धर्मशाला वहाँके देखने योग्य स्थानोंका बहुत अच्छा वर्णन है। १०८ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य सिर्फ चार आना है।

विद्वद्रत्नमाला—इसमें श्रीजिनसेन, गुणभद्र, पं० आशाधर, श्रीअमितिगति, श्रीवादिराज, श्रीमल्लिषेण और समन्तभद्राचार्य आदि संस्कृतके सात ग्रंथकर्त्ताओंका और उनके बनाये हुए ग्रंथोंका परिचय है। मूल्य दश आना।

छहढाला सार्थ—इसका हिन्दी भावार्थ श्रीयुत ब्र० शीतल प्रसादजीने किया है। छोटीसी पुस्तकमें जैनधर्मका मर्म बड़ी खूबीके साथ लिखा गया है। विद्यार्थियोंके लिये बड़ी उपयोगी पुस्तक है। मूल्य तीन आना।

संस्कृत प्रवेशिनी— अनेक महाशय प्राचीन व्याकरणोंकी पद्धतिको क्लिष्ट व रटंतविद्या समझकर संस्कृत पढ़नेसे डरते हैं। इस लिये संस्कृतमें सुगमतासे प्रवेश करनेके लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। अनेक व्याकरण संबंधी ग्रंथोंका पठन करके इसकी रचना हुई है। इसके पढ़नेसे व्याकरणके कठिन सूत्र व नियमादि रटने नहीं पड़ते। इसमें आये हुए कुछ शब्द व धातुओंका अर्थ मनन करने मात्रसे ही संस्कृतमें अनुवाद करना वार्त्तालाप करना व पुस्तकोंका अर्थ लगाना बहुत सुगम हो जाता है। मूल्य एक रुपया।

आत्मशुद्धि—नामसे ही समझ लीजिये। लेखक हैं लाला मुन्शीलालजी एम. ए. गवर्नमेंट पेन्शनर। मूल्य साढ़े तीन आने।

प्राचीन जैन इतिहास—पहला भाग। ऋषभनाथ भगवानसे लेकर वासुपूज्य तीर्थंकर तकका नई पद्धतिसे लिखा हुआ इतिहास। कई नक्शे भी दिये हैं। जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जानेके लिए बाबू सूरजमलजी सम्पादक जैन प्रभातने लिखा है। मूल्य बारह आने।

प्रातःस्मरणपाठ–ज्योतिषरत्न पं० जियालालजी कृत। मूल्य एक आना।

मिलनेका पता—

जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो. गिरगाँव–बम्बई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितैषी--औषधालय--इटावहकी

पवित्र-सस्ती-औषधियाँ ।

नमक सुलेमानी ।

जगत्प्रसिद्ध असली २० वर्षका आजमूदा हाजमेकी अक्सीर दवा । की० ॥) तीन सी० १।=)

धातु संजीवन ।

संपूर्ण धातु विकारको नष्ट कर नया वीर्य पैदा होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट होजाता है । की० १)

प्रदरान्तक-चूर्ण ।

स्त्रियोंके श्वेत, लाल आदि प्रदरोंको शर्तिया कर ताकत बढ़ाता और गर्भस्थिति करता है ० १)

नयनामृत-सुरमा ।

सम्पूर्ण विकारोंको दूरकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाता और तरावट पैदा करता है । की० १)

दन्त-कुसुमाकर ।

दाँतोंके सब रोग दूर होकर दांतोंकी चमक बढ़ाता और मजबूत करता है । की० ।)

दद्रु-दमन ।

यह खुशबूदार मरहम विना कष्टके दादके दादाको तगादाकर भगाती है । की० ।)

केश-बिहार-तैल ।

अत्यन्त सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न कर केश और मस्तकके रोगोंको दूर करता है । की० ॥)

नारायण-तैल ।

शरदी आदिसे उत्पन्न हुए दर्द, गठिया, पक्षाघात आदि सर्व वात रोगोंकी शर्तिया दवा है । की० १)

दवा सफेद दागोंकी ।

इससे शरीरमें जो सफेद २ दाग पड़जाते हैं वह दूर हो जाते हैं । की० १)

श्वास-कुठार ।

यह स्वांस दमें की शर्तिया दवा है । की० १)

गोली दस्तबंदकी ।

रक्त, आम, आदि अतिसार तथा संग्रहणी आदिको शीघ्र दूर करती है । की० ॥)

दवा खांसीकी ।

सूखी या तर खांसीको और कफको दूर करने वाली आजमूदा दवा है । की० ॥)

अर्क कपूर ।

हैजेकी अक्सीर दवा । की० ।)

चंद्रकला ।

यह गोरे व खूबसूरतीकी दवा है । की० ॥)

नैन-सुधा-अञ्जन ।

इससे आँखका जाला धुन्ध फुली माड़ा आदि सब अच्छे होते हैं । की० ॥)

दवा पेटके दर्दकी ।

चाहे कैसा पेट दर्द हो फौरन दूर होता है की० ॥)

ताम्बूल रंजन ।

पानके साथ खानेका बढ़िया मसाला । की० ।)

शिरदर्द-हर तैल । की० ।)

कर्ण-रोग-हर तैल की० ।)

खुजली-नाशक तैल । की० ।)

बाल उड़ानेका साबुन । की० ।)

कोकिल-कण्ठ-वटिका । की० ।)

पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम, इटावह U. P.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

The Jain Gazette.

A monthly organ of

THE All INDIA JAIN ASSOCIATION.

(THE BHARAT JAIN MAHAMANDAL.)

———:0:———

Edited and published by
Mr. AJIT PRASAD, M. A., LL. B., Vakil, High Court,
at Ajitashram, Lucknow.

———:0:———

It is the only journal in the Jain community which is edited in English, and has a circulation in foreign countries.

It deals with all current topics affecting the Jain Society and Jain religion. It contains philosophical, literary, scientific and religious articles by eminent scholars. It is conducted on a basis of wide and liberal toleration. It has no party politics to serve, and is not subsidized by any Seth. Self-help and ungrudging service is its motto.

Therefore it is, that every English knowing Jaini must recognise it as religious duty to subscribe to the Jain Gazette, to induce his friends to subscribe and to remember the Jain Gazette on occasions of domestic celebrations. Annual subscription Rupees 2.

Apply for a sample copy at least: if you have not as yet made up your mind to subscribe to

THE MANAGER,
JAIN GAZETTE,
Ajitashram, Lucknow.

मुनि ।

इस नामका एक मासिक पत्र श्रीयुक्त ब्र० विश्वम्भरदासजी गार्गीय द्वारा सम्पादित होकर प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको प्रकाशित होने लगा है । लेख समयानुकूल और उपयोगी विषयोंके गंभीरताके साथ लिखे हुए तात्त्विक और हृदय ग्राही होते हैं । मनोरञ्जक लेख, उपन्यास, आख्यायिका और कविताएँ भी प्रत्येक अङ्कमें रहती हैं । यह सर्व प्रिय है । यदि आपको सामाजिक उन्नतिके मार्मिक लेख देखने हों तो २) रु० भेजकर इस भव्यपत्रके ग्राहक हो जाइये।

मिलनेकापता—**मैनैजर मुनि**
बोदवड़ (खानदेश)

हिन्दी-जैन साहित्यका

इतिहास ।

जोकि जैन हितैषीके इसी अंकमें समा हो गया है । उसे पुस्तकाकार छपा लिया गय है । यह लेख सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेल जबलपुरके अधिवेशनमें पढ़नेके लिए लिखा गय था । इसमें हिन्दी साहित्यके शुरूसे आजतक कवियों लेखकोंका विस्तृत वर्णन है । मूल छह आने ।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org